अँधेरे की भूख

डॉ० रांगेय राघव

किताब महल इलाहाबाद : बम्बई

यह संस्करण
१९५५
लेखक
डॉ० रांगेय राघव
प्रकाशक
किताब महल, इलाहाबाद
मुद्रक
मगन कृष्ण दीक्षित
दीक्षित प्रेस, प्रयाग

दो शब्द

प्रस्तुत उपन्यास मैंने सन् १९३८ ई० में लिखा था। इसके पात्रों तथा कथावस्तु में विदेशी साहित्यों का प्रभाव है, किन्तु इसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि मेरी अपनी तथा मौलिक है। 'अँधेरे की भूख' के उपरांत तीन वर्ष बाद मैंने 'घरौंदे' लिखा था।

रांगेय राघव

पहला भाग

१

सम्राट् वासुदेव के समय कुषाण भारत में पूरी तरह बस गये थे। यद्यपि कनिष्क बौद्ध हो गया था, लेकिन फिर भी वह विदेशी था। वह जब आया था तब कुषाण लोग ऊँची टोपी पहनते, पाजामा और बिना बटन का तनीदार लम्बा अचकन नुमा कोट उनकी ही पोशाक थी। धीरे-धीरे बहुत से कुषाण भारतीय वेश-भूषा अपनाने लगे और उनकी भाषा संस्कृत को उच्चकुल के कुषाणों ने इतना सीख लिया कि घरों में वही बोलने लगे। बल्कि यह कहना ठीक होगा कि वे कितने कुषाणत्व से प्रभावित थे यह भी पता नहीं चलता था। कुछ कुल बौद्ध थे और कुछ ऐसे कुल थे जो कि ब्राह्मण धर्म को मानना चाहते थे, परंतु उसमें उन्हें रास्ता नहीं मिलता था, अतः वे भागवत धर्मानुयायी वैष्णव हो गये थे। जिस एशियाई भू-भाग से वे आये थे उसके अपने ही देवी, देवता थे, और वे भयानक भी थे। भारतीय देवताओं में उस समय कुछ तांत्रिक देवताओं की उपासना बढ़ रही थी जिनकी उपासना कुषाणों में खूब बढ़ रही थी क्योंकि वे देवता वाममार्गियों के उपास्य थे, और कुषाणों की स्त्रियाँ प्रारंभ में ही विलासप्रिय थीं। उन्हें वह संप्रदाय अच्छा लगा था। उसमें उनके पुरुष उन्हें छोड़ने की बात नहीं करते थे, न शराब पीने से हिचकते थे। उसमें मांस की भी छूट थी। पुराने लोग अभी तक कुषाणों की भाषा को थोड़ा बहुत जानते थे लेकिन नयी पीढ़ी में तो संस्कृत और पाली के ज्ञान के सिवाय कुछ जानकारी ही नहीं थी। केवल एक बात थी जो उन्हें अभी पूरा ब्राह्मण

धर्मानुयायी बनने से रोकती थी। वे अपने मुर्दों को पुराने क़ायदे से गाड़ते थे, जलाते नहीं थे। चौथी पीढ़ी में तो उन कुषाणों के नाम भी भारतीय हो गये थे, लेकिन पुराने खान्दान के लोगों में अभी तक उनकी अपनी भाषा के नाम मौजूद थे। जब कुषाण आये थे तब ग्रीक लोग भारत में आ बसे थे। उनके मिलने-जुलने से कुषाणों में ग्रीकों के बहुत से रिवाज शादी-ब्याह के सिलसिले में आकर मिल गये थे। पुराने खान्दानों में की याद रखने के लिये कभी-कभी ग्रीक नाम भी रख दिये जाते थे और ऐसे नाम जाहिर करते थे कि अब भले ही वे कुषाण कहीं भी भारत में बस गये हों, कहीं भी भूस्वामी हों, कहीं भी व्यापार करते हों लेकिन वे अभी कुलीन अवश्य थे, और उनके पूर्वजों का पुरुषपुर में सम्राट् स्वयं स्वागत किया करता था।

सम्राट् अशोक का बनवाया साँची का स्तूप उस समय विख्यात था। उससे तीन-चार कोस के फ़ासले पर एक सुन्दर और समृद्ध नगर विदिशा बसा हुआ था। विदिशा के नगर सेठ की लड़की से सम्राट् अशोक ने ब्याह किया था और इसी कारण विदिशा का महत्त्व बहुत बढ़ गया था। सम्राट् कनिष्क के समय में कुछ उच्च कुलीन कुषाण आकर यहाँ बस गये थे। उनके किले के खँडहर अब तक मौजूद थे। धीरे-धीरे वे नष्ट हो गये, क्योंकि आपस में ही परिवार में कुछ झगड़ा हो गया। उनकी अवनति के समय में कुछ और कुषाण आकर नगर के दूसरे छोर पर अपना किला बना कर रहने लगे थे। आपस में उनके संबंध थे। पुराने किले को लोग अभी तक यूची कुल का खँडहर कहते थे! बाद

कले के स्वामी का पुत्र स्वयं यूची परिवार की एक स्त्री से ब्याहा था। वह व्यापार का शौक़ीन था और एक बार जो निकला तो वर्षों के बाद दक्षिण के चोल राज्य में व्यापार से समृद्ध होकर आया और फिर अपनी ढलती व्यवस्था में अपने किले में बस गया। पुराने किले और उसके आसपास का गाँव बिल्कुल ही वीरान हो गये थे। अब उधर कोई नहीं जाता था।

इस व्यापारी कुलीन कुषाण के घर में भारतीय सेवक थे। वह स्वयं पूर्णतया भारतीय था और भागवत धर्म को मानता था। उसकी एक ही अत्यंत सुन्दरी पुत्री थी जिसका नाम उसने सिंधुजा रखा था। वह बड़े अच्छे स्वभाव की थी और उसकी देख-रेख को दो भारतीय स्त्रियाँ रहती थीं, जिनमें से एक का नाम सुहासिनी था। वह बंग देश-वासिनी थी और अब अधेड़ थी। दूसरी काश्मीर की पद्मा नामक स्त्री थी जो दृढ और सुगठित थी, लगभग पचास वर्ष की। उसके बाल कुछ सफेद हो गये थे। दोनों अपने प्रदेश की वेश-भूषा पहनती थी। यों अनेक नौकर-चाकरों के साथ इस किले में यह लोग रहते और अपने पूर्वजों की बातें सुनाते में कुषाण चक्रधर, यह नाम उसने सम्राट वासुदेव को प्रसन्न करने के लिये रखा था, अत्यंत तन्मय हो जाता। चक्रधर कभी पुराने किले के बारे में बताता, कभी अपनी दादी से सीखा हुआ ऐसा गीत सुनाता जिसमें ग्रीक शब्दों को कुषाण भाषा के पदों में गूँथ-गूँथ कर बनाया गया था। उसके मित्रों में दो विशेष थे। एक यूनानी वैद्य आर्किमिडीस था, और दूसरा चरक का अनुयायी आयुर्वेदिक वैद्य सुषेण। तीनों बैठ कर घंटों बातें किया करते। आर्किमिडीस की माता भी किसी प्रकार पुराने किले से संबंधित थी। अब वह मर चुकी थी।

जब यह कथा प्रारंभ होती है उस समय चक्रधर अपनी नौ वर्ष की बालिका सिंधुजा के साथ विदिशा आया था। तभी उसकी पत्नी का सागल में देहांत हो चुका था। सुहासिनी और पद्मा जो कि उसकी स्त्री की विशेष सेविकाएँ थीं अब सिंधुजा का पालन-पोषण कर रहीं थी। चक्रधर उनका बहुत सम्मान करता था, क्योंकि दोनों ही ब्राह्मणियाँ थीं।

चक्रधर किले के बाहरी भाग में ठहरा था, क्योंकि उससे मिलने नगर के प्रतिष्ठित लोग अपने रथों और पालकियों पर बैठ कर आते थे। वह सब तरह से भारतीय था और उसे यह भी पसंद नहीं था कि मरने के बाद शवों को गाड़ा जाय। वह उन्हें जला देना अच्छा समझता था। लेकिन उसकी स्त्री यूची परिवार की थी। वह पुरानी कुषाण

मर्यादा की ही प्रशंसा करती थी। उसे उसने सागल में ही गाड़ दिया था।

विदिशा में चक्रधर का किला नगर से लगभग दो कोस दूर था। यहाँ कोई चहल-पहल नहीं थी। चारों ओर विशाल घना उद्यान था। और उसके भवन भी बहुत पुराने हो गये थे। चक्रधर वहाँ रहता तो नहीं, उसने भी कुछ ही भाग को अपने काम में लिया जो कि सब से अच्छा था। अनेक प्रकोष्ठ और अलिन्दों में धूल ही जमी रहती। उनमें कोई जाता भी न था। कभी-कभी अन्य कुषाण परिवार जब कोई उत्सव होता तो वहाँ इकट्ठे होते और उस दिन वे लोग कुषाण परम्परा का निर्वाह करते। स्त्रियाँ चेहरे पर चीनी ढंग का नकाब लगातीं और स्त्री और पुरुष समवेत होकर नाचते, गाते, मदिरा पीते। उसके अति-रिक्त कभी-कभी चार घोड़ों के रथ पर साञ्ची में रहने वाले दाक्षिणात्य के द्वार प्रहरी महासेनापति मंदहास आते जो कि पचास वर्ष के थे। वे चक्रधर के बचपन के मित्र थे और उनके घर में भी यूची कुल की किसी स्त्री का रक्त था। इस नाते उनमें घनिष्ठता थी। दोनों में बराबर पत्र-व्यवहार भी होता था। लिपटे हुए कपड़े पर पत्र लेकर घुड़सवार आता, और इसी तरह के कपड़े पर उत्तर लिखवा कर ले जाता। कभी चक्रधर अपने अश्वारोही को भेजता। इसी तरह दिन कट रहे थे।

चक्रधर का किला अपने तीनों ओर घने जङ्गल से घिरा हुआ था और उस बन में ही कहीं कुषाणों का एक कब्रिस्तान भी था, जहाँ विदिशा के कुषाण अपनी पुरानी परम्परा के गीत गाते हुए मृतक को गाड़ा करते थे। चक्रधर स्वयं ही जब गाड़ने से जलाने की परम्परा पर नहीं आया था, तब यह ही सोचना ही बेकार था कि उससे साधारण स्थिति के लोग अपनी परम्परा को तोड़ देते। चक्रधर के किले के समाने की तरफ कुछ-कुछ दूरी पर बड़े-बड़े पेड़ खड़े थे और टीलों के बीच में से सड़क जाती थी। वह सड़क ऐसी थी कि उसका एक छोर तो पुरुषपुर में था और दूसरा दक्षिण की ओर जाकर महाकान्तार विन्ध्या में समाप्त हो जाता

था, जहाँ से सार्थवाहों के साथ जाना पड़ता था। किले के सामने एक पक्का पुल था क्योंकि टीलों के कारण वहाँ एक बरसाती नाला बन गया था। उस पुल का मुँह किला की ओर था और सड़क घूम कर फिर दक्षिण की ओर मुड़ जाती थी। यह सड़क बहुत पुरानी और सँकरी थी। उसकी कुछ दूरी पर किले की खाई थी जिस पर बतखें तैरती रहती थीं और कमल के फूल खिले रहते थे जो कि यह प्रगट नहीं होने देते थे कि वह जगह असल में पुराने और नीले किस्म के पानी से भरी हुई थी। विशाल फाटक के सामने वृक्षों की कतार थी और उसके बीच में सूर्यास्त के समय घूमना बड़ा ही मनोरम लगता था क्योंकि कुछ वृक्ष सुरभित फूलों से लद जाते थे, जिनसे कि हवा भी बोझिल हो जाती थी। किले की खिड़कियों से विदिशा दिखाई देती थी, सुदूर साँची का बौद्ध स्तूप दिखाई देता था जहाँ कि भिक्षु रहते थे और विदिशा की पहाड़ियों पर बसा महादेव का वह मन्दिर भी दिखता था जिसमें रोज सैकड़ों लोग आते-जाते थे। उस मन्दिर के ठीक सामने की ओर दूर, बहुत दूर एक पतली लाट सी दिखाई देती थी। कहते थे उसे साँची में महासेनापति मन्दहास के पितामह ने गड़वाया था और वह अभी तक मन्दहास का गौरव बनकर साँची में खड़ी थी।

राजमार्ग धीरे-धीरे दक्षिण की ओर मुड़ कर सघन वन में खो जाता था। जहाँ चक्रधर रहता था वहाँ से साँची नगर के बाह्य भाग में बसा महासेनापति मन्दहास का किला लगभग पाँच कोस था। किले के सबसे ऊँचे परकोटे पर चढ़ने से पुराना यूची का किला दिखाई देता था। चक्रधर जब उसे देखता तो कहता, 'समय किसी का साथ सदा ही नहीं देता। यूची का परिवार एक दिन चीन तक अपना सम्मान पाता था, लेकिन अब! अब पारस्परिक हत्या, रागद्वेष, वासना ने उस स्थान को ऐसा कर दिया है कि बरसों से वहाँ चूल्हों का धुँआ भी उठता हुआ नहीं दिखाई पड़ता।'

इस समय घर में अपूर्व शांति रहती थी। चक्रधर का अधिकांश

समय पुरानी पुस्तकें पढ़ने में बीता करता था। आर्किमिडीस और सुषेण उसकी इस अध्ययन वृत्ति से बहुत प्रसन्न थे। होमर के ग्रन्थों की बहुत प्राचीन प्रति यूनानी वैद्य के पास थी! वह बहुत घूमा हुआ आदमी था और उसने देश-विदेश के रीति-रिवाजों को देखा। सुषेण भी प्रकाण्ड विद्वान् था। उसने अनेक ऐसी भूर्जपत्र पर लिखी पुस्तकें इकट्ठी कर रखी थीं, जिन्हें वह यास्क से भी पुरानी बताता था। उसका एक भाई एक बार समुद्र व्यापार में चला गया था तो वह अरब सागर होता हुआ जब चन्द्रमा की पूजा करने वाली अरब जातियों को पार करके रेगिस्तान होता हुआ उत्तर-पश्चिम में पहुँचा और वहाँ उसे यहूदी तांत्रिक मिले। उनसे वह इतना मिल गया कि उनका कबाल तन्त्र उसने सीखा और फिर मिस्र का ज्योतिष और तन्त्र सीख कर वह लौटा। उसने इतनी कहानियाँ सुनाईं, इतनी हस्तलिखित किताबें सुषेण को दीं, इतनी जड़ी-बूटियाँ बताईं कि सुषेण बड़ा ही उपकृत हुआ। दुर्भाग्य से एक दिन राह में डाकुओं ने सुषेण के भाई को मार डाला। लेकिन जो विद्या वह लाया, वह सुषेण ने अपने तक ही नहीं रखी, अपने मित्र चक्रधर और आर्किमिडीस को भी बता दी।

सिन्धुजा उन लोगों के पास जाकर बैठती और इतनी अच्छी और सुन्दर लड़की थी वह, इतनी प्यारी बातें करती थी कि वे लोग बहुत प्रसन्न होते और कहते कि इसे तो किसी सम्राट की पत्नी बनायेंगे हम लोग।

चक्रधर उस बात को सुन गद्‌गद हो जाता।

२

एक रात चक्रधर आर्किमिडीस और सुषेण बैठे बातें कर रहे थे। तक्षशिला से पढ़कर स्नातक सागरक आया था, जो कि विदिशा के एक प्रसिद्ध क्षत्रिय का पुत्र था। वह मिलने आया था। सुहासिनी पास बैठी थी।

सुषेण ने कहा, 'वैद्यक के अनुसार तो वैद्य के लिये यह अत्यंत आवश्यक है कि व्यर्थ की बातों में विश्वास नहीं करे। अधिकांश आधे दैविक दिखाई देने वाले चमत्कार बहुत करके प्रकृति के ऐसे रहस्य होते हैं जिन्हें हम नहीं जानते, इसीलिये डर जाते हैं।'

'शायद तुम्हारी बात ठीक हो,' चक्रधर ने कहा, 'लेकिन मुझे कुछ संदेह होता है। मेरे किले के उत्तर के हिस्से में ऐसा ही एक चमत्कार है, लेकिन तुम जैसे विद्वान के सामने कहते हुए भी मुझे संकोच होता है।'

आर्किमिडीस ने पूछा, 'आखिर वह है क्या?'

चक्रधर ने पास बैठी सुहासिनी की ओर देखा। उसकी दृष्टि में कुछ घबराहट थी। फिर उसने सीधे बैठकर कहा, 'कहते हैं उसमें एक आलोक पुरुष रहता है। और कभी-कभी उसके बाँये प्रकोष्ठ में उजाला सा रात के वक्त दिखाई देता है। मैंने खुद यहाँ से देखा है। तुम तो देखते ही हो कि वह जगह यहाँ से उन दूर के पेड़ों के पीछे पड़ जाती है। फिर भी दीखता है कि कोई वस्तु चमक रही है। मैं बाद में देखने गया हूँ। वह हिस्सा मेरे पितृव्य के भाग का था। अब उसमें कोई नहीं है। लेकिन वहाँ ढेरों धूल तो मिली, सारा सामान भी वैसा ही रखा हुआ मिला, फिर भी किसी के चलने-फिरने के कोई निशान नहीं दिखाई दिये।'

'तुम्हें निश्चय है कि तुमने उस चमकते हुए आदमी को खुद देखा है श्रीमंत चक्रधर !' सुषेण ने पूछा।

'मेरा तो ऐसा ही खयाल है,' चक्रधर ने कहा, 'तुम्हें मैंने जो बुलवाया था, वह कल ही न ? उसके तीन दिन पहले ही मैंने उसे देखा था। साँझ का झुटपुटा हो चुका था। मैं वहाँ वैसे ही चला गया था जब कि मैंने उसे देखा। वह सीढ़ी पर था। पूरा लंबे कद का आदमी था और बिल्कुल सफ़ेद और चमकदार था। उसकी पीठ मेरी तरफ़ थी। उसके कंधे कुछ उठे हुए थे और सिर कुछ झुका हुआ था। मैंने तो उससे कुछ नहीं कहा। चुपचाप लौट आया। मैं खतरा मोल लेना नहीं चाहता था।'

'श्रीमंत !' सागरक ने मुस्कराकर कहा, 'ऐसा तो कभी हो नहीं सकता। पुराने समय में अवश्य देवता पृथ्वी पर आते थे, लेकिन अब वह बात कहाँ ! अवश्य आपको कुछ भ्रम ही हो गया होगा।'

युवक की बात सुनकर चक्रधर को कुछ झुँझलाहट सी हुई। उसने कहा, 'तुम अभी तरुण हो सागरक, तभी तुम विश्वास नहीं करते ! लेकिन अगर इतना ही होता तो कोई बात नहीं थी। असली कथा तुम नहीं जानते, तभी ऐसा कहते हो। तुम्हारी तरह तरुणाई के समय में मैंने भी बहुत यात्रा की है। पहले मैं भी विश्वास नहीं करता था। लेकिन एक बार ऐसी घटना हुई कि मुझे विश्वास करना पड़ा।'

आर्किमिडीस ने कहा, 'वह क्या घटना थी ?'

चक्रधर ने कहा, 'तुम तो जानते हो मैं चोल देश में था।'

'हाँ, हाँ।'

'लेकिन एक वर्ष के लिये मैं सुहासिनी के मिलने के पहले अपनी स्त्री और पद्मा को छोड़कर, मेरा मतलब है, सिन्धुजा के जन्म से पहले, एक विशेष कार्य से रोमक गया था। हम जहाज़ों में गये और जहाजों में ही लौटे। वहाँ मरुकच्छ में जहाज के रुकने के समय मैंने जीवन में यह अनुभव किया था। मेरे पितृव्य भी उधर गये थे और खूब संपत्ति

अर्जित करके लाये थे। लेकिन वह सब कहीं गड़ी ही रह गई क्योंकि वे बुरी तरह से मरे। उनका पुत्र और पुत्री भी इसी मकान में मर गये। वे हब्शी पकड़कर लाते थे और मिस्र और रोम में बेच देते थे। उन्होंने यों काफी धन कमाया था। एक हब्शी वे अपने साथ यहाँ भी ले आये थे, लेकिन वह कुछ ऐसा गायब हुआ कि उसका आज तक पता भी न चला। हाँ तो जब मैं वहाँ से लौटने लगा, मेरे साथ एक अरब सरदार था। मैं, वह बस, दोनों ही दोस्त हो गये। दोनों के ही दाढ़ी थी और हम दोनों ही अरब मल्लाहों के से कपड़े पहने हुये थे। उसका नाम था रऊफ बिन अली। मैं उसे रऊ कहता।

'हम दोनों जवानी की मस्ती से घमंड में थे। हमने तय किया कि एक छोटा जहाज लेकर ही लौटा जाये, जिसमें हमारे कुछ अपने मल्लाह हों। उसको भी यह बिचार बहुत पसंद आया। चुनाँचे यही हुआ। हमारा कई बार समुद्री डाकुओं ने पीछा किया, लेकिन जब वह छोटा-सा जहाज देखते तो छोड़कर चले जाते। उन्हें हमसे कोई आशा नहीं होती थी। वे समुद्री डाकू बड़े भयानक होते थे। रऊ चन्द्रमा की पूजा किया करता था। वह किस कबीले का था, यह तो मुझे याद नहीं, मगर बड़ा ताकतवर था।

'जब हवा कम हो जाती है तब हम लोग आपस में बैठकर बातें किया करते और इसी तरह बातें करते हुए एक दिन उसने लहरों के शांत होने पर कहा, 'मेरा जी बहुत भारी हो रहा है।'

'मैंने पूछा, 'क्यों रऊ ऐसी क्या बात है।'

'वह बड़ा अनमना और आतंकित सा दिखाई दे रहा था। मुझसे रहा नहीं गया। मेरे बार-बार अनुरोध करने पर उसने कहा, 'तुमने उत्तर के भूरे पहाड़ों के बारे में तो सुना होगा?'

मैंने पूछा, 'तुम्हारा मतलब उन पहाड़ों से है जिन्हें अल्प कहते हैं और रोमक से उत्तर में है।'

'हाँ हाँ! वही!' रऊ ने कहा, 'मेरा बाप पहले रोमक नगर में

बसता था, इधर जब से यूनानियों के मुकाबिले पर रोमक उठ खड़े हुए हैं तब से बात कुछ बदल गई है। मेरा बाप जब वहाँ रहता था वह एक रोमक सरदार का नौकर था। लेकिन वह पठान लिखना जानता था। मेरी माँ कार्थेज की एक गरीब औरत थी, लेकिन वह बहुत सुन्दर थी। यही मेरे लिये लज्जा का विषय है कि वह देखने में जितनी अच्छी थी उतनी अपने चरित्र में नहीं। रोमक सरदार ने उसे देखा तो उस पर मोहित हो गया। वह भी उस पर विचलित हो गई और मेरे बाप को उसने काम लगा कर 'अपनी भूमि सँभालने गांव भेज दिया। लेकिन एक दिन जब मेरा बाप लौटा तो उसे उनके संबंध पर संदेह हुआ। जैसा कि एक पढ़े-लिखे आदमी के लिये स्वाभाविक था, उसने उस वक्त तो कुछ नहीं कहा, लेकिन वह उसकी सचाई की जाँच में लग गया। डीलडौल का बड़ा लम्बा-चौड़ा आदमी था। और उसने उसे रँगे हाथों पकड़ लिया। क्रोध के आवेश में वह अपने को रोक नहीं सका। उसने तुरन्त फरसा उठाकर उन दोनों की हत्या कर दी। उसके बाद ही उसे ध्यान आया कि रोमक दूसरों की स्त्रियों के पतिव्रत का बिलकुल विचार नहीं करते। और फिर सरदार की मृत्यु का अपराध तो बहुत ही बड़ा था। वह किसी भी प्रकार माफ नहीं किया जा सकेगा, चाहे वह कितना ही न्याय पक्ष क्यों न लिये हुये हो, उसे एक ही रास्ता नजर आया। वह आवेश में ही मालिक के दो घोड़े चुपचाप ले आया और गाड़ी में जोतकर सारा अपना सामान, हम दोनों भाइयों और हमारी एक बहिन को लेकर खुद ही आधीरात को चल पड़ा।

जाड़े के दिन थे। रास्ता खतरनाक था। लेकिन उसके पास और कोई चारा नहीं था। वर्ना वह गिरफ्तार हो जाता और इसलिये जितनी दूर हो सका वह रास्ता लाँघता ही चला गया। अंत में वह अल्प पर्वत के पास पहुँच गया और वहाँ गाड़ी छोड़; सामान खुद लाद कर वह हमें लेकर बढ़ता चला गया। अंत में हम एक ऐसी सुनसान बियाबान जगह पहुँचे जो कि पर्वतों के बीच में थी। वहाँ उसने अपने आप दो

कमरों की झोपड़ी बनाई जिसमें खिड़कियाँ और दरवाजे भी लगाये। वह वहीं खेती करता। हमारा अपना पेट पालता और इस तरह गुजर होती। दिन में वह शिकार करने जाता और हमें भीतर बन्द कर जाता, ताकि हम बाहर न निकल जायें।

जाड़े के दिनों में बहुत ज्यादा सर्दी पड़ती थी उन दिनों वह शिकार में ही लगा रहता। उसका कोई साथी तो था नहीं। तीर, कमान लेकर चला जाता और शामको एक न एक जानवर मार लाता, जिसे हम लोग भून कर नमक मिला कर खा लिया करते।

मेरे पिता को स्त्रियों से ऐसी घृणा हो गई कि वह मेरी बहन से अच्छी तरह पेश नहीं आता था। वह उसे हमेशा निष्ठुरता से डाँटता फटकारता रहता। रीछों की खाल ओढ़ कर हम दोनों भाई और बहन एक ही बिस्तर पर सोया करते थे। जाड़े के दिन हम तीनों बैठ घंटों आपस में बातें किया करते और इच्छा किया करते कि कैसे जल्दी से जल्दी गर्मी के दिन आयें, यह बर्फ़ पिघले और हम बाहर निकलें। कभी-कभी दूर से कोई चरवाहा उधर निकल आता और इन्सान के नाम पर वहीं नया चेहरा हम देखते। वह कुछ ताज्जुब से देखता और अपने रास्ते चला जाता।

क्योंकि हम बच्चे अकेले रहते हममें एक विचार करने की प्रवृत्ति बढ़ गई।

एक शाम को ऐसा हुआ कि मेरा बाप रोज की बनिस्बत देर से लौटा। उस वक्त मैं सात का था। मेरा बड़ा भाई नौ साल का और बहिन पाँच बरस की थी। आज मेरे बाप को शिकार हाथ नहीं लगा था। बहुत ज्यादा सर्दी थी और मिजाज काफ़ी बिगड़ा हुआ था। वह अपने साथ जंगल से लकड़ी बटोर लाया था। हम तीनों उसे आग जलाने में मदद दे रहे थे। न जाने क्यों, बुरा बर्त्ताव तो मेरी बहिन से तो करता ही था, उसने बच्ची को हाथ पकड़ कर झटक दिया। वह बिचारी मुँह के बल गिरी और उसके मुँह से खून निकल आया। डर के मारे वह

रोई भी नहीं। मेरा भाई उसे उठाने गया और उधर मेरा बाप औरतों की जात को गाली देकर, उसकी करुण दृष्टि की चिंता न करके, आग सुलगाने में लगा और हमारा आनन्द बिल्कुल नष्ट हो गया। हमने सहयोग नहीं दिया। अपने बिस्तर पर आ गये, जहाँ मैं और मेरा भाई दोनों ही अपनी बहिन को प्यार करने लगे। आग जलने लगी और गर्म लपट फरफराने लगी। मेरा बाप आज उदास सा बैठा आग की तरफ देख रहा था। करीब आधा घंटा ऐसे ही बीत गया। उस समय हमारी खिड़की के नीचे एक भेड़िये की गुर्राहट सुनाई दी। मेरे बाप ने तुरन्त धनुष, बाण उठा लिया और वह कुछ देर उस आवाज की दूरी का अंदाज करता रहा और फिर अपने पीछे दरवाजा बन्द करता हुआ बाहर निकल गया। हमने खुशी की साँस ली और बड़ी उत्सुकता से इन्तजार करने लगे। हम चाहते कि वह शिकार लेकर लौटे, ताकि उसका मिजाज अच्छा रहे। हालाँकि वह हमसे सख्ती से बर्त्ताव करता था, और खास तौर पर हमारी बहिन से तो वह बहुत ही बेरुखा था, फिर भी हम सब उसे प्यार करते थे, क्योंकि इसके सिवाय हमारे पास चारा ही क्या था। वहाँ और कोई आदमी तो था नहीं।

हम भाई-बहिन एक दूसरे को बहुत ही चाहते थे। हम कभी और बच्चों की तरह आपस में लड़ते-झगड़ते नहीं थे। अगर हम आपस में झगड़ते तो वह प्यारी बच्ची हम लोगों को बहुत से तरीकों से मनाती और हमारा मेल करा देती।

हमें वह बहुत ही अच्छी लगती थी और यदि कोई कारण था कि जिसकी वजह से हमारे बाप को हम अच्छा नहीं समझते थे, तो यही कि वह उस बच्ची के प्रति बहुत अधिक क्रूर था।

बिचारी मेरे बाप को देखती तो उसकी रोने की भी हिम्मत नहीं पड़ती थी।

भाई ने कहा, 'चल। दादा तो गये। अभी शायद वह आयेंगे भी नहीं। मैं तेरा खून धुला दूँ।'

चुनाँचे खून धोकर हम तीनों आग के पास जाकर बैठ गये और रोज की तरह धीरे-धीरे बातें करने में लग गये।

आधी रात हो गई। मेरा बाप नहीं लौटा। उस रात के सन्नाटे में हमें धनुष की टंकार सुनाई नहीं दी।

भाई ने कहा, 'बड़ी देर हो गई। अभी तक दादा क्यों नहीं आये ?'

बात उत्सुकता की थी। हमें काफी कौतूहल था। लेकिन हम यह नहीं समझते थे कि हमारा बाप भी खतरे में पड़ सकता है। अधिक से अधिक हमने यही सोचा कि कहीं दूर निकल गया है।

मेरे भाई ने कहा, 'मैं देखता हूँ।'

'कहाँ जाओगे ?' बहिन ने पूछा।

'देखूँ दादा आये या नहीं ?'

'सँभल कर जाना। बाहर भेड़िये हैं।'

मैंने कहा, 'तू ठीक कहती है। हम उन्हें मार नही सकेंगे।'

भाई ने धीरे से दरवाजा खोला। झाँका और तुरन्त बंद करके कहा, 'मुझे तो कुछ भी नहीं दिखाई देता।'

वह आकर फिर हमारे पास आग तापने बैठ गया।

मैंने कहा, 'आज तो खाना भी नहीं खाया अभी।'

मेरा बाप आकर खुद मांस पकाता था और तब ही हम खाते थे। जब वह नहीं रहता था तब हम पहले दिन का मांस खा लेते थे।

बहिन ने कहा, 'दादा आयेंगे तो उन्हें खाना पका मिलेगा तो खुश हो जायँगे, आओ हम लोग पकायें।'

वह बिचारी हर तरह से बाप को खुश करने की कोशिश किया करती थी। भाई, एक चौकी सी थी, उस पर चढ़ गया और उसने रीछ का मांस उतार दिया। रोज़ जितना पकता था उतना ही हमने काट लिया और जैसे बाप की देख-रेख में करते थे, वैसे ही उसको पकाने लगे।

उसी वक्त सींगी बजने की आवाज आई। हमने सुना आवाज बाहर

से आई थी, और उसी समय मेरे बाप ने भीतर प्रवेश किया। उसके साथ एक स्त्री थी और एक लम्बा चौड़ा शिकारी था।

हालाँ कि जो मैं बताऊँगा वह मेरे बाप ने ही मुझे बहुत बाद में बताया था। लेकिन मैं उसे एक सिलसिले में सुना जाता हूँ।

जब मेरा बाप झोपड़े से निकल कर गया था, उसने करीब बीस हाथ की दूरी पर एक बड़ा-सा भेड़िया देखा। ज्यों ही भेड़िये ने मेरे बाप को देखा वह गुर्राता हुआ धीरे-धीरे पीछे हटने लगा। मेरा बाप उसका पीछा करने लगा। जानवर भागा नहीं, लेकिन उसने अपने और मेरे बाप के फासले को कम नहीं होने दिया। और मेरे बाप ने तीर इसलिये नहीं चलाया कि कहीं वह चूक न जाये। इसी तरह वह दोनों कुछ देर चलते रहे। फिर भेड़िया तेज दौड़ने लगा।

मेरे बाप ने उसका पीछा किया, लेकिन अब दोनों के बीच का फासला बढ़ गया था। बीच-बीच में भेड़िया पलट कर गुर्राता था और मेरे बाप को गुस्सा दिलाता था। और ज्यों ही मेरा बाप उसके पास होने लगता वह फिर भाग जाता था।

भेड़िया सफेद था। उसकी किस्म के कम मिलते थे, जहाँ एक ओर मेरे बाप को यह लालच था, दूसरी ओर वह उस पर ताव भी खा गया था, क्योंकि वह उसे झाँसा देकर इतनी दूर भगा लाया था।

इसी तरह घंटों बीत गये और भेड़िया उसे अपने पीछे लेता ही गया और मेरा बाप बिल्कुल भयानक पर्वत पर पहुँच गया। वह जगह खतरनाक समझी जाती थी, क्योंकि चरवाहे उसे भूतों का डेरा कहते थे।

चारों तरफ चीड़ के दरख्त खड़े थे और बीच में वह खाली जगह थी। मेरा बाप इसे जानता था क्योंकि चरवाहों से बातें करने में उसे पहले ही खबर पड़ गई थी। लेकिन जो भी हो, उसने उस समय अपने आवेश में चिंता नहीं की और वहाँ भी घुस ही गया।

जब वह उस जगह पहुँच गया तो भेड़िये की चाल धीमी हो गई।

मेरा बाप उसके निकट पहुँचा। उसने धनुष संधाना और तीर मारने ही वाला था कि भेड़िया गायब हो गया।

ज़मीन पर बर्फ़ छा रही थी। मेरे बाप ने सोचा कि शायद बर्फ़ से आँखें चौंधिया गई थीं। उसने चारों ओर देखा। भेड़िया कहीं भी नहीं था। बिल्कुल चौरस भूमि में आखिर वह जा भी कहाँ सकता था? लेकिन जब कुछ भी दिखाई नहीं दिया, तो मेरा बाप घबरा गया। वह लौटने ही वाला था कि कानों में सींगी की आवाज आई। उस समय उस स्थान पर सींगी की आवाज़ सुनकर तो उसे बहुत ही आश्चर्य हुआ। बियाबान! जहाँ कोई आता-जाता नहीं। बर्फ़ीली ज़मीन। कड़कड़ाती सर्दी। वह अपनी उस निराशा को भूल गया कि शिकार हाथ से निकल गया था। बल्कि आश्चर्य ने उसे एक प्रकार से जड़ीभूत कर दिया। अब फिर सींगी बजी और इस बार वह आवाज पास आ गई थी। मेरा बाप खड़ा रहा। तभी सींगी तीसरी बार बजी। मेरा बाप जानता था कि बजानेवाले रास्ता भूल कर जंगल में भटक रहे थे।

कुछ ही देर में मेरे बाप ने देखा कि एक घोड़े पर एक आदमी चढ़ा हुआ है। उसके पीछे एक औरत बैठी थी और वह उसके पास आ गया। मेरे बाप को पहले तो वहाँ भूतों का शक हुआ, लेकिन जब वे पास आ गये तो उसका वह शक जाता रहा। उस शिकारी ने मेरे बाप से कहा, 'मालूम देता है आज शिकार में तुम्हें बहुत देर हो गई बिरादर! लेकिन यह हमारे लिये बहुत अच्छा हुआ। हम बहुत दूर से आ रहे हैं। बड़ी दूर से हमारा पीछा किया जा रहा है और हमारी जान खतरे में है। इन पहाड़ों की वजह से हमने अपने पीछा करने वालों को बहम में डाल दिया है। लेकिन अब अगर हमें रात के लिये पनाह और खाने को कुछ नहीं मिलेगा तो हम वैसे ही मर जायँगे। मेरी बेटी यह तो देखा, इसको कितनी बुरी हालत हो गई है। बेचारी की! बिरादर, तुम कुछ हमारी मदद कर सकते हो?'

मेरे बाप ने कहा, 'मेरा झोपड़ा यहाँ से कुछ कोस पर है। यह तो

मैं नहीं कहता कि तुम्हे वहाँ आराम मिलेगा। मेरे पास है ही क्या। फिर भी जो है, उसके लिये मैं तुम्हारा स्वागत करता हूँ। क्या मैं जान सकता हूँ कि तुम कहाँ से आ रहे हो?'

इस पर उसने बताया कि वह उत्तर की तरफ़ से आ रहा था... शायद उसने कोई जगह भी...बताई थी, जिसकी अब याद नहीं रही है, लेकिन उसने बताया कि वहाँ उसकी जान तो खतरे में थी ही, उसकी बेटी की इज्जत भी खतरे में थी। तभी उसे भागना पड़ा क्योंकि वह दोनों की रक्षा नहीं कर सकता था। दुश्मन बड़ा था, जिसके सामने वह कमजोर था, इसीलिये भागने के अलावा और कोई भी चारा नजर नहीं आ सका।

मेरे बाप में दिलचस्पी पैदा कर देने के लिये इतना काफी था, क्योंकि इस बात ने उसके दिल को छू लिया। उसको अपने भागने की याद हो आई और अपनी पत्नी के पातिव्रत का भंग होना याद आया। वह न रोम का था न यूनानी। वह तो अरब का था जहाँ एक-एक पुरुष के पास असंख्य स्त्रियाँ होती हैं, लेकिन यहूदियों की तरह उनके यहाँ भी यह कायदा है कि औरत जिसकी होकर रहे उसी की होकर रहे। बादशाह दाऊद ने इस कानून को तोड़ा था तो उस पर भी कहर गिरा था।

उसने तुरन्त अत्यन्त नम्रता और स्नेह से कहा कि वह उन्हें जो भी मदद दे सकेगा देगा।

घुड़सवार ने फौरन कहा कि अब वक्त बरबाद करना मौत को बुलाना था, क्योंकि उसकी बेटी वैसे ही बर्फ से जकड़ी हुई थी। और उसके लिये उस तरह की सर्दी झेलना कठिन था।

'मेरे पीछे आओ।' मेरे बाप ने कहा 'और अपने झोंपड़े की तरफ चल पड़ा। उसने कहा, 'मैं एक बड़े सफेद भेड़िये के पीछे यहाँ तक आ गया था। वह बिलकुल मेरे झोपड़े के नीचे तक आ गया था।' वर्ना इस रात को मैं यहाँ क्यों आता?'

लड़की ने कहा, 'वह तो बिलकुल हमारे पास से होकर निकल गया था।' उसकी आवाज पतली थी।

लम्बे-चौड़े शिकारी ने कहा, 'लेकिन उसकी वजह से तो हम मिल सके। मैंने भी उसे छोड़ दिया। अच्छा ही तो हुआ।'

करीब एक-डेढ़ घंटे में, तेजी से चल कर वे सब झोंपड़े में आ पहुँचे और भीतर आ गये।

लम्बे-चौड़े शिकारी ने पके हुये गोश्त की गंध पाकर कहा, 'तो हम ठीक वक्त पर ही आ गये।' और फिर मुझे और मेरे भाई बहिन को नजर डालकर देखता हुआ आग के पास बैठ गया। उसने कहा, 'तुम्हारे पास तो रसोईये हैं।' और वह यह कह कर हँसा।

मेरे बाप ने कहा, 'मुझे खुशी है कि तुम्हें इन्तजार नहीं करना पड़ा।' फिर उसने लड़की से मुड़ कर कहा, 'तुम यहाँ बैठो आग के पास ताकि तुम्हें गर्मी पहुँचे।'

शिकारी ने पूछा, 'मैं अपना घोड़ा कहाँ बाँधूँ ?'

मेरे बाप ने कहा, 'मैं उसका इन्तजाम करता हूँ।' और वह झोपड़े के बाहर चला गया।

लड़की जवान थी। करीब बीस साल की। वह फारसी कपड़े पहने थी। उसके कपड़े जानवरों की खालों के बने थे, जिन पर घने बाल थे, सुन्दर, मुलायम, सफेद। सिर पर वैसे ही बालदार एक टोपी थी। आप तो जानते ही हैं कि अल्प पहाड़ के उत्तर के लोग कितने ज्यादा जंगली हैं। वैसे वह थी बहुत खूबसूरत। उसके बाल मुलायम थे। चमकदार। वह जब कभी मुँह खोलती थी, तब बहुत ही दमकते हुए उसके सफेद दाँत दिखाई देते थे। मैंने शायद वैसे दाँत कभी देखे ही नहीं। लेकिन उसकी आँखों में एक ऐसी चमक थी कि हम उसे देखकर डर गये। उन आँखों में एक अजीब बेचैनी थी। मुझे लगा उन आँखों में अजीब सी निर्दयता थी। उसने हमें बुलाया, तो हम डरते-काँपते उसके पास गये। हालाँकि वह बहुत ही सुन्दर थी। उसने हमसे प्यार से बातें कीं।

हमारे सिर पर हाथ फेरा। लेकिन मेरी बहिन उससे इतनी डर गई थी कि वह बिस्तर में छिप गई और हालाँकि वह भूखी थी, उसने इस डर से कि कहीं उसके पास न जाना पड़े खाने की भी चिन्ता नहीं की।

मेरा बाप घोड़े को एक बन्द छप्पर में छोड़ आया और तुरन्त लौट आया। वे लोग खाना खाने बैठे।

खाने के बाद मेरे बाप ने उस स्त्री से कहा कि वह उसके बिस्तर पर सो जाये। वह उसके बाप के साथ आग के पास बैठेगा। कुछ मना करने के बाद वह राजी हो गई और मैं और मेरा भाई अपनी बहिन के पास हमेशा की तरह जा घुसे।

लेकिन हम सो नहीं सके। कुछ अजीब सा लग रहा था। नये आदमी यहाँ आये और सोये इससे हम कुछ घबरा गये थे। बहिन चुप तो थी लेकिन रात में वह कई बार काँप उठी। मुझे ऐसा लगा कि बड़ी मुश्किल से बाप के डर से वह अपनी रुलाई रोकने की कोशिश कर रही है। मेरा बाप उठा। उसने कुछ शराब निकाली जो वह एक दिन कहीं से ले आया था। वह और लम्बा-चौड़ा शिकारी दोनों बैठ कर देर तक आग के सामने शराब पीते रहे। हम इतने चौकन्ने थे कि जरा सी भी आहट सुन रहे थे।

मेरे बाप ने बातों में पूछा, 'तो तुम उत्तर से आ रहे हो। क्या नाम बताया था तुमने।'

उसने फिर नाम बताया और कहा, 'मैं एक धनी के यहाँ नौकर था। उसने कोशिश की कि मैं अपनी लड़की उसे समर्पित कर दूँ। लेकिन मैं ऐसा नहीं चाहता था। एक दिन बात बढ़ गई। मैंने उसको अपना शिकारी चाकू भोंक दिया।'

मेरे बाप ने उसका हाथ पकड़ कर दबाते हुए कहा, 'तुम भी अरब हो। मैं भी अरब हूँ। किस्मत ने हमें अपने देश से भटका दिया है। मेरा तुम्हारा कबीला भी एक है। मुसीबत ने हमें एक कर दिया है।'

'तो क्या तुम भी अरब हो?'

'हाँ। मैं भी जिन्दगी की खातिर भाग कर आया हूँ। मैंने भी अपने मालिक को मार डाला था।'

फिर वे अपने सींग के गिलासों में शराब भर-भर कर पीने लगे और धीरे-धीरे बातें करने लगे। हम इतना ही समझे कि अब यह दोनों कुछ रोज यहीं रहेंगे। फिर वे वहीं अपने नीचे रीछों की खालें बिछा कर आग के पास सो गये।

मेरे बड़े भाई ने बहिन से धीरे से रीछ के खाल के नीचे ही फुसफुसा कर कहा, 'तूने सुना?'

'मैंने सब सुना,' बहिन ने कहा, 'लेकिन वह औरत बड़ी खराब है। मुझे उससे डर लगता है।'

उसने कोई जवाब नहीं दिया। उसके बाद हम तीनों सो गये।

जब हम दूसरे दिन उठे, हम ने देखा कि शिकारी की बेटी हम से पहले ही उठ गई थी। इस वक्त वह पहले से भी ज्यादा खूबसूरत दिखाई दे रही थी। उसने मेरी बहिन को आकर प्यार किया तो वह रो पड़ी।

मतलब यह है कि शिकारी और उसकी बेटी हमारी ही झोपड़ी में रह गये। रोज मेरा बाप और वह लंबा-चौड़ा शिकारी सुबह ही शिकार खेलने चले जाते। उसकी बेटी हमारे पास झोपड़े में ही रह जाती।

वह घर का सब काम करती। हमारे प्रति वह बहुत प्रेम दिखाती। इतनी अच्छी तरह वह हमसे पेश आती थी कि धीरे-धीरे हमारी बहिन भी उससे कम डरने लगी और उसके पास आने-जाने लगी।

मेरे बाप के स्वभाव में बड़ा फर्क दिखाई देने लगा। वह अब मेरी बहिन के प्रति उतना निर्दय नहीं रहा।

स्त्रियों के प्रति उसमें जो भयानक रोष था वह कम होने लगा। वह शिकारी की बेटी के प्रति आकर्षित था। बहुत ध्यान रखता था वह उसका।

अक्सर जब उसका बाप और हम सो जाते तो वह उससे बातें किया करता और शिकारी की बेटी उसको जबाब दिया करती। उसका बाप

और हमारा बाप एक हिस्से मैं सोते थे और हम बच्चे और वह शिकारी की बेटी उसी पुराने कमरे में सोते थे, जहाँ पहले सोया करते थे। बाप की जगह अब इस शिकारी की बेटी ने ले ली थी।

तीन हफ्ते बीत गये।

हम लोग जब सोने को भेज दिये गये उन लोगों में आपस में कुछ सलाह-मशविरा होने लगा।

मेरे बाप ने शिकारी से कहा, 'बिरादर ? अगर तुमको कोई एत-राज़ न हो तो मैं अपनी बात कहूँ।'

शिकारी ने अपनी बेटी की तरफ देखा जो उस वक्त आग की तरफ देख रही थी। हम तीनों आड़ में छुपे सब देख रहे थे। शिकारी ने पूछा, 'क्यों ?' कहते क्यों नहीं।'

मेरे बाप ने बताया कि वह उसकी लड़की से शादी करना चाहता था। उसने उसकी रजामन्दी ले ली है। अब बाप की ही इजाजत की जरूरत थी।

शिकारी ने कहा, 'मुझे इसमें क्या आपत्ति हो सकती है; तुम मेरी बेटी से शादी करना चाहते हो, यह तो बहुत अच्छा है। मैं उसे बधाई देता हूँ। तुम इसे रखो। लेकिन मैं यहाँ से चला जाऊँगा। कहीं और बस जाऊँगा। इसमें कोई बात नहीं।'

हमने सुना। भाई ने मुझसे कहा, 'सुना तू ने ?'

मैंने सिर हिलाया और बहिन की तरफ़ देखा।

बहन ने धीरे से कहा, 'उसकी आँख देखो आँख ?'

हमने देखा उस स्त्री की आँखों में बहुत-सी चमक आ गई थी। वह चमक हमारा बाप तो नहीं देख सका। मगर हमने देखी और हम डर से गये। फिर भी हम उधर नहीं गये क्योंकि हमें वहाँ से हटा दिया गया था।

'क्यों ?' मेरे बाप ने पूछा, 'तुम भी यहीं क्यों नहीं रह जाते।'

'नहीं, नहीं,' उसने कहा, 'मुझे यहाँ नहीं रहना चाहिये। बस

इस विषय को छोड़ दो। मैं वही करूँगा जो मुझे करना चाहिये, या जैसा सब करते हैं। इस पर बात न करो। तुम मेरी लड़की को ले सकते हो।'

'मैं तुम्हें इसके लिये धन्यवाद देता हूँ। मैं इसे बहुत अच्छी तरह रखूँगा, इसकी पूरी कद्र करूँगा। तुम इसकी चिंता क्यों करते हो? लेकिन एक परेशानी है।'

'मैं जानता हूँ तुम क्या कहना चाहते हो। यही न कि यहाँ कोई पुजारी नहीं है? यह बियाबान जगह है। सच है। यहाँ कोई कानून भी नहीं है। लेकिन फिर भी कोई रिवाज तो जरूर निबाहा जाना चाहिये। आखिर बाप की भी तो कोई खुशी है। क्या तुम इस लड़की से वैसे ही शादी कर सकोगे, जैसे मैं कहूँगा? अगर ऐसा हो, तो मैं अपनी बेटी का खुद ही तुमसे नाता जोड़ दूँगा।'

'मैं करूँगा,' मेरे बाप ने कहा।

'अच्छा तुम उसका हाथ पकड़ कर मेरे सामने प्रतिज्ञा करो।'

'मैं कसम खाता हूँ,' मेरे बाप ने कहा।

शिकारी ने कहा, 'यों कहो—मैं अल्प पर्वत की समस्त आत्माओं की सौगंध खाकर कहता हूँ कि......'

मेरे बाप ने कहा, 'तुम भी अरब हो, मैं भी अरब हूँ। हम जिस कबीले के लोग हैं, वे सदियों से बाल की पूजा करते हैं। मैं बाल की कसम क्यों नहीं खाऊँ?'

'लेकिन मेरी तबियत है। मैं जैसी कसम ठीक समझता हूँ वही पसंद भी करता हूँ।'

'अच्छी बात है,' मेरे बाप ने कहा, 'तुम्हारी मर्जी! तुम चाहते हो मैं उस चीज की कसम खाऊँ जिस पर मैं विश्वास नहीं करता?'

'विश्वास!' शिकारी ने कहा, 'तुम विवाह तो इसी तरह से कर सकते हो। अगर तुम्हें यह बात पसंद न हो तो, मैं अपनी बेटी को लेकर चला जाऊँगा।'

'अच्छी बात है,' मेरे बाप ने अधीरता से कहा, 'ऐसा ही सही। बोलो।'

शिकारी ने कहा, 'मैं अल्प पर्वत पर रहने वाली आत्माओं की सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि वे अपनी समस्त अच्छी या बुरी शक्तियों को जाग्रत करके सुनें कि मैं आज शिकारी बस्तर की बेटी तोशी को अपनी स्त्री बनाता हूँ। और मैं हमेशा उसकी रक्षा करूँगा, उसको आराम से रखूँगा, उससे प्रेम करूँगा। और कभी भी उसे मारने के लिये हाथ नहीं उठाऊँगा।'

मेरे बाप ने शब्द दुहरा दिये। शिकारी कहता गया, 'और अगर मैं अपना वचन पूरा कर न सकूँ, हार जाऊँ या बहक जाऊँ तो अल्प पर्वत की समस्त आत्माओं का प्रतिशोध मुझ पर, मेरे बच्चों पर उतरे, वे भेड़िये, गिद्ध और अन्य जंगली जानवरों द्वारा खा लिये जायें, उनको भीषण पशु फाड़-फाड़कर टुकड़े-टुकड़े कर दें और उनकी हड्डियाँ बारिश, धूप में पड़ी रहें। मैं यह सौगन्ध खाता हूँ।'

मेरे बाप ने अटक-अटक कर वे शब्द किसी तरह दुहरा दिये। मेरी बहिन अचानक ही डर से रो पड़ी और उसने जैसे रोकर अपशकुन कर दिया। मेरा बाप उस पर झल्ला उठा। वह बेचारी डर कर चुप हो गई और जाकर बिस्तर में छिपकर सुबकने लगी।

यों मेरे बाप की दूसरी शादी हुई। अगले दिन सुबह ही शिकारी बस्तर तोशी को हमारे यहाँ छोड़ कर घोड़े पर बैठ कर चला गया।

मेरा बाप अपने बिस्तर पर सोने लगा और फिर हम सब एक ही कमरे में आ गये। शादी के पहले जो चीज थी, वही फिर चलने लगी, सिर्फ इतना फर्क था कि हमारी नयी माँ हमारे प्रति अब प्रेम तो क्या जाहिर करतीं, बाप के घर न रहने पर, वह हमें मारती भी थीं। खास तौर पर बहिन को देख कर उसे अधिक क्रोध आता, क्योंकि उसकी आँखों में जैसे झल्लसी उठने लगती, जिसे देख कर हम तीनों भयभीत हो जाते।

एक रात हमारी बहन ने हम दोनों भाइयों को धीरे से जगाया।

'क्या बात है?' मेरे भाई ने फुसफुसाया।

बहिन ने कहा, 'वह बाहर गई है।'

'बाहर!'

'हाँ कपड़े भी नहीं पहने। सीधे बिस्तर से निकल गई हैं,' बहन ने कहा, 'मैंने देखा, जाने के पहले उसने मुड़कर निश्चय कर लिया कि दादा सो रहे हैं या नहीं। तब गई है।'

'इस वक्त उसे जाने की क्या जरूरत थी। और बिना चमड़े के कपड़े पहने वह इस ठंड में क्यों गई है? घुटने-घुटने तो बाहर बर्फ होगी!'

हम समझ न सके। जागते हुए चुपचाप पड़े रहे। घंटे भर बाद हमने अपनी खिड़की के नीचे भेड़िये की गुर्राहट सुनी।

भाई ने कहा, 'वहाँ भेड़िया है। वह उसे फाड़ खायेगा।'

'नहीं,' बहिन ने कहा।

कुछ ही देर बाद नई माँ भीतर आई। वह वही पतले कपड़े पहने थी जैसा कि बहन ने कहा था। उसने द्वार धीरे से बंद किया ताकि कोई आहट न हो और एक बर्त्तन में पानी लेकर पहले मुँह धोया, फिर हाथ और तब मेरे बाप के बिस्तर में जाकर सो गई।

हम कुछ नहीं समझे, लेकिन थर्रा उठे। हमने अगली रात को देखना फिर तय किया। फिर देखा और वही रात क्यों, हम कई रातें ऐसे ही देखते रहे। ठीक उसी समय, नई माँ बिस्तर से उठती और झोपड़े से बाहर चली जाती। उसके जाने के बाद अवश्य ही भेड़िये की गुर्राहट सुनाई देती, वह भी खिड़की के पास ही और लौटने पर बिस्तर में घुसने के पहले वह मुँह और हाथ अवश्य धोती। हमने इस दौरान में यह भी देखा कि वह शायद ही खाना खाने साथ बैठती। और जब कभी बैठती भी तब ऐसा लगता जैसे वह खाना नहीं चाहती लेकिन जब कभी पकाने के लिये माँस रखा जाता, तो वह नजर बचा कर एक आध टुकड़ा कच्चे गोश्त का मुँह में डाल लेती।

मेरा बड़ा भाई दिलेर था। वह जब तक पूरी जानकारी हासिल नहीं कर लेता, तब तक वह दादा से इस बारे में कुछ कहना नहीं चाहता था। उसने निश्चय किया कि वह उसका पीछा करेगा और यह देखेगा कि वह करती क्या है? मैंने और बहिन ने उसे इस बात को न करने के लिये बहुत समझाया भी कि यह काम खतरनाक है, लेकिन उसने कुछ नहीं सुना।

दूसरे दिन वह कपड़े पहने ही आ सोया और ज्योंही नयी माँ बाहर गई वह तुरंत मेरे बाप के धनुष-बाण को लेकर उसके पीछे चल पड़ा।

तुम सोच सकते हो कि मेरी और मेरी बहिन की हालत उस वक्त क्या रही होगी। उसके कुछ ही देर बाद धनुष की टंकार सुनाई दी। मेरा बाप नहीं जागा। हम दोनों काँपने लगे। क्षण भर बाद ही हमने नयी माँ को झोपड़े में घुसते देखा। उसके कपड़ों पर खून था। बहिन शायद चिल्ला उठती, लेकिन मैंने उसके मुँह पर हाथ रख दिया, हालाँकि मैं खुद बहुत ही डरा हुआ था। नयी माँ बाप के बिस्तर के पास आई। उसने निश्चित किया कि वह सो रहा था। तब वह आग के पास गई और उसने आग को तेज़ किया।

'कौन है?' मेरे बाप ने जाग कर पूछा।

'मैं हूँ,' नयी माँ ने कहा, 'जरा पानी गर्म कर रही हूँ। मेरी तबियत कुछ ठीक नहीं है। तुम सो जाओ।'

मेरा बाप करवट लेकर सो गया। लेकिन हम देखते रहे। नयी माँ ने कपड़े बदले और अपने उतारे हुए कपड़ों को आग में फेंक दिया। तब हमने देखा कि उसके सीधे पैर से काफ़ी खून निकल रहा था, जैसे वहाँ कोई बाण गड़ा हो। उसने उस पर पट्टी बाँधी और सुबह होने तक वह आग के पास ही बैठी रही।

बहिन का दिल बेहद धड़क रहा था और वह मुझसे चिपट गई। वही हाल मेरा भी था। हमारा भाई क्यों नहीं लौटा? नयी माँ के खून क्यों निकला! क्या भाई का तीर इसी के लग गया था?

सुबह जब बाप जागा तब मैंने कहा, 'दादा।'

'क्या है।'

'भइया कहीं नहीं दिखता।'

'भइया!' दादा ने कहा, 'कहाँ गया वह? कब गया था?'

नयी माँ ने कहा, 'हे भगवान! रात मैंने बिस्तर में पड़े-पड़े, बेचैनी में सुना था। जैसे किसी ने दरवाजा खोला। और तुम्हारा धनुष-बाण कहाँ है?'

मेरे बाप ने निगाह उठा कर देखा। धनुषबाण वहाँ नहीं था। क्षण भर वह परेशान सा नजर आया और तब उसने एक बड़ा सा फरसा उठाया और बिना कुछ कहे झोंपड़े के बाहर निकल गया।

शीघ्र ही वह लौट आया। उसके हाथों पर भाई की लाश थी। उसने उसे रख दिया और दोनों हाथों में मुँह छिपा कर बैठ गया।

नयीं माँ उठी। उसने उसके शरीर को देखा। मैं और बहिन फूट-फूट कर रोने लगे। हमारी हिचकियाँ बँध गईं। बाप गुमसुम सा बैठा था।

नयी माँ ने कठोरता से कहा, 'बच्चो! तुम फिर बिस्तर पर जाओ। जाओ सो रहो।' उसने मेरे बाप से मुड़ कर कहा, 'मुझे लगता है तुम्हारा लड़का जरूर रात को धनुषबाण लेकर किसी भेड़िये को मारने गया होगा और वह जानवर उसके लिये बहुत प्रचण्ड रहा होगा। बिचारा! उसने अपनी नासमझी और जल्दबाजी का कितना गहरा मोल चुकाया है।'

मेरे बाप ने कोई जवाब नहीं दिया। मैं कहना चाहता था। सब बता देना चाहता था। लेकिन मेरी बहिन शायद मेरा इरादा समझ गई थी। उसने मेरी बाँह पकड़ ली और मेरी तरफ इस तरह से देखा कि मैं चुप हो गया।

इस तरह मेरे बाप को असलियत का पता नहीं चल सका और हालाँकि हम भी पूरी तरह कुछ नहीं जान सके, लेकिन हमें यह आभास

अवश्य हो गया कि हमारे भाई की मौत का नयी माँ से किसी न किसी प्रकार का संबंध अवश्य है।

मेरे बाप ने उस रोज जा कर एक कब्र खोदी और उसने शव को उसमें रखकर उस पर पत्थर के ढोंके उठा कर रख दिये, ताकि भेड़िये उसे खोद कर खा न जायँ। इस घटना का मेरे बाप पर बड़ा असर हुआ। उसे काफी सदमा पहुँचा। वह कई दिन तक शिकार खेलने भी नहीं गया। हालाँकि कभी-कभी वह भेड़ियों को बुरी-बुरी गालियाँ देता था और दाँत भी पीसता था।

इस दौरान में भी नयी माँ की रात्रि के समय जाने की आदत वैसी ही चलती रही। उसमें कोई रुकावट नहीं आई।

मेरा बाप एक दिन धनुषबाण ठीक करने घर के बाहर गया और जब वह वहाँ से लौटा तो बेहद नराज़ नजर आता था। वह लौट कर भी बहुत जल्दी आ गया था।

उसने नयी माँ से कहा, 'सुनती हो!'

'क्या!'

'तुम विश्वास करोगी तोशी! इन भेड़ियों की जात को मैं धूल में मिला दूँ, इन्होंने मेरे बेटे की कब्र को खोद डाला और उसको खा गये अब सिर्फ हड्डियाँ बाकी रह गई हैं।'

'सच!' नयी माँ ने कहा!

बहिन ने मेरी तरफ देखा और मैंने उसकी आँखों से ही समझ लिया कि वह क्या कहना चाहती थी।

मैंने कहा, 'दादा! हर रात हमारी खिड़की के पास एक भेड़िया गुर्राता है।'

'सच,' मेरे बाप ने कहा, 'तूने मुझे पहले क्यों नहीं बताया? अगली बार तू कभी सुने तो मुझे फ़ौरन जगा दीजो।'

मेरी नयी माँ फ़ौरन वहाँ से हट गई। उसकी आँखों में झल्ल सी बल उठी और उसने दाँत पीसे।

मेरा बाप फिर बाहर गया और उसने मेरे भाई के अस्थि अवशेष को और भी ज्यादा पत्थरों से ढँक दिया। जो कुछ भी भेड़ियों से बच गया था।

बसंत ऋतु आ गई। बर्फ पिघल कर अदृश्य हो गई। हमें झोंपड़े से निकलने की इजाजत मिल गई। लेकिन मैं एक पल को भी बहन को अकेला नहीं छोड़ता था। भाई की मौत के बाद वही मेरा सहारा था। हम दोनों एक दूसरे को पहले से भी ज्यादा मुहब्बत करने लगे। मुझे उसे नयी माँ के पास अकेली छोड़कर जाने में डर लगता था क्योंकि नयी माँ उसके प्रति बड़ी निर्दय थी और उससे काफी कठोर और बुरा बर्त्ताव किया करती थी।

मेरा बाप अब अपनी खेती में लग गया था और मैं उसके साथ चला जाता था। और उसका हाथ बटाता था।

मेरी बहन मेरे साथ जाया करती थी। इस तरह घर में सौतेली माँ अकेली रह जाती थी।

जब हम काम किया करते बहिन हमारे पास बैठी रहती थी। मैंने देखा कि अब बसंत आने के साथ नयी माँ रात को धीरे-धीरे कम जाने लगी और खिड़की के पास भेड़िये की गुर्राहट भी सुनाई नहीं दी।

एक दिन बहिन तो बैठी थी, मैं और मेरा बाप खेत में काम कर रहे थे, तभी नयी माँ आई और उसने कहा कि वह दादा की ज़रूरत की जड़ी बूटियाँ ढूँढने जंगल में जा रही थी और बहिन को इसीलिये झोपड़े में जाकर बैठना चाहिये था कि यहाँ खाना पक रहा था। बहिन गई और बिल्कुल उल्टी दिशा में वन में चली गई। वह झोपड़े की ओर बिल्कुल नहीं गई थी।

लगभग एक घड़ी के बाद झोपड़े से बहिन का भयातुर चीत्कार सुनाई दिया।

मैंने कहा, 'दादा! शायद बहन जल गई है।'

दोनों अपनी कुदालें वहाँ फेंक कर झोंपड़े की तरफ भागे! ज्योंही

हम दरवाजे के पास पहुँचे बड़ी फुर्ती से एक बड़ा सा सफेद भेड़िया भीतर से निकल कर भागा। मेरे बाप के पास कोई हथियार न था। वह झोपड़े में घुसा। और उसने मेरी बहिन को दम तोड़ते हुए देखा। बहिन का बदन बुरी तरह घायल था और जमीन खून से भींग गई थी। मेरा बाप धनुषबाण लेकर भेड़िये का पीछा करना चाहता था, लेकिन ज्योंही उसने बहिन को देखा, वह रुक गया। उसने बच्ची को हाथों पर उठाया और रो दिया। कुछ क्षणों तक बहिन बड़ी करुण दृष्टि से देखती रही और फिर उसका सिर झूल गया। अभी हम लोग सँभल भी नहीं सके थे कि उसी वक्त नयी माँ भीतर आ गई।

उसने काफी परेशानी दिखाई। लेकिन खून देखकर उसमें वह भाव नहीं पैदा हुआ जो कि बहुधा स्त्रियों में पैदा हो जाता है।

'बेचारी!' उसने कहा, 'जरूर बड़ा सा सफेद भेड़िया होगा जो अभी मेरे सामने से भाग कर गया था। यह तो मर गई है!'

'जानता हूँ, जानता हूँ,' मेरे बाप ने कहा, जब कि शायद वह इतने दुख में न होता तो कहता 'मालूम है, मालूम है।' आज उसने मालूम होने में जानकारी से एक अनजान भेद ही खड़ा कर दिया था।

मुझे लगा कि वह मेरा बाप इस सदमे को बर्दाश्त ही नहीं कर सकेगा क्यों कि वह अपनी प्यारी बच्ची की लाश पर बैठा-बैठा घंटों रोया।

मुझे ताज्जुब हुआ। आज मैंने जाना कि वह भाई की मौत पर भी इतना नहीं रोया था। शायद इसका यह कारण था कि आज तक कभी उसने अपनी बच्ची को प्यार नहीं किया था। जिस दृष्टि से उसने अंतिम समय अपने बाप को देखा था, वह इतनी करुण थी, इतनी करुण थी कि उसे देख कर पत्थर का भी हृदय पसीज सकता था!

कई दिन तक मेरे बाप ने उसे कब्र में रखने की बात भी नहीं मानी, हालाँकि नयी माँ बराबर कहती रही कि अब तो कुछ हो नहीं सकता।

'कब तक यों ही बैठे रहोगे ?' उसने कहा, 'आखिर तो तुम्हें इसे कब्र में उतारना ही होगा। क्यों बिचारी की दुर्गत करते हो।'

मेरा बाप इसका उत्तर नहीं दे सका। केवल एक बार उसने आकाश की ओर देखा और उठ खड़ा हुआ।

उसने एक कब्र मेरे भाई की कब्र के बगल में खोदी।

और बहुत रोते हुए बहिन को उसमें रखा। देर तक वह उसे देखता रहा। फिर बड़ी होशियारी से कब्र को ढँक दिया और उसने इसका बहुत ध्यान रखा कि कहीं कोई भेड़िया न आ जाये। इसलिये उसने बहुत भारी-भारी पत्थरों से कब्र को ढँक दिया।

अब मेरी हालत और भी ख़राब हो गई। पहले मैं भाई और बहिन के साथ जिस पलँग पर लेटता था, उस पर मुझे अकेला सोना पड़ता। कुछ भी हो मुझे लगता कि हो न हो, मेरी नयी माँ का मेरे भाई और बहिन की मौत से कुछ सबंध जरूर है। वैसे मैं इसे समझा नहीं सकता था। लेकिन इसका नतीजा यह हुआ कि मैं उससे अब डरना भूल गया। मेरे भीतर उससे बदला लेने की आग भर उठी। मैं उससे नफरत करने लगा।

अगली रात को मैं जागा हुआ बिस्तर में लेटा था कि मैंने नयी माँ को चुपचाप उठ कर झोपड़े से बाहर जाते देखा। कुछ देर मैं चुप पड़ा रहा। फिर मैंने कपड़े पहने कि बाहर की ठंडक झेल सकूँ और दरवाजा तनिक खोल कर मैंने बाहर झाँका। चाँदनी चटकीली थी और मेरी नज़र वहाँ गई जहाँ मेरे भाई और बहन की कब्र थीं। और जो मैंने वहाँ देखा उससे मेरे रोंगटे खड़े हो गये। मेरी नयी माँ जल्दी-जल्दी कब्र के पत्थर हटा रही थी। मेरी बहिन की कब्र को खोल रही थी।

वह वही सोने के वक्त के कपड़े पहने थी और चाँदनी में सब साफ झलक रहा था। फिर वह हाथों से मिट्टी खोदने लगी और एक जंगली पागल जानवर की तरह फुर्ती से पत्थर इधर-उधर फेंकने लगी। मैं पहले तो समझा ही नहीं कि आखिर मैं करूँ क्या ? उसी वक्त मैंने

देखा कि उसने मेरी बहिन की लाश को ऊपर उठा लिया। मै सह नहीं सका। मैं भागा।

बाप के पास गया। झकझोर कर धीरे से कहा, 'दादा! दादा! जल्दी उठो। धनुषबाण उठाओ।'

बाप हड़बड़ा कर जाग उठा। उसने कहा, 'क्या हुआ? क्या वहाँ भेड़िये आ गये हैं!'

वह बिस्तर से उतर, कंधे पर खाल डाले धनुष-बाण उठा कर ले निकला तो घबराहट में वह नयी माँ को देखना भी भूल गया। मैंने चुपचाप दरवाजा खोल दिया। वह बाहर आ गया। मैं उसके पीछे चला।

मेरे बाप ने जो देखा उसकी वह स्वप्न में भी कल्पना नहीं करता था। उसने देखा। और वह कब्र की ओर बढ़ा। उसने देखा। वहाँ भेड़िया नहीं, स्वयं उसकी पत्नी ही, घुटनों और हाथों के बल बैठी, झुकी, बहिन का मांस ऐसे खा रही थी, जैसे कोई भेड़िया खा रहा था। वह इतनी तल्लीन थी कि उसे हमारा आना पता ही नहीं चला। मेरे बाप के चेहरे पर भय छा गया। उसके हाथ से धनुषबाण गिर गये और वह स्तंभित सा देखता रहा जैसे उसके रोमरोम में आतंक छा गया था। वह ऐसे था जैसे उसकी साँस रुक गई थी।

मैंने धनुषबाण उठा कर उसके हाथ में दे दिये। मेरा बाप चौंका और उसने धनुष पर बाण चढ़ा कर उसे इतनी जोर से मारा कि वह चीत्कार करके गिर गई।

'भगवान! बाल!' मेरा बाप चिल्लाया और धरती पर लोट गया।

मैं कुछ देर वहीं खड़ा रहा। मेरा बाप जागा।

'मैं कहाँ हूँ?' उसने कहा, 'क्या हुआ? ओह! हाँ! भगवान! बाल!'

वह उठा और हम दोनों कब्र तक गये और हमें देख कर बड़ा ही आश्चर्य हुआ कि वहाँ माँ का शव नहीं था, मेरे बहिन की लाश पर

एक बड़ा सफेद भेड़िया मरा पड़ा था। और अब हम ने देखा कि वह भेड़िया नर नहीं, मादा था।'

'सफेद भेड़िया!', मेरे बाप ने चिल्ला कर कहा, 'सफेद भेड़िया ही मुझे जंगल में भटका ले गया था। अब मैं समझा। मैं अल्प पर्वत की आत्माओं से उलझ गया हूँ।'

कुछ देर वह गम्भीर मुद्रा में खड़ा रहा। फिर उसने बहन की लाश को कब्र में फिर रखा और फिर ढँका और पागलों की तरह गाली देते हुए उसने भेड़िये के सिर को पत्थर से कुचल दिया।

हम झोपड़े में लौटे। उसने द्वार बन्द किया और हम फिर लेट गये। दोनों बेहद घबराये हुए थे।

अलह सुबह हम दोनों जग गये। द्वार पर किसी ने चिल्ला कर हाथ से दस्तक दी। हमने दरवाजा खोला तो देखा, हमारी नयी माँ का बाप शिकारी बस्तर था।

उसने गुस्से से पुकारा, 'मेरी बेटी, मेरी तोशी कहाँ है! बताओ मेरी तोशी कहाँ है!'

मेरे बाप ने उसी प्रकार गुस्से से कहा, 'वहीं जहाँ उस कमीनी को होना चाहिये था। वह नरक में गई है! चले जाओ, वर्ना अच्छा नहीं होगा।'

शिकारी हँसा। उसने कहा, 'तुम अल्प पर्वत की शक्तिमान आत्माओं से टक्कर लोगे? अरे मर्त्य! तूने एक भेड़िये की मादा से शादी की थी!'

'चुप रह दानव!' मेरा बाप चिल्लाया, 'मैं तुझे और तेरी शक्ति का चुनौती देता हूँ।'

'लेकिन तू देखेगा कि यह क्या है?' बस्तर ने कहा, 'याद कर, तूने क्या प्रतिज्ञा की थी! तूने कहा था तू कभी उस पर हाथ नहीं उठायेगा।'

'लेकिन मैंने पिशाचों से नहीं ! मनुष्यों से प्रतिज्ञा निबाहने की बात की थी।'

'नहीं,' बस्तर ने कहा, 'तूने वादा किया था। जरूर किया था! यह भी याद रख कि उस प्रतिज्ञा का अगला भाग क्या था ! तेरी संतान उसका बदला देगी। गिद्ध और भेड़िये उन्हें खायेंगे···।'

'निकल जा दानव ! चला जा यहाँ से,' मेरा बाप गुस्से से काँपता हुआ चिल्लाया।

बस्तर ने परवाह न करते हुए अपना वाक्य पूरा किया, 'और उनकी हड्डियाँ निर्जन में पड़ी रहेंगी, नंगी हड्डियाँ जिन पर मिट्टी की चादर भी न होगी ··· ।'

और वह ठठा कर हँसा। उसका वह क्रूर और वीभत्स हास्य झोंपड़े में गूँज गया। मेरा बाप अब अपने गुस्से को रोक नहीं सका। उसने प्रहार करने के लिये अपना फरसा उठाया।

'मैं इस सबकी प्रतिज्ञा करता हूँ', शिकारी बस्तर ने मुस्करा कर कहा।

मेरे बाप ने फरसा चलाया। वह चला और फरसा उस समय लम्बे-चौड़े शिकारी बस्तर में से ऐसे गुजर गया जैसे बस्तर वहाँ था नहीं। वह ऐसे पार हो गया जैसे बस्तर का रूप धारण करके हवा खड़ी थी। और मेरा बाप, अपने वार के झटके में, उसके गलत हो जाने पर, धड़ाम से नीचे गिरा।

यों शिकारी बस्तर, मेरे बाप के शरीर को लाँघता हुआ बोला, 'मर्त्य ! हमारी शक्ति उसी पर चलती है जिसके हाथ से हत्या हो जाती है। तूने तो दो बार हत्या की है ! अपने विवाह के समय तूने जो प्रतिज्ञा की थी, उसका फल तुझे भोगना ही होगा। तेरे दो बच्चे तो मर चुके हैं। अब तीसरे की बारी है। निश्चय ही यह भी इसी तरह मारा जायेगा क्योंकि तूने प्रतिज्ञा की थी और उस समय अल्प पर्वत की शक्तिमान आत्माओं ने उसे सुना था। जा चला जा ! तुझे जान

से मारना तेरे साथ रहम करना है, तू दुनिया में रह और दण्ड भोग। यही ठीक है।'

यह कह कर बस्तर गायब हो गया।

मेरे बाप ने उठ कर मुझे अत्यन्त स्नेह से अपने वक्ष से लगा लिया और फिर वह घुटनों के बल बैठ कर अपने परमात्मा बाल से प्रार्थना करने लगा।

अगले दिन उसने मुझे साथ लिया और वह झोंपड़ा सदा के लिये त्याग दिया और हम घूमते-घूमते पूर्व की ओर बढ़ चले, जहाँ से हम यूनान में उतर गये और फिर अरब में पहुँचे जहाँ कबीले के देवता बाल की मूर्त्ति के सामने मेरे बाप ने दो ऊँटों की कुर्बानी दी।

लेकिन उसके कुछ दिन बाद ही उसका दिमाग खराब हो गया और वह फिर मर ही गया। मैं निराश हो गया और मैंने फिर बगदाद जाकर एक शराब वाले की दूकान में नौकरी कर ली, जहाँ से मैं ईरान चला गया। जब जवान हो गया तो मैं आकर अरब में समुद्री बेड़ों में काम ढूँढने लगा और मुझे काम भी मिल गया।

रऊ की कहानी खत्म हो गई। उसकी उदासी वैसी ही थी।

सुहासिनी, सुषेण, आर्किमिडीस और सागरक चुपचाप सुन रहे थे।

सागरक ने कहा, 'बड़ी विचित्र कथा है। लेकिन यह भी तो हो सकता है कि उन्हें चाँदनी में भ्रम हो गया हो।'

सुषेण ने कहा, 'कहानी जैसी है उसमें तो भ्रम के लिये स्थान नहीं लगता।'

चक्रधर ने कहा, 'अभी पूरी बात तो सुनो। आगे क्या हुआ वही तो असली बात है। क्योंकि उसे मैंने देखा।'

आर्किमिडीस ने कहा, 'बताइये!'

चक्रधर ने कहा, 'जैसा कि मैंने कहा था हम समुद्र पर यात्रा कर रहे थे तभी रऊ उदास हो गया था, कहानी सुनाने के बाद वह और भी उदास दिखाई देने लगा। दूर मरुकच्छ दिखाई दे रहा था। एक

बड़ी हिलोर सागर में उठने लगी। हमारा छोटा-सा पहाड़ डगमगाने लगा।

रऊ ने कहा, 'चक्र !'

मैंने कहा, 'क्या है ?'

'मेरी आत्मा डर रही है।'

'कुछ नहीं रऊ हम तीर पर पहुँच जायँगे। वहाँ तुम अपने अरब भाइयों के पास जाना। बाल के मंदिर में कुर्बानी देना, तुम ठीक हो जाओगे।'

'नहीं,' रऊ ने कहा, 'मुझे ऐसा लगता है कि मैं मरुकच्छ तक कभी नहीं पहुँचूँगा।'

'तुम्हारा सिर फिर गया है।'

'नहीं चक्र मैं बिल्कुल ठीक हूँ। कोई आवाज मुझसे बराबर ऐसा कह रही है। मैं तुम्हारे साथ अब ज्यादा नहीं रह सकूँगा। मुझे याद रखना। मेरा और संसार में कोई नहीं है।'

'क्या बक रहे हो ?'

'मैं ठीक कहता हूँ चक्र। तुम मुझ पर एक अहसान कर सकोगे ?'

'क्या रऊ !'

'चक्र तुम मेरा सब धन ले लो !'

'हिश,' मैंने कहा, 'पागल हुए हो ! तुम मेरी मानों। तुम मरूकच्छ ही नहीं, तुम यवद्वीप तक देखोगे। घबराने की कोई बात भी तो हो !'

'मेरी मानो चक्र ! बहस न करो। तुम्हारा मित्र रऊ आखिरी इच्छा कर रहा है। उसे अस्वीकार न करो। माना कि मेरा सिर फिर गया है लेकिन मरुकच्छ पहुँच कर तुम मेरा धन वापिस भी तो कर सकते हो।'

इस बात का मैं उत्तर नहीं दे सका।

उसने सब धन मुझे दे दिया। हम समुद्र में थे और अब मरुकच्छ भी पास दिखाई दे रहा था।

उसी समय हिलोर उठी और एक बड़ा-सा जलजन्तु आकर जहाज से टकराया। मैं लड़खड़ा कर गिर गया। हमारे मल्लाहों ने घबड़ा कर पतवार उठा लिये। वह जलजन्तु उठा और उसने रऊ को अपने मुँह में पकड़ लिया और फिर पानी में डूब गया।

मैं देखता ही रह गया। मेरे मुँह से एक आश्चर्य की भयानक आवाज निकली और फिर सब शांत हो गया।

जब मैं होश में लौटा तब मल्लाहों ने मरुकच्छ के तीर से जहाज को बाँध दिया था।

'बताओ। क्या आत्मा ने बदला नहीं लिया। आप कहेंगे कि उसकी हड्डियाँ तो पल में डूब गईं! यही न? नहीं। नहीं कोई नहीं जानता कि उस जन्तु ने चबा कर उसे न जाने किस किनारे पर फेंक दिया होगा।'

चक्रधर ने चारों ओर देखा। सन्नाटा था।

सागरक ने कहा, 'ऐसा होना भी निश्चित नहीं करता कि आत्मा होती ही है। जानवर था, खा गया। जहाजों पर अक्सर जलजन्तु आक्रमण किया करते हैं।'

चक्रधर ने निराशा से सिर हिलाया। आर्किमिडीज सोच रहा था और सुषेण नीचे देख रहा था। सुहासिनी के मुख पर कुछ डरी हुई सी छाया थी। बाहर पानी बरस रहा था। घनघोर अँधेरा छाया हुआ था।

[३]

सुहासिनी ने कहा, 'स्वामी ठीक कहते हैं। जब मैं पन्द्रह साल की थी तब एक बार मैं अपने मामा के यहाँ पाटलिपुत्र गई थी। वे एक प्राचीन भवन में रहते थे जहाँ किसी समय लगभग ढाईपौने तीन वर्ष पूर्व चाणक्य के समय का कोई मद्यविक्रेता रहा करता था। मामा तो

उसी दिन किसी विशेष कार्य से निकट के एक गाँव में चले गये। हमारे घर के एक भाग में कोई नहीं रहता था। वहाँ दो युवक आकर ठहरे थे। एक मालव था, दूसरा मद्रक। उन्हीं की सुनाई कहानी कहती हूँ जो उन्होंने एक समय मेरे मामा को और हमको सुनाई थी तब जब कि मामा लौट आये थे।'

मद्रक ने कहा, 'आर्य!' उस समय रात थी ही और घनघोर सन्नाटा छाया हुआ था। हमने फिर इन्तजार किया। शायद पहले जो हमारी भूल रही हो। लेकिन फिर वही खाँसी सुनाई दी, जिससे पूरा घर गूँज उठा। दूर नगर के घंटे बजे और पड़ोस में किसी का बर्त्तन गिरा। हमें इन दो आवाजों से चैन न पड़ा क्योंकि यह आवाजें समझ में आने वाली थीं। चाँदनी झरोखे पर पड़ कर छनछन कर भीतर आती थी। दीवार और प्रकोष्ठ की धरती पर गिर रही थी।

फिर कुछ आवाज नहीं हुई। वहीं पत्थर जैसा अंधा सन्नाटा छा गया। उसके बाद ऐसा लगा जैसे किसी ने कोई किवाड़ खोल कर जोर से बंद कर दिया और पैरों में जल्दी-जल्दी चलने की आवाज आई। फिर एक भयानक चीत्कार उठा, हमें लगा कि वह शायद ऐसे प्राणी की पुकार है जो आधा पशु और आधा मनुष्य है। लेकिन हर अवस्था में अब क्रुद्ध हो गया है। तीन रातों के बाद आज यह चौथी बार ऐसी घटना हुई कि हम दोनों जाग उठे हालाँ कि गहरी नींद में सो रहे थे। दिन भर हम सम्राट् महानन्द के महलों के खंडहर देखते रहे। रात को जग कर नींद आ जाना ऐसी कौन-सी बड़ी बात थी।

लेकिन उसके बाद तो वह पावों की चाप हमारे घर के भीतर की ओर आने लगी। हमारे दरवाजे पर हाथ पटकने लगी। हम डर रहे थे। यह आदमी था या पशु? हमने यही सोचा था कि यह कोई प्रेत है और हम दोनों में काफी वीरता होते हुए भी हम डरते थे। भीतर अंधकार में केवल वह चाँदनी छनछन कर आती थी और कुछ नहीं था। द्वार के बाहर क्या था, वह देखते हुए डर लगता था।

मैंने मालव की ओर देखा। वह अपनी शैय्या पर उठ कर बैठ गया था। चाँदनी उसके मुँह पर पड़ रही थी। मैंने देखा उसकी आँखें स्थिर थीं और वह एकटक द्वार की ओर देख रहा था। मैंने ध्यान दिया कि वह मुझ सा ही काँप रहा था।

उसने लड़खड़ाती आवाज में कहा, 'मद्रक !'

मैंने धीरे से कहा, 'क्या है मतलब ?'

'यह क्या है मद्रक !'

लेकिन मैं क्या जवाब देता ! मैं उसे बताता भी क्या, सो मैं चुप ही रहने को उचित समझ कर सुनता रहा।

कुछ देर बाद लगा कि बाहर की चीज डोलने-फिरने से थक गई है और लौट कर अपने प्रकोष्ठ में चली गई है।

आप तो जानती ही हैं कि यह भवन जब आपने हमें दिया था तो हमारा भाग उद्यान में एक ओर से पूरा स्वतन्त्र-सा ही था। बस आपने यह कहा था कि दो नये प्रकोष्ठ और बनेंगे। वह भी आप हमें दे देंगी। सो हमने कुछ मित्रों को अपने ही पास ठहरने का न्यौता दे दिया था। हमारे पास कुछ सेवक थे। घर में कोई स्त्री तो थी नहीं।

पर इस समय हम दो थे, अपने नौकर बाहर थे। जब वह चीज लौट गई तो हमने चैन की लंबी साँस लिया और हमें लगा कि नरक का भयानक निवासी अब चला गया है। कम से कम कल तक वह अब नहीं आयेगा।

सुबह देखा तो सब मित्र आ गये। हम समझे अब वह नहीं आयेगा परन्तु रात को ही यह हमारी भूल प्रमाणित हुई। रात को वह आया और आज सब लोग आतंकित हो उठे।

प्रातःकाल मालव से और मुझसे तरह-तरह के सवाल किये गये। मालव चुपचाप सुनता रहा, सुनता रहा। हठात् वह क्रोध से कह उठा, "जो हो, तुम्हारा वह आवाज नुकसान क्या करती है ! आप लोग अभी सेवकों से कुछ न कहें। नये प्रकोष्ठ बने जाते हैं और हम सब वहाँ

चले चलेंगे। तब तक अगर किसी को अधिक भय लगता है तो भाई वह चला जाये। मैं किसी की तबियत के खिलाफ तो यहाँ रख नहीं सकता!'

हम सब को बुरा भी लगा पर अब भी गुस्सा नहीं आया। क्योंकि मालव को उस हालत में छोड़कर हम कैसे जा सकते थे? हम कोई चूहे तो थे नहीं, जो जहाज़ को डूबते देखकर सरकने लगते? लिहाजा मन में यह चाह कर भी हम उस जगह को छोड़ दें, हम वहीं मनमार कर बने रहे। जरा भी कोई अगुवा बन जाता, तो शायद डूबते को तिनके के सहारे की तरह, सब उसे पकड़ कर पार चले जाते।

मालव को यह भवन बहुत पसंद था। विशेषकर चाणक्य का नाम तो उसे और भी गौरवान्वित कर देता था! भवन बड़ा था। उसमें काफी जगह थी। सामान था।

यद्यपि मामा ने जब मकान दिया था तब कह दिया था कि जो भी किराया दोगे ले लूँगा। महज बस तो जाओ, हमें क्या मालूम था कि मामा का मतलब क्या था! मालव ने हँसी कर कहा था, 'आप तो आयें ऐसे कहते हैं जैसे उसमें कोई प्रेतपिशाच रहता है।'

मामा ने कहा था, 'यही सब लोग कहते हैं। अगर तुम्हें भय लगे तो वहाँ कभी मत रहना।'

मालव हँसा था और मैं भी। दोनों इस संसार को इतना ही समझते थे जितना कि यह दिखाई देता है।

मालव को विश्वास नहीं था कि वहाँ कुछ भयानक वस्तु सचमुच ही है। हो सकता है मामा के कुछ शत्रु भवन को बदनाम करने के लिये ऐसा कुछ करते हों। उसने मुझे बाहर उद्यान में बुलाया और एक पेड़ के तने पर बैठ गया।

उसने कहा, 'मित्र मद्रक! यहाँ हमारी बात सुनने कोई नहीं आयेगा। अब बताओ। तुम मेरे सबसे अच्छे मित्र हो। ऐसी अवस्था में क्या किया जाये। इतना अच्छा भवन पाटलिपुत्र में और कहीं मिल

सकता है ? तुम्हारी क्या राय है। मैं समझता हूँ ऊपर का प्रकोष्ठ ही भय का स्थान है। चल कर उसे दिन में क्यों न देख लिया जाये ?'

मैंने हँस कर कहा, 'मैं तुम्हारे हर काम में साथ हूँ।'

मालव को बड़ा संतोष हुआ। हम उस प्रकोष्ठ का मार्ग ढूँढने चल पड़े। भीतर से कहीं राह नहीं थी। बाहर उसका रास्ता पिछवाड़े की तरफ बेलों से घिरा हुआ मिला। उसकी चूलें जम गईं थीं और जब हमने उसे खोला तो वह चर्राहट की आवाज से खुला। बड़ी ऊँची सीढ़ियाँ दिखाई दीं। मैं और मालव ऊपर चढ़ने लगे और ऊपर रुक गये। उस बड़े दासे के पास एक रास्ता सा था, फिर बड़ा कमरा था। उसने द्वार खोला।

भीतर जाकर उसने कहा, 'क्या राय है। बंद करना ही ठीक होगा।'

और उसे बंद कर लिया। फिर हम आगे बढ़े।

वह एक सुन्दर दीर्घ प्रकोष्ठ था। उसमें बहुमूल्य सामान था लेकिन उसमें एक अद्भुत बात थी। कुर्सी, आसन, पलँग, जो भी था उसके पाये साँपों की तरह गुँथे हुए से बने थे। ऊपर देखा। हर जगह सुनहले रंग से साँप बने हुए थे और उनकी आँखें लाल और हरी थीं। कहीं-कहीं पिशाचों के भी चित्र थे। सुन्दर होते हुए भी वह प्रकोष्ठ कुछ डरावना लगता था। यही हमें परेशान कर रहा था। उस कमरे में पुरानी हवा की बू भी न थी और हवा वहाँ साफ थी। लेकिन बिस्तर पड़े कपड़े की झालर साँपों की तरह बलखाती हुई झूल रही थी।

और अचानक, देखते समय, मुझे ऐसा लगा जैसे कोई मेरी आत्मा को खींच लेना चाहता था। भय से मेरा बुरा हाल हो गया। मुझे ऐसा लगता जैसे वह कमरे की हवा घनीभूत मांस की तरह मुझसे लिपट गई थी और मेरे भीतर से मेरी आत्मा को खींच कर निकाल लेने की कोशिश कर रही थी। मुझे भीषण संघर्ष करना पड़ रहा था। मुझे लगा कि नरक के भयानक पिशाचों ने मुझे घेर लिया है और चारों तरफ वह विकराल आकृतियाँ ही नाच-नाच कर झपट रही हैं।

मैं आतंकित-सा उस प्रकोष्ठ से निकलने की चेष्टा करने लगा और काफी देर तक हवा से लड़ता रहा। फिर एक अजीब बात यह हुई कि मेरी आधी तबियत करने लगी कि मैं वहीं रहूँ। उन्हीं में मिल जाऊँ। मैं तुरंत समझ गया कि मेरे भीतर का पाप उस ओर मुझे खींच रहा था।

और मेरा संघर्ष बढ़ गया। कोई मेरी आत्मा को निकाल लेना चाहता था और मैं उससे लड़ रहा था। यह कैसा अद्भुत युद्ध था। दीखता कोई न था! चारों ओर हवा थी कि मांस था। जिसको मैं पकड़ नहीं पा रहा था!

मुझे लगा मेरे पाँवों का भार बहुत हो गया था, मेरी जीभ हिल नहीं पाती थी और मुझे ऐसा लगा जैसे मुझे किसी दैत्य ने पकड़ लिया था। किन्तु मैं साहस नहीं हारा।

पता नहीं कब तक यह युद्ध चलता रहा। परन्तु अंत में मैं उसके पंजे से छूट गया और बाहर दासे पर ही आ कर रुका। उफ। कितना विकराल था वह सब!

तब मैंने खुले द्वार में से देखा कि मालव की भी वही हालत थी। वह भी बहुत डरा हुआ था। उसका मुख सफेद हो गया था। जैसे उसमें रक्त ही नहीं था और जैसे वह जिन्दा नहीं था, मुझे लगा वह मालव का शव था।

मैंने चाहा कि उसे आवाज दूँ। लेकिन मेरा गला रुँध गया, मैं चुपचाप भयभीत-सा खड़ा रहा। लग रहा था कि अभी कोई दुर्घटना होने वाली है। देखता रहा, देखता रहा। सहसा ही मालव बाहर आया और हमने तब दरवाजा जोर से बंद कर दिया।

मालव लंबी साँसें ले रहा था। फिर शायद वह रोया या कराहा, परंतु मैंने देखा कि मैं खुद ही रो रहा था।

भाग्य से कोई उधर नहीं आया। हम बाहर आ गये। लेकिन अब भी हम लोगों की एक दूसरे से बातें करने की हिम्मत नहीं हो रही थी।

दुपहर को भोजन के समय तक ही हम दोनों की चेतना ठीक से लौट सकी। मालव के सिर पर बालों में एक सफेद सी लकीर लग गई थी जो कि पहले वहाँ नहीं थी। हमने मित्रों से कह दिया कि हम शोण का प्रवाह देखने चले गये थे। वहाँ से लौटते में मालव एक चूने की गाड़ी के पास से निकलते समय ऊपर से गिरते चूने के नीचे आ गया होगा।

मैंने एकांत में मालव से कहा, 'अब ?'

उसने मेरी ओर देखा और काँप गया। मेरी भी यही हालत थी। भय के कारण हम एक दूसरे के अनुभवों का मिलान भी नहीं कर रहे थे, क्योंकि हम पर ऐसा आतंक छाया हुआ था कि हम उसका नाम भी नहीं लेना चाहते थे। मजूरों को जाकर देखा। नये प्रकोष्ठ कल ही बनने वाले थे। एक दिन और न ठहरने में शायद मित्र हँसते।

और फिर जो हमने देखा था उसकी तुलना में द्वार पर आवाज होना तो कोई बड़ी बात नहीं थी।

चुनाँचे रात को वही हुआ। दरवाज़ों पर दस्तक पड़ी, आवाजें आईं। हम भीतर डरते रहे। परंतु फिर सब शांत हो गया मैं और मालव थकान के कारण सो गये।

प्रातःकाल जब आँख खुली, घर में बहुत शोर हो रहा था।

मालव ने देखा कि......

इसके आगे मामी ने ही कहना प्रारंभ किया। जब इतना हो गया तो मुझे मालूम हुआ। मैंने तुरंत मालव और मद्रक को बुलाया। वे आये। मैंने सब पूछा और सुन कर कहा। आर्य के आने तक तुम दोनों हमारे भाग में आ कर रहो क्योंकि आज की घटना भयानक है।

घटना यह थी कि एक बड़े इमली के पेड़ के नीचे उसी कमरे के द्वार के सामने एक सुन्दर-सा अजनबी लड़का, कोई अठारह वर्ष का, मरा पड़ा था। उसके हाथ में कटार थी जिससे उसने अपना गला कई

जगह से काट लिया था। प्रातःकाल ग्वाला आया तो उसने देखा और कोलाहल किया।

स्पष्ट ही वह लड़का आत्म-हत्या करके मरा था। संभवतः वही बात थी जो मद्रक ने कही थी कि उसकी आधी तबियत यह करने लगी थी कि वह उसी प्रकोष्ठ में रह जाये। वह वहीं रह भी गया।

हम सबने जाकर शव देखा। बिचारा अभी संसार में आँखें खोल ही रहा था। ऐसा काम करने की उसे जरूरत ही क्या थी!

अब इतने दिन बीत गये हैं कि मुझे वह सब साफ-साफ याद नहीं है कि उस समय क्या कहा गया था क्या सलाह हुई थी। केवल हम लोग रो रहे थे। सुहासिनी ने मामी की बात सुनाते हुये कहा और तब कहा, फिर तो मैं भी वहीं थीं। मैंने भी देखा।

नगरपाल को सूचना मिली तो तुरन्त आ गया। उसे कोई आश्चर्य नहीं हुआ था। उसकी मुद्रा देखकर लगता था कि कोई बात विशेष नहीं थी। वह मद्रक और मालव के साथ घर तक गया। मैं जाना चाहती थी पर मामी ने रोक लिया। बाद में सब पता चला। हुआ यों कि वे भवन तक बातें करते हुए उस भाग में चले गये।

नगरपाल ने शव को देखा और कहा, 'मर गया।'

अपने आप। एक वृद्ध ने साथ दिया।

'यही होना था।'

'इसी भवन का था?'

'नहीं,' मद्रक ने कहा।

एक सेवक ने बताया कि फूल तोड़ने कल उद्यान में आया था। किसी ने उस पर ध्यान नहीं दिया क्योंकि लड़का चोर नहीं लगता था, कुलीन दिखाई देता था।

उसकी बात में सच्चाई थी। मान भी ली गई।

नगरपाल ने कहा, 'यहाँ तो कोई बंगीय आर्य रहते हैं न? उन्होंने यह भवन खरीद लिया है?'

'हाँ', मद्रक ने कहा।

'धोखे में पड़ गये,' नगर पाल ने कहा, 'यहाँ तो प्रेतों का स्थान है। मैं होता तो यहाँ कभी नहीं रहता।'

नगरपाल नगर रक्षकों को लेकर चला गया।

मालव सूना-सा खिड़की में बैठा चुपचाप देखता रहा। लाश को ले जाया गया। जब वह चला गया उसने मुड़कर मद्रक से कहा, 'यहाँ कोई सिद्ध नहीं है?'

एक सेवक ने सुन लिया। उसने कहा, 'स्वामी!'

'क्या है?'

'मैं, आज्ञा हो तो कुछ कहूँ।'

'कहो।'

'प्रपंचबुद्धि बौद्ध तांत्रिक है। वह प्रेतों को से कर लेता है। कहें तो उसे बुलाऊँ?'

'बुलाओ,' मालव ने कहा।

प्रपंचबुद्धि आया। वह पतला-दुबला व्यक्ति था और हुँ फट् हुँ फट् किया करता था। जब मालव उसे समझाने लगा तो उसने ऐसा प्रगट किया जैसे वह सब जानता था।

उसने कहा, 'आज रात को पिशाच अधिक शोर करेगा, लेकिन वह नुकसान कुछ नहीं कर सकेगा, इसलिये कोई घबराये नहीं।'

आखिर वही रात का समय आया। प्रेत बाहर आया और आज वह बहुत क्रुद्ध था। उसने सिद्ध के दरवाजे को बहुत खटखटाया, बहुत चिल्लाया। लेकिन जब वह थक गया तो हार कर लौट गया। प्रातः सिद्ध ने बताया कि वह गोला खींचकर उसमें बैठ गया था और रात भर मंत्र पढ़ता रहा।

प्रातः की किरणें फूट निकलीं। सिद्ध बाहर आया। सब इकट्ठे हो गये। मामी ने मुझे वहाँ नहीं जाने दिया। मुझे क्रोध भी आया पर मालव और मद्रक भी इसी विचार के थे। लाचार मैं वहीं रह गई।

सिद्ध अकेला ही उसी प्रकोष्ठ में घुसा और दासे पर सब लोग जा खड़े हुए। सिद्ध ने कहा, 'मैं भीतर जा रहा हूँ। चाहे कुछ भी हो जाये, लेकिन तुममें से कोई भीतर नहीं आना।'

कमरे में जाकर उसने जोर से मन्त्र पाठ प्रारम्भ किया। उसके एक हाथ में दीपक जल रहा था। एकदम दीपक बुझ गया और तब उसका मुख विकृत होने लगा। जब मंत्र पाठ समाप्त हो गया दीपक पृथ्वी पर गिर गया और ऐसा लगा जैसे वह साँस लेने के लिये छटपटा रहा है। वह चिल्लाया कि उसका गला घुट रहा था।

कमरे के बाहर के लोगों ने हिलने का प्रयत्न किया, किंतु वे ऐसे हो गये थे, जैसे पत्थर के हों। अजीब आवाजें भीतर से आ रही थीं। कभी सिद्ध प्रपंचबुद्धि कराहता, कभी चिल्लाता, कभी हुंकारता। और तब किसी ने उसे उठाकर दासे पर फेंक दिया और दरवाजा बन्द हो गया।

तब सबके हाथ-पाँव चलने लगे।

वे उसके पास गये। देखा वह मूर्छित था और उसके गले पर लाल लाल निशान थे। वे उसे उसके प्रकोष्ठ में ले गये और उसे शैय्या पर लिटा दिया। जब वह होश में आया तब उसने बताया कि उसने भी इतना भयानक और प्रचंड प्रेत आज तक जीवन में कभी नहीं देखा था। इतना उसे मालूम हो गया था कि नंदवंश से भी पुराने समय में यह कमरा बना था। तब यह प्रेत एक किसी पर चढ़ कर यहाँ आ गया था, बाद में यह भवन चाणक्य के समय बना और वह कमरा इसी में शामिल हो गया।

'किसी वैद्य को बुलाया जाये?' मालव ने कहा।

'नहीं नहीं,' तांत्रिक ने कहा, 'वैद्य इसमें क्या कर सकते हैं? यह चीजें मनुष्य की बुद्धि और सामर्थ्य से परे हैं। तुरन्त भवन का यह भाग छोड़ दो और बाहर चले जाओ। प्रेत बहुत ही विकराल है।'

अगले दिन घर छोड़ना निश्चित हो गया। मामी ने कहा कि वे सब

आज रात भवन के अपने भाग में सो रहें तो उन्हें आनंद होगा। वे कैसे उन्हें ऐसे छोड़ सकती हैं।'

अभी यह बातें हो ही रही थी कि सवा चार हाथ लम्बा, सुदृढ़ और दीर्घकाय गांधार निवासी शैलूष रथ से उतरा और आकर मित्रों से लिपट गया। उसका स्वभाव बहुत ही अच्छा था और आपानकों और गोष्ठियों में तो जैसे उसके बिना काम ही नहीं चलता था। लेकिन आज मित्रों की उदासीनता देख कर वह चौंका। उसने कहा, 'क्यों? क्या बात है? क्या तुम सब मर गये हो?'

मालव ने सब बताया। शैलूष ठठाकर हँसा। मालव को क्रोध आ गया। सब ही विक्षुब्ध थे।

शैलूष ने कहा, 'भाई क्या करूँ, मैं नहीं मानता।' और फिर उसी व्यंग से वह हँस दिया। उसका हास्य सब को अच्छा लगा क्योंकि वह एक मानवीय वस्तु थी।

शैलूष ने कहा, 'अच्छा इस समय तो तुम सब कार्षापण देकर मेरे लिये और सबके लिये पारसीक मदिरा मँगाओ, और आज रात में तुम्हारे प्रेत वाले प्रकोष्ठ में ही जाकर सोऊँगा।'

पहली बात तो तुरन्त मान ली गई, लेकिन मालव और मद्रक ने उसकी दूसरी बात को मानने से इन्कार कर दिया।

एक बार तो मद्रक को लगा कि शायद शैलूष ही ठीक हो। संभव है हम लोग कायर हों। लेकिन तभी उसकी आत्मा पर एक भारीपन छा गया और देखते ही देखते संध्या बीत गई। पाटलिपुत्र के संघाराम के अंतिम घंटे भी बज कर चुप हो गये। सब अपने-अपने कमरों में सो गये। और शैलूष नहीं माना। वहीं जाकर सो गया।

मामी घबरा रही थी।

मैंने कहा, 'मामी! क्या होगा!'

मामी ने कहा, 'अगर हमारे वंग का तांत्रिक होता और कोई अनर्थ होता तो शायद कुछ करता भी।'

उसी समय भयानक आवाज सुनाई पड़ी। सब लोग बाहर निकल आये। और कमरों के बीच के खुले भाग को देखने लगे। मशालों के उजाले में उन्होंने देखा शैलूष, वह लम्बा-चौड़ा भीमकाय पुरुष गेंद की तरह लुढ़क रहा था। उसे प्रेत यहाँ तक ले आया था। कभी शैलूष पागल की तरह हँसता, कभी चिल्लाता। बड़ा भयानक दृश्य था।

वे सब देखते रहे। और वह दाँत चमकाने लगा। फिर अचानक ही उसका भाव बदल गया और वह गुस्से से सब पर टूट पड़ा। उसका डील-डौल ऊँचा था। एकदम टूट पड़ने से सब चिल्ला उठे। वह उस समय उनसे लड़ने लगा। पर आखिर कई आदमी थे! उन्होंने उसे किसी न किसी तरह काबू में कर ही लिया। कइयों के खून निकल आया था, क्योंकि शैलूष ने दाँत गड़ा दिये थे, नाखून मार दिये थे।

संघर्ष समाप्त हो गया। वह फिर मूर्छित हो गया, उसके होंठ पर फेन निकल-निकल कर जम गया था। उसके सिर पर पानी डाला गया। कनपटियों पर तेल मला गया। उसने कराह कर आँखें खोली और फिर वह होंठ हिलाने लगा। ऐसा लगा जैसे वह कुछ कहना चाहता था, परन्तु शब्द उसके मुँह से निकल नहीं पा रहे थे। फिर वह बकने लगा...और वह कोई सपना देख रहा था।

उसके अस्फुट शब्द यों थे। मामी भी वहीं थी।

"मैं...मैं...वहाँ सोना चाहता था...लेकिन...वहाँ प्रकाश... उजाला...कैसा अजीब...नहीं नहीं...वह एक सफेद सी...सफेद सी... चीज का खम्भा...पास आया...बहुत पास...और पास...बीच में कुछ हरा सा था...गीला गीला सा...वह बाहर...आ गया...मैं देख रहा हूँ... देख रहा हूँ...वह केवल आँखें हैं.. नहीं...केवल हाथ है...नहीं... केवल चेहरा है...नहीं...केवल पंजा है, विकराल पंजा है . उसके हजारों आँख हैं...मैं आँखे नहीं हटा सकता...वैसी भयानक आँख हैं!...जला रहीं हैं मुझे...नहीं मेरा खून सर्दी से जम रहा है . मुझे देखना ही पड़ रहा है...मेरी आँखें बँध गई हैं...अब उसके आधा ही

चेहरा है...केवल आँखें हैं...वह हँस रहा है...मुँह बना रहा है मुझ पर...वह मुझे धक्का दे रहा है...मैं लौटना चाहता हूँ...द्वार बंद है... वह मेरा स्वामी है...मुझे वह बुला रहा है...स्वामी...मैं आ नहीं सकता...यह मेरा अपराध नहीं है...'

उसने उठने का यत्न किया, किन्तु फिर बिस्तर पर गिर पड़ा और फिर चुप हो गया।

कुछ देर वह सो गया और जब फिर जगा तो वह कराह रहा था, प्रार्थना कर रहा था, 'मुझे ले चलो, मुझे ले चलो, दया करो, दया करो।' वह दुख और भय से पलँग पर उछलने सा लगा, 'वह मुझे बुला रहा है, वह मुझे बुला रहा है—मुझे लौटना ही चाहिये...'

सब लोग उसके बिस्तर के चारों ओर खड़े थे।

तांत्रिक प्रपंचबुद्धि ने कहा, 'पिशाच ने इस पर अपना प्रभाव डाल दिया है। तुरन्त इसे इस भवन के बाहर ले चलो, क्योंकि आज रात उसका प्रभाव बहुत ही प्रचंड है। वह मुझे भी जीत चुका है।'

सब मिले और उठाकर शैलूष को बाहर ले आये।

वह फिर मूर्छित हो गया था। अतः यह कठिन नहीं लगा। बड़ी कठिनाई से द्वार खोल कर बाहर आने पर सब ने देखा कि अभी प्रभात नहीं हुआ था। अंधकार था। मशालें जल रही थीं। छायाएँ आड़ी-तिरछी होकर पड़ रही थीं। हर झाड़ी डरा रही थी क्योंकि वहाँ अँधेरा था। उसी समय ऐसा लगा जैसे भवन काँप रहा था। भीतर कोई जोर से हँस रहा था। सबकी साँस रुक गई। तभी एक उल्लू सिर पर से उड़ गया और दो बिल्लियाँ जैसे कहीं आपस में एक दूसरे पर चिल्ला कर टूट पड़ीं।

वे लोग मामी के घर की ओर आ गये और शैलूष को अलिंद में लिटा दिया।

शैलूष को ठीक होने में एक वर्ष लगा, वह भी तब जब कि छ महीने उसे विष्णु के मन्दिर में रखा गया।

सुहासिनी चुप हो गई। रात और गहरी हो गई थी। हवा बड़ी तेज चल रही थी और पानी अब भी काफी तेजी से गिर रहा था।

४

आर्किमिडीस ने कहा, 'सागरक! जब मैं तुम्हारी तरह तरुण था मैं भी विश्वास नहीं करता था। लेकिन जो मैं तुमसे कह रहा हूँ वह सत्य है क्योंकि वह सब मेरी आपबीती है। उस सब की याद मुझे ऐसे है जैसे वह सब कल ही की बात है। उस रात से आज बीस बरस बीत गये हैं। इन बीस वर्षों में मैंने केवल एक ही व्यक्ति से यह बात कही है। और अब क्योंकि तुम विवश कर रहे हो, इसलिये मैं तुमसे कह रहा हूँ। तुम अपने हठ पर दृढ़ रहो, किंतु मेरी बात भी सुन लो। मैं नहीं चाहता कि तुम कुछ भी बात स्वीकार ही करो। मैं तो इस विषय में बिल्कुल दृढ़ हूँ। मैं तो अपनी बात कहता हूँ। और वही मेरे लिये, कहता हूँ, काफी है।

बर्फानी ऋतु थी। मैं ईरान में था। पूरे दिन मैं धनुष-बाण लिये शिकार करता फिरा। ठहरा मैं एक ईरानी के पास था। हवा बहुत तेज चल रही थी, ठंडी, बर्फीली। बीस साल पहले की उस रात में मैं अपना रास्ता भूल गया। वह जगह कोई ऐसी नहीं थी कि कोई जानबूझ कर अपना रास्ता भूल जाता। तुम सोच सकते हो मुझे उस दिन कितनी परेशानी हुई होगी। शाम तो रात में बदल गई पर बर्फ अँधेरा बन कर गिरने लगी। मैंने अपने हाथ से अपनी आँखें ढँकी और अँधेरे में चारों ओर देखने का प्रयत्न किया। दूर पाँच कोस पर कुछ उजाला-सा था। मैं नहीं जानता कि ऐसा क्यों था। मुझे और तो कुछ सूझा नहीं।

शरण की आवश्यकता थी। मैं किसी तरह घिसटता हुआ बढ़ने लगा और सुबह से मैंने कुछ खाया भी नहीं था।

हवा रुक गई, बर्फ़ ज़्यादा बढ़ गई। ठंड और भी ज्यादा हो गई। और रात और भी गहरी हो गई। मेरी किस्मत में भी जैसे अँधेरा ही छा गया और मैंने सोचा कि मेरे बिना उनको क्या परेशानी होगी जो कि मेरे लिये इतना सब कर रहे थे। वे नहीं चाहते थे कि मुझको यानी उनके अतिथि को किसी प्रकार का कोई कष्ट हो।

मैं भी उनको बहुत चाहता था। आज प्रातः जब मैं चला था तब गृहपत्नी ने कहा था, 'रात तक अवश्य लौट आना।'

मैंने कहा था, 'जरूर आ जाऊँगा।'

और अब मैं अपना वचन नहीं रख पा रहा था।

मुझे यही लगता था कि यदि कोई खाने की चीज मिल जाये, पहर आध पहर आराम कर लूँ। तो किसी को रास्ता दिखाने वाले को लेकर पहुँच जाऊँ। मगर यहाँ था कौन ? यहाँ तो सिर पर आसमान था, छत भी नहीं थी।

और बर्फ़ गिरती ही गई। मैं बार-बार रुकता और पुकारता, किंतु जब मैं चुप हो जाता तो सन्नाटा और भी अधिक गहरा हो जाता। वह और भी भयानक था। मुझे एक अजीब सी बेचैनी थी। और मुझे उन यात्रियों की याद आने लगी जो कि बर्फ़ पर चलते-चलते थक गये और वहीं गिर कर बर्फ़ में गलकर मर गये। क्या मेरे साथ भी यही होगा, मैंने सोचा, और फिर विचार आया कि क्या पूरी रात मुझे इसी तरह चलता ही रहना पड़ेगा। क्या इस तरह चलते-चलते एक समय ऐसा नहीं आयेगा कि मैं गिर जाऊँगा। और तब मेरी हिम्मत टूटने लगी। और मुझे लगा, मैं नहीं बचूँगा।

लेकिन क्या मैं अभी से मर जाऊँगा ! अभी से ! अभी तो मैं पूरी तरह स्वस्थ हूँ। इतना सुंदर जीवन यों ही अकस्मात नष्ट हो जायगा ! और तब मैं बार-बार पुकारने लगा और मेरी आवाज लौटने लगी।

क्या मेरी पुकार लौट रही थी ! या मुझे इसका केवल भ्रम हो रहा था ! मैं फिर चिल्लाया। और फिर गूँज उठी। और दूर अंधकार में मुझे एक प्रकार की किरण दिखाई दी, कभी दिखती, कभी छिप जाती, और वह क्रमशः मेरे पास आने लगी। मैं तेजी से उसकी ओर दौड़ा और तुम सोच भी नहीं सकते कि उस निर्जन में एक बुड्ढे आदमी को चीनी कंदील हाथ में लिये देखकर मुझे कैसा अपार हर्ष हुआ था।

'जूपीटर !' मेरे मुँह से फूट निकला।

उसने कंदील उठाई और चुंदीसी आँखों से देख कर कहा, 'क्यों ? क्या हुआ ?'

'तुम आ गये। मुझे लगा मैं बर्फ़ में मर जाऊँगा।'

'जरतुष्ट्र की यही मर्जी थी। इसमें क्या अचरज है ! आदमी आते हैं, और कभी-कभी रास्ता भी भूल ही जाते हैं।'

'अगर उसकी यही मर्जी है तो और बात है,' मैंने कहा, 'लेकिन अब मेरे साथ एक साथी तो है। लेकिन मैं अकेला खो जाना नहीं चाहता। मैं अब दारा बाग से कितनी दूर हूँ !'

उसने कहा, 'करीब दस कोस !'

'और सबसे पास का गाँव यहाँ से कितनी दूर है ?'

'छ कोस, उस ओर।'

'तुम कहाँ रहते हो।'

'उधर !' उसने अबकी बार कंदील को दूसरी ही ओर हिलाया।

'तुम घर जा रहे हो ?'

'हाँ। क्यों ?'

'तो मैं तुम्हारे साथ चलूँगा।'

बूढ़े ने अपनी नाक खुजलाई और सिर हिलाया और कहा, 'बेकार है। वह तुम्हें भीतर नहीं घुसने देगा।'

'वह मैं देख लूँगा,' मैंने पूछा, 'लेकिन वह कौन ?'

'मेरा मालिक।'

'मालिक कौन है ?'

'उससे तुम्हें मतलब ?'

उसका यह तपाक जवाब सुन कर मैं समझ कर चुप रह गया कि वह बताना नहीं चाहता।

'अच्छी बात है। कोई बात नहीं,' मैंने कहा, 'तुम चले चलो। मैं सब ठीक कर लूँगा।'

'क्या ?'

'मैं मालिक से खाना माँग लूँगा, पनाह भी माँग लूँगा।'

'कोशिश कर देखो,' बूढे ने कहा। वह अब मेरी ओर देख नहीं रहा था! मैं उसके पीछे चला जा रहा था। क्या करता ? मैं तो भूख से मरा जा रहा था! उस समय अकड़ने की कोई गुंजायश ही नहीं थी। बूढ़ा मेरे लिये देवता था। वह मुझे दुनिया में वापिस ले जा रहा था।

गिरती बर्फ में वह आगे बढ़ता ही गया। अंधकार में कुछ बड़ी सी स्तब्धता दिखाई देने लगी, और भी काली-काली।

एक बड़ा कुत्ता बुरी तरह भोंकता हुआ भागा हुआ आया।

मैंने कहा, 'यही घर है ?'

'यही है।' उसने कुत्ते को डाँटा और चाबी जेब से निकाल कर ताला खोला।

मैं अभी तक उससे ईरानी में बोल रहा था क्योंकि मैं ईरानी जानता था। मैं उसके ही पीछे घर में घुस गया और यह शीघ्रता मैंने इसलिये की कि कहीं वह अपने मालिक के डर से मुझे बाहर न छोड़ जाये। उसकी कंदील के प्रकाश में मैंने देखा कि फाटक पर बड़ी-बड़ी कीलें जड़ी थीं और एक बन्दीगृह का-सा द्वार लगता था।

भीतर एक बड़ा सा कमरा था। उसकी छत से कई गोश्त के बड़े बड़े लौंदे लटक रहे थे, ऐसा लगा जैसे जाड़े में खाने के लिये जानवरों को मार कर मांस को नमक लगा कर रख दिया गया था, ताकि वह बिगड़ न जाये। एक कोने में छत तक अनाज का ढेर लगा हुआ था।

यह बात भी यही प्रमाणित कर रही थी। खेती-बाड़ी का सामान एक कोने में था।

तभी एक घंटी बज उठी।

'चले जाओ,' बूढ़े ने कहा, 'मालिक का कमरा ऊपर ही है।'

मैंने देखा। वहाँ एक काले रङ्ग का दरवाजा था जिस पर चीनी अजदहा बना हुआ था। उसकी आँखें लाल थीं, पूँछ कटीली थी और दाँत निकाले वह ऐसा लगता था जैसे झपटने ही वाला था। मुझे झिझकते देख कर बूढा हँसा और उसने कहा, 'तस्वीर है।'

मैं एकदम भीतर चला गया। मैंने इसका भी इन्तजार नहीं किया कि पहले बुलाया जाऊँ, तभी भीतर घुसूँ।

वहाँ एक बहुत ही बुड्ढा आदमी था जो कि चीनी था। उसकी मूँछें नीची झुकी थीं। सफेद थीं। सिर पर गुँथी हुई चोटी थी। उसके सामने कई खजूर की किताबें धरी थीं और वह एक कालीन पर बैठा था। उसके सामने दीपक जल रहा था।

उसने कहा, 'तुम कौन हो? यहाँ कैसे आ गये, क्या चाहते हो?'

मैंने वैसे ही उत्तर दिया, 'आर्किमिडीस, भारत में रहने वाला। अभी दाराबाग से चला था, राह भूल गया। खाना चाहता हूँ। और सोना चाहता हूँ।'

उसकी भौं आपस में मिल गईं।

'मेरा घर सराय नहीं है,' उसने कहा। उसके स्वर में घमंड था। उसने पुकारा, 'फिरदौस!'

वह अभी तक ईरानी में ही बोल रहा था।

फिरदौस ने नीचे से कहा, 'मालिक।'

'इधर आओ!'

'आया!'

फिरदौस ऊपर आया।

मालिक ने कहा, 'तू बाहर गया था?'

'हाँ मालिक।'

'कब आया ?'

'अभी।'

'तूने किस हिम्मत से इसे भीतर घुसाया !'

'मैंने नहीं बुलाया। यह मेरे पीछे लग गया। मेरे से पहले चलकर आया और इस लम्बे-चौड़े जवान को मैं रोक भी नहीं सकता था।'

उसने मुझसे शुद्ध संस्कृत में कहा, 'और आप किसकी आज्ञा से, किस अधिकार से इस भवन में घुस आये ?'

'उसी की आज्ञा से जिसने आपको भवन में बिठाया और मुझे राह पर भटकाया। उसी अधिकार से जिससे मैं आपकी नाव को पकड़ लेता बशर्ते कि मैं डूब रहा होता ! आत्मरक्षा के अधिकार से मैं यहाँ आ गया।'

'आत्मरक्षार्थ ?'

'बाहर दो अंगुल बर्फ पड़ चुकी है,' मैंने कहा, 'और सुबह तक तो इतनी बर्फ गिर जायगी कि मैं उसमें डूब जाऊँगा।'

वह खिड़की के पास गया। उसने एक भारी काला पर्दा हटाया और बाहर देखा। और कहा, 'तुम ठीक कहते हो। खैर। तुम ठहर जाओ लेकिन नाम से तो यूनानी लगते हो !'

'हाँ मैं वंशानुक्रम से यूनानी हूँ। पर अब भारतीय हूँ।'

'कहाँ रहते हो ?'

'विदिशा में।'

'वह तो सम्राट वासुदेव के राज्य में है ?'

'हाँ।'

'वासुदेव कैसा आदमी है।'

'महान् है।'

'कनिष्क जैसा तो नहीं जिसने चीन पर आक्रमण किया था ?'

'नहीं।'

'कनिष्क हार गया था। उससे उसके वंशजों ने अक्ल तो सीख ली है,' चीनी वृद्ध ने कहा। फिर फारसी में पुकारा, 'फिरदौस। खाना ले आ! अतिथि यहीं खायेंगे।'

उसने मुझे बैठने का इशारा किया। और मेरे बैठ जाने के बाद फिर वह पढ़ने में डूब गया।

मैंने अपने धनुषबाण को उतार कर एक कोने में रखा, लेकिन खड्ग को कमर से नहीं खोला।

अब मेरी नजर उस कमरे पर गई। पुरानी भीतों पर नरकंकाल, नरक के प्राणी, अजदहे, पिशाच, डाकिनी, और न जाने कितने ऐसे ही विकराल चित्र वहाँ बने थे। उसके सामने बड़े-बड़े पुराने ग्रन्थ थे। बड़े पुराने ग्रन्थ थे। एक ओर जड़ी-बूटियाँ रखीं थीं। कुछ की गंध से मैंने उन्हे पहचाना भी, परन्तु छुआ नहीं। काँच के एक बड़े पात्र में एक कला नाग बंद था जो कभी-कभी भीतर ही भीतर सरकता था।

जैसे-जैसे मैंने बियावान के उस मकान में यह सब चीजें देखीं, मेरी जिज्ञासा बढ़ने लगी। मुझे आश्चर्य घेरने लगा। ऐसा बिचित्र कमरा मैंने देखा ही नहीं था।

वृद्ध अत्यन्त तल्लीन था। उसकी गालों की उठी हुइ हड्डियों पर दीप का उजाला पड़ रहा था और वह झुका हुआ था। उसके सिर के आगे के बाल उड़ गये थे, जिससे उसका माथा बहुत चौड़ा दिखाई देता था।

मैं सोचने लगा कि वह आखिर कौन हो सकता था! वह चौड़ी हड्डियों का लम्बा-चौड़ा दीर्घकाय व्यक्ति था। उसे देखकर लगता था कि कोई बड़ा आदमी था।

फिरदौस खाना ले आया।

खाना बकरे का गोश्त और रोटी था!

उसने अब नम्रता से कहा जो कि चीनियों की विशेषता है, स्वागत है।

फिरदौस ने खाना रख दिया।

मैं खाने लगा। कितना स्वादिष्ट लगा वह भोजन मुझे मैं तुमसे कह नहीं सकता। मैंने जम कर खाया। बूढ़े का खाना दूध और कलिया था, जो वह धीरे-धीरे खाता रहा। जब हम खा चुके तो फिरदौस बर्त्तन उठा कर ले गया।

उसके बाद वह अँगीठी भर कर ले आया और मैं और मेरा मेजबान आग तापने लगे।

बूढ़े ने कहा, 'युवक!'

मैंने आँखें उठाईं।

उसने कहा, 'तेईस बरस!'

'जी!'

'हाँ तेईस बरस!'

मैंने आँखें उठाईं।

'तेईस बरस से,' उसने कहा, 'मैं संसार से दूर हूँ। इस बीच मैं मैंने दुनिया से कोई संबंध नहीं रखा। इधर कोई आता-जाता नहीं। चार साल पहले तुम्हारी तरह एक यात्री और आ गया था। चार वर्ष बाद आज तुम आये हो।'

फिर वह चुप हो गया।

मैं समझ नहीं सका कि मैं क्या उत्तर दूँ?

उसने फिर कहा, 'उसी ने मुझे बताया था कि कनिष्क का बेटा उत्तर में राज करता है। अब सातवाहन हैं कि नहीं?'

'हैं।'

'कहाँ हैं?'

'दक्षिण में।'

'कुषाण दरबार में चीन का दूत रहता है। या नहीं?,

'रहता है।'

'मैं तुमसे संसार के बारे में जानना चाहता हूँ। बता सकोगे?'

'अब पूछिये,' मैंने कहा, 'जो मैं जानता होऊँगा अवश्य आप की सेवा में प्रस्तुत करूँगा।'

उसने कुछ देर झुककर कुछ सोचा और अपनी कुहनियों को अपने घुटनों पर टेक कर हथेलियाँ मिला कर उसने कमलदल की तरह फैला दीं और उनके बीच में अपना मुँह रख कर वह कुछ देर चिंता करता रहा। और आग पर उसकी नजर जम गई। फिर उसने बात शुरू की।

'रासायनिक बहुश्रुत के विषय में बता सकते हो?'

'वे तो मर चुके हैं।'

'अच्छा! और तक्षशिला में जोरासायनिक मिलिंद था!'

'वह तो बहुत बूढ़े हो गये हैं। अब उन्होंने कार्य्य त्याग दिया है और मथुरा में जाकर देव मन्दिरों में ही समय व्यतीत करते हैं।'

वह सब ऐसे ही प्रश्न पूछता रहा, जिनका कि रसायन तंत्र और जादू से सम्बन्ध था। बाकी से जैसे उसे कुछ मतलब ही नहीं था। मैं स्वयं इस क्षेत्र में अधिक जानकारी नहीं रखता था। मेरे लिये उसके प्रश्नों का उत्तर देना कठिन हो रहा था।

फिर भी यह मुझे अच्छा नहीं लगा कि वह जिन लोगों के बारे में संसार से इतनी दूर रह कर जाने, उन्हें मैं संसार में रह कर न जानूँ। अत: उसके प्रश्नों का मैं यथासाध्य उत्तर देता गया।

वह कुछ संतुष्ट दिखाई दिया।

फिर उसने पूछा, 'क्या किसी ने भारत में सोना बना लिया?'

'मुझे तो इस पर विश्वास नहीं है?'

'तिब्बत की गुफाओं में जो चीलें अपने बच्चों की आँखें खोलने को पारस पत्थर लाती हैं, चरवाहे जो अपनी बकरियों के पाँवों में लोहे की नाल ठोक कर हिमालय पर चराते हैं, उनकी सहायता से कोई अभी तक पारस पत्थर तलाश कर सके हैं?'

'नहीं।'

वृद्ध ने कहा, 'मैंने बहुत यात्रा की है। मैंने सारा चीन देखा है।

मैंने पूर्व के सारे अनार्य्य मंगोल देश देखे हैं। दक्षिण में सिंहल तक गया हूँ। तुम कभी कामरूप के स्त्री राज्य में गये हो ?'

'नहीं !'

'तो तुमने कुछ नहीं देखा। साधना तो वहीं होती है।'

और उसके बाद उसकी प्रश्नावली बंद हो गयी। वह बोलने लगा और मैं मंत्र मुग्ध-सा सुनता रहा।

कितना अगाध ज्ञान था उसका। उसने चीन, महाचीन, ईरान, यूनान, कार्थेज़, फीनिशिया, इटली, मिश्र, भारत, अरब, सिंहल, यवद्वीप, और न जाने कहाँ-कहाँ के तांत्रिकों और रसायनिकों की बातें बताईं। और उसके मुख से ऐसा लगा वह सब, जैसे वह मुझे बता नहीं रहा, वह असल में गाना गा रहा था और मैं सुन रहा था।

उसने कहा, 'तुम जानते हो। यह संसार धीरे-धीरे अपना ज्ञान खोता जा रहा है।'

'क्यों ?'

'हीनयानी बौद्धो ने बुद्धि, बुद्धि कह कर सृष्टि के रहस्यों की तरफ देखने से इंकार करके इरान के उस क्षेत्र को बिल्कुल ही छोड़ दिया, जिधर कि हमारी सृष्टि का मूल है।'

मैंने कुछ नहीं कहा।

उसने फिर कहा, 'तुम जानते हो मृत्यु क्या है ?'

'अंत है।'

'अंत ! फिर आत्मा क्या करती है ?'

'मुझे नहीं मालूम। मिस्री मानते हैं कि कयामत तक वह कब्र में रहती है, ब्राह्मण धर्म तथा अन्य संप्रदायों के लोग पुनर्जन्म मानते हैं। हीनयानी आत्मा को नहीं मानते पर पुनर्जन्म मानते हैं।'

'वह सब मैं जानता हूँ,' वृद्ध ने कहा, 'तुमने कभी यहूदी मकड़ा देखा है ?'

'मकड़ा ! यहूदी !!' मैंने पूछा।

उसने कहा, 'हाँ वह तंत्र की बात है। उसे छोड़ो।'

फिर वह सोचने लगा।

फिर वह दर्शन पर बातें करने लगा। और मैंने देखा कि बड़ा ही प्रकाण्ड विद्वान् था।

उसने कहा, 'आत्मा के अनेक क्षेत्र हैं।'

मैं सुनने लगा। तभी उसने पूछा, 'आत्मा के लिये देह क्या है?

'क्षेत्र ही है।'

'अच्छा मर कर आत्मा कहाँ जाती है?'

'वह स्वर्ग और नरक में जाती है।'

'बस?'

'हाँ।'

'और जो भूत, प्रेत, पिशाच, ब्रह्मराक्षस होते हैं।'

'लोग कहते तो हैं।'

'तुमने नहीं देखे?' वह मुस्कराया।

'नहीं। मेरा ऐसा दुर्भाग्य नहीं।'

'क्यों? दुर्भाग्य क्यों कहते हो?'

'लोग कहते हैं वे डराते हैं।'

'सब नहीं डराते युवक! वे इसी धरती पर इच्छा रूप होकर रहते हैं। जो अच्छे होते हैं वे डराते नहीं।'

'अच्छा! आपने देखा है।'

वह रहस्यमय ढंग से मुस्कराया। कहा, 'भूत क्यों बनता है?'

'नहीं।'

'वह बनता है अपनी इच्छा के अपूर्ण रह जाने से।'

और फिर वह शांत हो गया। वह उठा और उसने खिड़की का पर्दा हटा कर देखा और कहा, 'बर्फ गिरना तो बन्द हो गया।'

'हो गया!' मैंने कहा। जैसे मैं उठने ही वाला था।

'क्यों?'

'मैं जाना चाहता हूँ !'

'कहाँ ?'

'दारा बाग ।'

वह तो काफी दूर है ।'

'है तो । लेकिन वहाँ मेरे मेजबान मेरे इन्तजार में घबरा रहे होंगे ।'

'कल पहुँच जाना ।'

'पर मैं रात का वादा कर आया हूँ ।'

'तुम निश्चय ही पहुँचना चाहते हो !'

'हाँ सच ही मैं उत्सुक हूँ । अगर कोई मुझे मार्गदर्शक या रथ मिल जाय तो मैं इस समय बीस चाँदी के सिक्के भी दे सकता हूँ ।'

'इससे कम में ही काम चल जायेगा,' उसने कहा, 'यहाँ उत्तर की ओर एक अड्डा है । वह स्थान यहाँ तीन कोस है । उसकी स्थिति ठीक राजमार्ग पर है । और वहाँ से आखिरी यात्रा में भी गाड़ी निकलती है, जो रुस्तम सराय पर ठहरती है जो दाराबाग से आगे है । तुम यदि उसे पकड़ सको तो दाराबाग रात को ही पहुँच सकते हो । फिरदौस तुमको इस बर्फानी मैदान के बाहर छोड़ आयेगा । और वहाँ से सीधा रास्ता पकड़ कर तुम चले जाना ।'

'धन्यवाद !' मैंने कहा ।

वह फिर मुस्कराया । उसकी मुस्कराहट रहस्यभरी थी, लेकिन जाने की उत्सुकता में डूबा हुआ मैं उसको पकड़ नहीं सका ।

फिरदौस को उसने सारी बात समझा दी और कहा, 'लो ! बाहर बहुत सर्दी है । मदिरा पीते जाओ ।'

उसने अपने रसायनों की अलमारी खोली और एक गिलास भर मुझे मदिरा दी ।

मैंने कहा, 'नहीं, नहीं । क्या जरूरत है ।'

'जानते हो बाहर कितनी घनी बरफ़ गिरी है। तुम्हें चलने में कष्ट होगा। जाने के पहले एक गिलास पीते जाओ।'

आखिर पीना पड़ा।

'बड़ी तेज है,' मैंने कहा।

कलेजे में लकीर खिंच गई।

उसने कहा, 'बड़ी गर्म रखेगी यह।'

'अच्छा विदा दीजिये। मेरी भूलों को क्षमा करिये। आपने जो जीवनदान दिया है, उसके लिये मैं किस प्रकार अपनी कृतज्ञता प्रगट करूँ, यह मैं नहीं कह सकता!'

बहरहाल मैं बाहर आया।

फ़िरदौस ने द्वार में ताला लगा दिया। और हम बर्फ़ीले स्थान में आ गये। हवा तो बन्द थी लेकिन वहाँ बड़ी भयानक ठंड थी। आकाश की छतरी में कोई तारा नहीं था। बिलकुल घुप्प अँधेरा छा रहा था। फ़िरदौस को यह काम पसंद नहीं था।

मैं अपना धनुष-बाण लिये उसके पीछे-पीछे चलता रहा।

एक जगह जाकर फ़िरदौस रुक गया।

मैंने देखा हम बहुत चल आये थे। शराब की गर्मी अभी तक सन-सना सी रही थी। मुझे रास्ता पता ही नहीं चला।

'क्या हुआ?' मैंने कहा।

'तुम्हारी सड़क वह रही,' फ़िरदौस ने कहा।

'किधर!'

'बस इधर से चले जाओ। पत्थरों की इस चट्टानी दीवार का ध्यान रखना। राह न भूल जाना।'

'क्या इसी पर राजरथ चलते हैं जो एक सराय से दूसरी सराय तक पहुँचाते हैं?'

'हाँ यही वह मार्ग है।'

'हमारे भारत में ऐसे नहीं चलते।'

फिरदौस ने कहा, 'ईरान में चलते हैं।'

'लेकिन तुमसे और तुम्हारे स्वामी के सिवाय तो मुझसे किसी ने ऐसा नहीं कहा।'

'तुम इस भाग में नये हो।'

'अब मुझे कितना चलना है ?'

'एक कोस।'

मैंने उसे धन दिया। वह लेकर मुस्कराया।

उसने कहा, 'सड़क साफ है। पैदल खूब चल सकते हैं। लेकिन उस ओर उत्तर में एक जगह जरा सड़क टूटी है।'

'कैसे ?'

'वहाँ देख कर जाना। वहाँ एक पुरानी लाट भी गड़ी है! मार्ग वहाँ पर बना नहीं है।'

'क्यों ?'

'एक बार वहाँ दुर्घटना हो गई।'

'कैसे ?'

'एक गाड़ी उलट गई थी और करीब पचास हाथ नीचे जाकर गिरी।'

'उफ! बहुत लोग मरे होंगे ?'

'केवल तेईस वर्ष पहले।'

'तेईस वर्ष !' मैंने फिरदौस को देखा। वह गंभीर था। उसने कहा, 'ध्यान रखना। लाट के पास। सड़क टूटी है।'

'अच्छी बात है।'

और नमस्कार के बाद हम चल पड़े। कुछ देर में ही फिरदौस की कंदील दिखाई देना बंद हो गई। शायद वह किसी आड़ में पहुँच गया था।

फिर मैं अपने रास्ते पर चल पड़ा। चारों ओर गंभीर सन्नाटा छा रहा था। मेरे पाँवों की चाप सुनाई दे रही थी।

और मुझ पर उस सन्नाटे का एक अजीब-सा असर पड़ने लगा। मैं जल्दी-जल्दी चलने लगा। मैंने एक गाना भी गाया और वक्त काटने को मैंने एक सौ साढ़े उन्नासी दीवारों के ऊपर पहले चक्रव्याज जोड़ा और किसी तरह मैं अपने भीतर सरकने वाली उस दहशत को दूर करने की कोशिश करने लगा, जो धीरे-धीरे हर हालत में मेरे भीतर बढ़ती जा रहा थी।

कितना सन्नाटा था वह!

तारे नहीं थे।

केवल अँधेरा था। इतना अँधेरा कि मेरे पाँवों के नीचे की बर्फ़ भी काली-काली सी लग रही थी। काफी पड़ चुकी थी वह बर्फ। उस पर चलते समय मेरे पाँवों की आवाज ही बहुत कम होती चली जा रही थी।

ठंड बढ़ती ही चली जा रही थी। मैं पूरी शक्ति लगा कर तेज रफ्तार से चल रहा था, ताकि गर्माई बनी रहे, लेकिन मेरे लिये यह असंभव हो रहा था कि उस ठंड से मैं अपने को मुक्त रख सकूँ। चलना मुझे ऐसा कठिन लगने लगा, जैसे मैं किसी पर्वत पर चढ़ रहा होऊँ। दम फूलने लगा। आखिर मैं थक गया और एक पत्थर के सहारे टिक गया। इस तरह दूर से मुझे एक आलोक की बूँद हवा में तैरती हुई दिखाई दी।

पहले मैं समझा कि शायद फिरदौस लौट कर आ रहा था।

लेकिन फिर दूसरी रोशनी चमकी। ऐसा लगा जैसे दोनों आलोक विंदु एक ही ऊँचाई पर थे। और एक ही साथ बढते आ रहे थे।

मुझे तुरंत ध्यान आया।

यह तो रथ है !!

रथ !!

और दोनों ओर रात में उँजाला करने को मशालें जल रही हैं।

फिर गाड़ी धीरे-धीरे पास आ गई। क्योंकि रोशनी की फरफराहट दिखाई देने लगी। फिर गाड़ी दिखाई देने लगी।

काफ़ी बड़ा रथ था।

मुझे संदेह हुआ।

मुझे तो रथ लाट के आग मिलने वाला था न ?

फिर यह क्या है!

मगर ठंड ने सोचने न दिया।

मार्ग के मोड़ पर भी गाड़ी तेज थी। बर्फ में धँसे पहिए आवाज नहीं कर रहे हे। चार बड़े घोड़े जुते थे एक सारथी बैठा था।

और मशालें ढेर-ढेर धुँआ देती हुई जल रही थीं।

मैं आगे बढ़ कर चिल्लाया। एक क्षण मुझे लगा कि किसी ने शायद सुना नहीं। परंतु नहीं। गाड़ी रुक गई। कुछ दूर आगे बढ़ कर रुकी क्योंकि उसकी रफ्तार काफी तेज थी।

मैं लपक कर रथ पर चढ़ गया और बैठ गया। उसमें तीन यात्री और बैठे थे। मैं भी एक कोने में बैठ गया।

वे चमड़े के कपड़े पहने थे। सर्दी की वजह से वे चुप थे।

गाड़ी चल पड़ी। मैं भी बैठ गया।

रथ में बैठने पर मुझे सीलन की बू आई। बाहर की सर्दी से भी रथ के भीतर अधिक सर्दी थी। उसके भारी पर्दे गिरे हुए थे। एक ओर का पर्दा अब भी उठा था, जिधर से मैं रथ पर चढ़ आया था।

मैंने अपने सहयात्रियों की ओर देखा।

वे तीनों खामोश बैठे थे। वे सोते हुए नहीं लग रहे थे। लेकिन तीनों पीठ टेके हुए, पीछे की ओर झुके हुए बैठे थे जैसे कि वे सोच रहे थे। मैंने बात करने की कोशिश की।

कहा, 'उफ! आज की रात कितनी ज्यादा सर्द है।'

मैंने सामने के यात्री की ओर देखा।

उसने सिर उठाया। मुझे देखा। लेकिन बोला कुछ नहीं।

'ऐसा लगता है,' मैंने कहा, 'जैसे सर्दी इस साल पहले से कहीं अधिक पड़ रही है।'

हालाँकि अँधेरे में उसकी आकृति साफ-साफ नहीं देख सका। मैंने इतना देख लिया कि उसकी आँखें मुझ पर ही जमी हुई थीं। फिर भी उसने एक शब्द नहीं कहा।

और कोई मौका होता तो शायद मुझे बुरा लगता लेकिन उस वक्त मुझे गुस्सा नहीं आया। ठंड काफी थी। मेरी हड्डी तक कँप सा छाया हुआ था। गाड़ी के भीतर की वह अजीब गंध मेरी तबियत मिचला रही थी। मैंने सिर से पाँव तक काँपते हुए अपनी बाँयी ओर के मुसाफिर की तरफ देखा और पूछा, 'आपको अगर कोई आपत्ति न हो तो, वह पर्दा भी खींच दिया जाये। हवा निकलती रहे तो अच्छा रहेगा।'

वह न बोला, न हिला।

मैंने जोर से कहा, 'आपको अगर कोई आपत्ति नहीं हो तो मैं वह पर्दा भी खींच दूँ। ताकि साफ हवा भीतर आये और निकल जाये।

लेकिन उस पर कोई असर ही नहीं हुआ।

मैंने अधीर होकर वह पर्दा खुद ही खींच दिया। लेकिन वह मोटा तस्मा मेरे हाथ में टूट कर आ गया जो कि पर्दा थामे हुए था। और तब मुझे लगा मेरे हाथ में काई सी आ गई थी।

'बड़ी खस्ता गाड़ी है,' मैंने मन में कहा, 'न जाने किस जमाने की है, पता नहीं चलता।' मैंने गौर से देखा। मैंने देखा बाहर की मशालें बुझने को आ गई थीं। हर जगह खस्ता थी। मैंने देखा जहाँ मैं बैठा था, वह जगह भी चर्राई हालत में थी।

सीलन की बदबू फिर आने लगी।

मैंने तीसरे मुसाफिर की तरफ मुड़ कर कहा, 'गाड़ी तो बड़ी खस्ता है। मेरे विचार में यह कोई गाड़ी है, जो शायद तब तक के लिये है जब तक कि नयी गाड़ी ठीक नहीं हो जाती।'

मैंने अभी तक इस मुसाफिर से बात नहीं की थी।

उसने धीरे मेरी ओर सिर घुमाया, लेकिन बोला एक शब्द भी नहीं। जब तब मैं जियूँगा, उसकी उस नजर को नहीं भूल सकूँगा। वह नजर! मुझे लगा मेरा शरीर भीतर तक ठंडा हो गया है। अब भी उसकी याद आती है तो सर्दी सी मेरे भीतर घुसती चली जाती है।

उसकी आँखों में एक अप्राकृतिक ज्वलन्त चमक थी, जैसे वह डरावनी थी। मैंने गौर से देखा। उसका चेहरा मुर्दे की तरह का था। उसके रक्तहीन होंठ खिंचे हुए थे और ऐसा लगता था जैसे वह मृत्यु की यन्त्रणा सह रहा था। उनके बीच में से उसके दाँत जैसे दर्द से चमक रहे थे।

जो मैं कहना चाहता था, वह शब्द मेरे होठों पर जैसे चिपक कर रह गये और एक भय—एक अजीब डर—एक खतरनाक दहशत मेरे ऊपर छा गई। अब तक रथ के भीतर का अंधकार देख-देख कर मेरी आँखों को अभ्यास हो गया था। और मुझे कुछ स्पष्ट सा दिखाई देने लगा था। मैं अपने दूसरे पडोसी की ओर मुड़ा। वह भी उसी चौकन्नी भयभीत मुद्रा से मेरे मुख की ओर देख रहा था। उसकी आँखों में भी वह पथरीली चमक थी। मैंने अपने सिर पर हाथ फेरा। मैंने तीसरे मुसाफिर की ओर देखा।

और वह भी उसी तरह पथरीली नजर से या कहूँ पथराई नजर से मैं क्या कहूँ, वह भी मेरी ओर वैसे ही देख रहा था!

जूपीटर !! मैंने देखा!

उनमें से कोई भी जिंदा नहीं था!

वे सब मुर्दे थे !!

उनके चेहरे पर सड़न की बू थी !!

केवल आँखें चमक रही थीं। और कुछ नहीं !!

उनके बाल, कपड़े सब पर काई जमी थी।

उनके हाथ तो सड़ भी चुके थे !!

केवल उनकी आँखें !! भयानक आँखें !!! घूमती थीं !!!!

मैं बुरी तरह भय से चिल्लाया। और वेग से चलते रथ से कूद पड़ा।

और फिर मुझे कुछ भी मालूम नहीं हुआ। केवल एक लाट सी दिखाई दी और एक भयानक भड़ाका हुआ, जैसे गाड़ी नीचे के खड्ड में गिर गई थी।

मैं बेहोश होकर गिर गया।

सुबह मुझे कुछ गाँववालों ने पाया और उठा ले गये। दो दिन मेरी वहीं सेवा होती रही। तब मैं दाराबाग में लौटा और मैंने अपने दोस्त को सुनाया। उसने कोई विश्वास नहीं किया।

'अनेकों वर्ष उस बात को बीत गये हैं,' आर्किमिडीस ने कहा, 'मैं उस रात को भूल नहीं पाया हूँ।'

चक्रधर ने एक लम्बी साँस ली। सागरक ने देखा कि सुहासिनी स्तब्ध बैठी थी। सुषेण गम्भीर चिंता में मग्न था।

सागरक ने कहा, 'आज की कथा से यह प्रगट नहीं हुआ कि यह चीनी और फिरदौस भूत थे।'

'क्यों?' आर्किमिडीस ने कहा, 'जिस देश में ऐसी गाड़ी नहीं चलती हों वहाँ वैसी गाड़ी कैसे चली!'

कोई इसका उत्तर नहीं दे सका। कुछ देर तक सन्नाटा सा-छाया रहा। बाहर की हवा पानी से लड़ रही थी।

चक्रधर ने कहा, 'इस संसार में बड़ी-बड़ी विचित्रताएँ हैं।'

'कौन जाने,' सुहासिनी ने कहा।

'अरे मैं तो देख चुका हूँ,' आर्किमिडीस ने देखा और कहा, 'मित्र सुषेण।'

'हाँ,' सुषेण जागा।

'तुम क्या सोच रहे हो!'

'मैं,' सुषेण ने कहा, 'अपनी कहानी सोच रहा था कि सुनाऊँ या नहीं।'

'अवश्य सुनाओ,' चक्रधर ने कहा, 'आज रात तो तुम लोग लौट भी नहीं सकते। बातें ही की जायें तो क्या हर्ज है। बाद में हम सो जायँगे।'

'सो ठीक है,' आर्किमिडीस ने कहा, 'मित्र सुषेण! तुम अपनी आपबीती सुनाओ। क्यों सागरक सुनोगे?'

'अवश्य', सागरक ने कहा और वह कुछ झुक कर बैठ गया।

५

सुषेण ने कहा, 'वर्षों पहले जब मैं ब्रह्मदेश में यात्रा कर रहा था, मेरी एक पल्लव देशीय तरुण से भेंट हो गई और वह भी कहाँ कि जंगलों में। हम दोनों एक सप्ताह तक साथ रहे और मैंने उसे एक अच्छा साथी पाया। उसका नाम था उड्डीलोम और वह बड़ा साहसिक भी था। जहाँ तक उसकी अपनी आर्थिक स्थिति थी वह उसे बड़ी तेजी से सुधारता जा रहा था। उड्डिलोम को ब्रह्मदेश के वासी भी बहुत चाहते थे और उसको आशा थी कि निकट भविष्य में ही वह हाथियों के झुंड के रहने का स्थान ढूँढ़ लेगा और हाथी दाँत का इतना बड़ा भण्डार प्राप्त होगा कि शायद वह पूर्व का सब से बड़ा श्रेष्ठि बन सके, तभी उसे एक दिन समाचार मिला कि उसका एक चाचा बहुत बड़ी जायदाद उसी के नाम करके मर गया था। अतः उड्डिलोम ब्रह्मदेश छोड़ कर सीधा पल्लव भूमि को लौट गया।

जब मैं भारत लौट कर आया तो चोल देश गया और वहीं से पल्लव देश भी गया क्योंकि उसे शायद आवश्यकता थी कि वह चोल आये क्योंकि अरब के तुरंगों का मेला जुड़ता था वहाँ, और वह खरीद कर कुछ तुरंग ले जाना चाहता था। अतः जब हम मिले तो वह बहुत

प्रसन्न हुआ और मुझे अपने साथ ही वह अपने देश कुछ दिन को ले गया।

बातों में उसने कहा, 'सुषेण! ब्रह्मदेश से लौटने पर मुझे अवकाश ही नहीं मिलता।'

'क्यों?' मैंने पूछा।

'काम बहुत है।'

'कैसे?'

'तुम्हें मालूम है मैंने अब विवाह कर लिया है।'

'यह भी अच्छा रहा,' मैंने कहा, 'काम बहुत होने के कारण तो ज्ञात हुआ।'

फिर हँस कर हम दोनों ने और बातें छेड़ दीं।

'तुम्हारे यहाँ ऐला की खेती तो ठीक होती है?'

'हाँ। उससे धन भी मिलता है।'

'भाभी तो अच्छी हैं न?'

'तुम तो जैसे देखने के पहले आँखें बंद कर लोगे?'

'नहीं, सो तो देख कर करूँगा।'

हम फिर हँसे।

उड्डिलोम ने कहा, 'एक बात पूछूँ सुषेण।'

'पूछो न?'

'तुम प्रेतों में विश्वास करते हो?'

'क्यों भाभी का तो तुमसे संबंध है न?'

'तुम तो हमेशा मजाक किया करते हो। मगर मैं गंभीर बात कह रहा हूँ।'

मैंने देखा वह गंभीर था।

'क्यों क्या बात है?' मैंने पूछा।

'मैं स्वयं नहीं जानता।'

'फिर कैसे पूछते हो?'

'लोग कहते है।'

'क्या ?'

'कि जिस भवन में मैं रहता हूँ वहाँ प्रेत है।'

'कैसे ?'

'पहले एक मेरा कारिन्दा रहता था। वह भाग गया।'

'पैसे-वैसे तो नहीं ले गया ?'

'नहीं, नहीं, अच्छा आदमी था।'

'अच्छा !'

'हाँ, बोला, मैं यहाँ नहीं रहूँगा।'

'उसने कोई कारण भी तो बताया होगा ?'

'वह बोला मैं बता नहीं सकता।'

'यह तो कोई अजीब बात है।'

'यही तो मैं भी सोचता हूँ।'

'तुमने अनजाने ही कोई उसे कष्ट तो नहीं दिया था ?'

'अनजाने ही तो तुम खुद कहते हो, फिर मैं कैसे बताऊँ ?'

मैंने भी सिर हिलाया क्योंकि इसका उत्तर कठिन था।

'सारे पड़ोस में वही खबर है।'

'तुमने कुछ देखा ?'

'अभी तो नहीं।'

'तो फिर बकने दो।'

'लेकिन मेरी स्त्री घबराती है।'

'क्यों ?'

'वह स्वयं नहीं बता सकती।'

अब मेरी दिलचस्पी बढ़ी।

'कुछ नहीं कहती।'

'नहीं।'

'क्यों क्या उन्हें कुछ दिखता है ?'

'हाँ, हाँ।'

'उसका एक भाई था।'

'वह मैंने नहीं देखा।'

'वही तो इस कथा को सुनाता था। एक बार वह बन में था। ऊँचे वृक्ष पर साँझ होने पर चढ़ गया, क्योंकि वह बन में खतरा मोल नहीं लेना चाहता था। सामने मैदान था। वहाँ हाथियों का एक झुन्ड आ कर ठहर गया। और उसने देखा कि उनके हाँथी दाँत धीरे-धीरे उठते चाँद की चमक में दिखाई देने लगे, फिर चन्दा पूरा ऊपर चढ़ आया। हाथियों का राजा बीच में खड़ा था और वह सफेद रंग का था। उसके चारों ओर बाकी बुड्ढे, बच्चे हाथी थे, जवान थे और हथिनियाँ घूम रही थीं। उसी समय सामने की ओर से एक हाथी आता दिखाई दिया। वह भी सफेद था। ज्यों हीं उसे देखा त्यों ही राजा तैयार हो गया। और दोनों में कुछ ही देर में लड़ाई शुरू हो गई। बाकी हाथी इधर-उधर खड़े आवेश में देखते रहे। लेकिन सहसा राजा चौंक कर पीछे हट गया, क्योंकि उसे शायद आश्चर्य और भय ने ग्रस लिया। उसने पेड़ पर से देखा कि आने वाले हाथी का अगला हिस्सा तो दिखाई दे रहा है, लेकिन धड़ का पिछला हिस्सा नहीं है। वह एक प्रेत हाथी था। उसको देखकर एक बहुत ही बुड्ढा हाथी आगे आया और उसने उसे सलामी दी और सब का सब झुन्ड काँपता हुआ उसके पाँवों पर गिर गया। प्रेत हाथी का अब सिर ही दिखाई दे रहा था। सिर यानी सूँड भी और उसके लम्बे-लम्बे दाँत भी। और कुछ नहीं।'

मैं सुन कर हँस पड़ा।

उब्बिलोम ने कहा, 'तुम हँसते हो?'

'हसूँ नहीं?'

'क्यों हँसोगे?'

'अरे यह कोई बात है।'

'क्यों नहीं है? पीछे का धड़ कहाँ गया?'

'पेड़ों की हरियाली में छिप गया होगा।'

'जी उसे पेड़ की ऊँचाई से नहीं दिखा!' उड्डिलोम ने कहा, 'जब कि वहाँ पेड़ नहीं थे, मैदान था।'

उसके स्वर में व्यंग्य था।

'मैं नहीं मानता।'

उड्डिलोम ने कहा, 'तुम्हारी मर्जी।'

'तुम मानते हो?'

'कह नहीं सकता।'

'क्यों?'

'वे सब लोग मानते थे।'

फिर इस विषय पर बात नहीं हुई।

जब हम उसके भवन में पहुँचे उड्डिलोम की पत्नी से मुलाकात हुई उसका नाम तुरा था।

मैं एक बड़े प्रकोष्ठ में ठहरा दिया गया। उसकी छत में भारी सोटें लगी हुई थी। हर वस्तु पुरानी थी। देखकर ही लगता था कि वह मिस्री ढंग से सजा हुआ था क्योंकि उड्डिलोम के चाचा के पूर्वजों का मिस्र से बहुत व्यापार चलता था। कुछ पारस्परिक विवाह भी हुए थे। मिस्र के गृह देवता की विशाल आकृति एक ओर की दीवार पर लकड़ी पर खुदी हुई थी, जो उस प्रकोष्ठ को एक प्राचीनता का आभास दे रही थी।

संध्या के समय सब लोग मेरे स्वागत में एकत्र हुए। दास भी, दासियाँ भी।

'इन्हें जानते हो?' उड्डिलोम ने कहा।

मैंने देखा वह उत्कल निवासी भारुक था, जिससे मेरी मुलाकात ब्रह्मदेश में हुई थी। वह ताम्रलिप्ति के जहाज में बैठ कर चला गया था।

'तुम कब आये?'

'परसों ही। ठहर गया था कि उड्डिलोम के आने पर ही लौटूँगा। तुरा देवी ने रोक लिया।'

'इधर क्या करते हो ?' मैंने बाद में पूछा ।

उसने कहा, 'मैं आया हूँ एला और लवंग को खरीदने । उड्डिलोम ने मुझे सहायता देने का वचन दिया । तभी मैं आ गया ।'

'चलो किसी तरह तुम आये तो सही', मैंने कहा ।

फिर मदिरा आई और हम सब लोग बैठ कर पीने लगे ।

तुरा अन्दर चली गई ।

जब मैं सोने गया तो देखा कि दीवार पर लगी मिस्री सम्राट का चित्र हवा से उड़ कर नीचे गिरा । खट की आवाज़ आई । वह काठ-पर बना हुआ था । मैंने देखा । इतिहास की जानकारी रखने के कारण मैंने पहचाना । यही वह व्यक्ति था जिसने गिज़ा की पहली पिर-ए-मिस बनवाई थी ।

अब मैं दीवार पर बने चित्रों को देखने लगा । एक जगह कुषाण सम्राट कनिष्क खड़े चीन पर हुए आक्रमण की ओर बढती सेना को देख रहे थे । एक जगह सगर का पुत्र असमंजस बानर जाति के लोगों के बीच खड़ा रो रहा था । और भी इसी प्रकार के अनेक-अनेक चित्र थे ।

दीपधारों में अनेक शिखायें जल रही थीं ।

इसी समय एक पाण्ड्म दासी आई और उसने कहा, 'स्वामी ?'

'क्या है,' मैंने मुड़ कर पूछा ।

'आप यहीं सोयेंगे न ?'

'हाँ ।'

वह चली गई ।

मैं समझा शायद वह पानी रखने के लिये पूछने आई है । क्योंकि जब वह लौटी तो चाँदी के पात्र में पानी रख गई ।

मैं निश्चिंत हो गया ।

तभी उड्डिलोम आया । मैंने देखा उसके मुख पर कुछ आंतक की छाया थी ।

उसने कहा 'सुषेण !'

'क्या है ?'

'यहीं सोओगे ?'

'हाँ ।'

'कुछ दासों को भेज दूँ ?'

'क्यों ?'

'इतना बड़ा भवन है। यहाँ किसी को आवाज दोगे तो क्या सुनाई देगा ।'

'मुझे रात को किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं होगी ।'

'अच्छी बात है,' उसने उठते हुए कहा, 'मैं यहीं सीढ़ी से उतरते ही बाँये प्रकोष्ठ में हूँ ।'

'तुरा देवी कहाँ सोयेंगी ?'

'उसी प्रकोष्ठ में।'

कह कर वह नीचे उतर गया।

मैंने दीप बुझा दिया और सो गया।

एक पहर बाद मैं जाग गया। और ऐसा जागा जैसे कभी सोया ही नहीं था। बाहर हवा बिल्कुल ही निस्तब्ध थी। कोई भी दीप नहीं जल रहा था। चारों ओर घोर नीरवता छा रही थी। ऐसी कि मुझे अपनी ही साँस सुनाई दी। कोई भी शब्द नहीं था, जैसे इस सृष्टि के सब काम बिल्कुल ही बंद हो गये थे।

कैसी विचित्र थी वह अनुभूति !

बिचित्र !

नितांत नीरव ! निस्तब्ध ! शांत ! प्रशांत !!

उसी समय बाहर कोई हँसा।

कौन था !

फिर दूसरी ओर से रुदन सुनाई दिया।

मैं चौंका।

रात के निविड़ में कोन रो रहा था !!

तभी लगा कोई बच्चा रो रहा था !!

बच्चा !! इस घर में तो बच्चा ही नहीं था !!!!

तब !!!!!

मुझे कुछ बेचैनी हुई।

और तब हठात् मुझे ध्यान आया। यह तो उल्लू थे। उल्लू सब ही आवाजें करते हैं। और कौन ताज्जुब है। भवन की प्राचीनता और विशालता को देखते हुए इसमें उल्लू यदि उद्यान के किसी भाग में हों भी तो क्या आश्चर्य।

मैं दिन की बातों के बारे में सोचता रहा। और इस प्रयत्न में लगा कि फिर सो जाऊँ। किंतु नींद नहीं आ रही थी।

मैं जाग रहा था। ऐसा जैसे मैं सोया ही नहीं था। मुझे लगा शायद मैं सोया ही नहीं था। तब मैं उठा और चकमक रगड़ कर मैंने दीप को जला दिया। एक, दो, तीन, चार, पांच, छः शिखाएँ मैंने जला दीं और प्रकोष्ठ में उजाला भर गया। मैं शैय्या पर बैठा था। क्योंकि दीपक मेरे सिरहाने ही था।

मैंने सोचा ! कितना सुदंर दीप था। अवश्य यह चोल देश का दीपाधार था। क्योंकि इसकी बनावट के दीप उधर ही अधिक मिलते थे। कितना सुंदर था वह !

उड्डिलोम के पूर्वज अवश्य ही बड़ी अच्छी रुचि के लोग रहे होंगे क्योंकि उन्होंने इसको अपने पास रखा।

मैंने मन ही मन यह भी निश्चय किया कि यदि हो सका तो इसकी नकल का एक बनवा ले जाऊँगा और विदिशा में जब पहुँचूँगा तब अपने सिरहाने इसे रखूँगा। मेरी पत्नी इसे देख कर कितनी प्रसन्न हो उठेगी।

पत्नी का ध्यान आते ही मैं और भी गहरी चिंता में पड़ गया। मुझे प्रेम के गीत याद आने लगे।

वह बैठी होगी !!

दमयंती का सा हंस उसके पास जाता तो क्या करती वह ? पूछती ! मेरे प्रिय कहाँ है ? और हंस कहता, सुदूर उड्डिलोम के भवन में तेरा प्रिय पल्लवदेश में एक प्रकोष्ठ में सो रहा है, जहाँ प्राचीन वस्तुएँ रखी हैं। उसे तेरे वियोग में नींद नहीं आ रही है। उसने आधी रात को दीप जला दिये हैं और हे रूप की प्रतिमा ! वह तेरी छवि की छाया को ही दीप शिखाओं में ढूँढ रहा है।

मुझे बड़ा अच्छा लगा।

कितना प्रिय था वह भाव ! मुझे लगा मैं उड़ कर विदिशा में पहुँच गया हूँ, उसी मालती कुञ्ज में बैठा हूँ, जिसमें कभी पहले बैठा करता था और सामने मेरी पत्नी बैठा करती थी।

इसी तरह सोचते-सोचते मैंने जो सिर घुमाया तो देख कर साँस रुक गई।

कैसी चीज़ देखी मैंने !!

अद्भुत !!

वह क्या था !!

मैं बिस्तर के सिरहाने की ओर और भी पीछे खिसक गया।

मेरा दिल जोर से धड़कने लगा। इतनी ज़ोर से कि मैंने उसकी धकधक को साफ-साफ सुना।

मेरे शरीर में पसीना था और मैं भीग गया था। जाड़े की उस रात में मैं भीग गया था।

मैं बहुत अधिक धार्मिक कभी नहीं था, किन्तु रसायन में मैं विश्वास करता था। रसायन के सम्बन्ध में होने वाली देवी-देवताओं की सिद्धि को भी मानता था।

मैंने पुकारने की चेष्टा की किन्तु मुझे लगा मेरा गला रुँध गया था। भगवान में अधिक भावना न रखकर भी मैं यह सोच सकता

था कि क्या भगवान किसी जीवित व्यक्ति को ऐसा भी दृश्य दिखा सकता है?

मेरी कारण-शक्ति लुप्त सी हो गई थी और मैं देख रहा था।

दीपागार के दीपक जल कर धुँआ उगल रहे थे, दीवारों पर बने चित्र जैसे सजीव हो गये थे।

कनिष्क की सेना के चलने का हल्ला-गुल्ला सुनाई दे रहा था। और सगर के पुत्र असमंजस के रोने की आवाज साफ सुनाई दे रही थी। गिजा की पिर-ए-मिस बनवाने वाले मिस्री सम्राट का शब्द गूँजने लगा था। ऐसा लगता था, जैसे सारा अतीत जाग गया था और काठ के वे चित्र, अब काठ नहीं थे, मनुष्यों के रूप हो गये थे!

मैंने देखा मेरे बिस्तर के पैताने एक व्यक्ति बैठा था। वह मुझे घूर रहा था। एकटक।

उसके मुँह पर एक पुराना सड़ा-सा कपड़ा ऐसे पड़ा था जैसे किसी साफे की लटकन हो, जिसने उसके आधे मुँह को ढँक लिया था। आधे मुँह का भाग दिखाई दे रहा था, जिसमें एक आँख थी, और गाल की हड्डी दिखाई दे रही थी। मैंने देखा वह तो आदमी नहीं था।

एक हड्डी का ढाँचा मेरे सामने खाल से अपने को मँढ़ कर, मेरे सामने हाँ, मेरे सामने ऐसे आ बैठा था, कि उसका दाहिना हड्डी का हाथ मेरे बिस्तर के एक छोर को अपने से पकड़े हुए मेरी ओर देख रहा था। वह दृष्टि अपलक थी, और मैंने देखा कि उसके न भौं थी, न पलक ही। केवल आँख के गड्ढे में एक आँख थी और वह सुर्ख थी, बिल्कुल सुर्ख, लेकिन पुतली में कालापन नहीं था, पीलापन था। आप सोच सकते हैं कि लाल के बीच में वह चमकता हुआ पीलापन कितना डरावना-सा दिखाई दिया होगा। उसके मुँह पर नाक भी नहीं थी, केवल एक गड्ढा था, जहाँ खाल के मढ़े रहने से एक झुर्री-सी पड़ गई थी, क्योंकि उसे कुछ ऐसी रुकावट या उठान नहीं मिल सकी थी, जहाँ वह अपने फैलाव को दिखा सके। उसके मसूड़े हड्डी के थे

और उसके दाँत उस हड्डी में ही जुड़े हुए थे। मैं नहीं देख सका कि उसके जीभ थी या नहीं। तभी वह आकृति हिली। मैंने तब गौर किया। वह एक मुर्दे के कपड़े पहने थी और रासायनिक होने के नाते मैंने पहचाना कि वह लाश गरुड़ जाति के किसी व्यक्ति की रही होगी, क्योंकि गरुड़ों का शव इसी तरह के कपड़े पहना कर जलाया जाता था।

उसके सिर की जगह कपाल था, लेकिन माथे पर एक बालों का लौंदा था। मैंने देखा उसके हाथ पर कहीं-कहीं खाल थी, कहीं बिल्कुल हड्डी दिखाई दे रही थी, जैसे कि वहाँ की खाल जो थी वह वक्त के दौरान में घुस गई थी, गल गई थी और वहाँ से मिट गई थी।

वह शव मुझे देख रहा था और मैं उसे देख रहा था।

न जाने देखते हुए कितना समय बीत गया।

मेरा गला सूख रहा था और चटकती प्यास-सी लग रही थी।

अब भी मेरे हाथ में चकमक पत्थर था, जिससे मैंने दीप जलाये थे।

मैंने अपनी आँखें बन्द कर लीं, लेकिन आतंक के कारण मैं उन्हें बन्द नहीं रख सका।

मुझे तुरन्त अपनी आँखें खोल देनी पड़ीं।

और वह शव वैसा ही निश्चल, निस्तब्ध मेरे बिस्तर के पैताने को एक हाथ से पकड़े, अपनी जलती हुई, बिना पलक की आँखों से देखता, अपने हड्डी के मसूड़ों में लगे हड्डी के दाँत निकाले, बैठा था।

मेरा पसीना आया, सूख गया और फिर नये वेग से मुझे भिगो गया।

दीपकों का आलोक न जाने क्यों बिना हवा के ही हिल उठा।

मैंने इधर-उधर देखने के लिए आँखें घुमाने का प्रयत्न किया, किन्तु नहीं, वह सामने बैठा था और मैं उसे देखे बिना भी नहीं रह सकता था।

मेरा चिन्तन खोने लगा। न जाने कितनी देर तक मैं उसे देखता रहा। वह आकृति धीरे-धीरे मेरे स्नायुओं को प्रभावित करने लगी,

मैंने जैसे उसकी घ्राण पाई और तब मुझे लगा कि बदबू से मेरा सिर फट जायगा।

और वह देख रहा था!

क्या देख रहा है वह! क्या देख रहा है!

निश्चल !! है वह निस्तब्ध!

क्या वह जीवित है? क्या वह साँस ले रहा है।

नहीं !! नहीं। वह मुर्दा है।

पर उसकी आँखें !! उसकी चमकती आँखें!

जैसे दहकता हुआ अंगारा!

वह हँस रहा है !!!

नहीं !!!

उसके हड्डी के मसूड़े !!!

हठात् मुझे एक ध्यान आया।

पहले दासी आई थी।

फिर वह स्वयं आया था!

कहीं यह एक मजाक तो नहीं?

कहीं यह लोग मेरे साहस की परीक्षा तो नहीं कर रहे हैं, कि मैं वैसे तो भूतों में विश्वास नहीं करता, लेकिन शायद वे यह देखना चाहते हैं कि ऐसे मौके पर मैं स्वयं क्या करूँगा!

मैं कायर नहीं हूँ, मैंने सोचा।

ऐसे समय में ही मनुष्य के साहस की परख होती है। साहस! साहस! सुषेण हिम्मत कर। सुषेण आगे बढ़! मेरे भीतर से किसी ने कहा।

और उसके बाद मैंने एक विचित्र कार्य किया।

मैं एकदम टूटा और उस शव के सिर पर मैंने बड़ी जोर से आघात किया।

वह शव टूट गया, लेकिन मेरे हाथ में हड्डी तक चोट आई। अब भय के साथ मुझे भयानक क्रोध आ गया था।

तो यह मेरे साथ एक गंदा मजाक किया गया था! इतना नीच!! जरूर उड्डिलोम और भारुक की बदमाशी थी। इन्होंने पहले से कुछ आपस में तय भी कर लिया होगा।

कौन जाने आपस में शर्त न बदली हो।

मैं उड्डिलोम को गाली देने लगा। चिल्लाने लगा।

'मैं देख लूँगा,' मैं भयानक स्वर से चिल्लाया और बिस्तर से नीचे कूदा और मैंने शव के कपड़े फाड़ दिये।

इस कदर बदमाशी!! मुझे ही छकाने की कोशिश!!

मैंने शव का खोपड़ा धरती पर पटक कर तोड़ दिया और उसे बिस्तर के नीचे फेंक दिया। मैंने उसकी हड्डियों को तोड़ दिया। उसकी जाँघ की हड्डी को मैंने घुटना मार कर तोड़ दिया और फेंक दिया। घुटने की हड्डी को पत्थर पर मार कर टुकड़े-टुकड़े कर दिया। और बुरी तरह गाली देते, चिल्लाते हुए मैंने उसकी पसलियों को चूर-चूर कर डाला। जैसे-जैसे मैं उसका विनाश करता गया, मेरा क्रोध बढ़ता जा रहा था।

अंत में मैंने उसे तोड़-फोड़ दिया। फिर मैंने उसकी खोपड़ी की हड्डी का एक टुकड़ा उठा लिया, और मैंने दरवाजा खोल दिया और मैं धड़धड़ाता हुआ, चिल्लाता, गाली देता, सीढ़ी से नीचे उतर गया। और मैंने उड्डिलोम के दरवाजे को लात मार कर खोल दिया।

वहाँ दीप जल रहा था। मैंने देखा वह डरा हुआ-सा, आंतकित-सा बैठा था, सिकुड़ा हुआ।

वह मुझे देखकर मुँह फाड़े देखता ही रह गया। उसके भीतर जैसे बोलने की शक्ति नहीं रही थी।

उस समय मैं चिल्लाया, 'उड्डिलोम!'

मेरी आवाज गूँज गई। मेरा विकृत क्रुद्ध स्वर सुनकर भी जैसे वह बोल नहीं सका।

मैं समझा इसकी चाल पकड़ी गई है तभी इसकी यह हालत हो रही है।

'नीच !' मैंने चिल्ला कर कहा, 'तुम्हें शर्म नहीं आती, तुम अपने आप को आदमी कहते हो ! तुम अपने आपको मित्र कहते हो ? तुम समझते हो तुम इतने चतुर हो कि तुम्हारी चाल कोई पकड़ नहीं सकेगा ? तुम समझे थे···तुम समझते थे···मैं डर कर बेहोश हो जाऊँगा···और फिर तुम तुरा देवी के सामने भारूक के साथ मिलकर मेरा मजाक उड़ा सकोगे······'

लेकिन उसने कोई उत्तर नहीं दिया। मेरे सिर से पसीना अब भी आ रहा था, और मेरे हाथ से खून खूब निकल रहा था।

उड्डिलोम अपने बिस्तर पर वैसे ही बैठ गया था, जैसे उस शव को देखकर मैं बैठ गया था। मुझे कुछ आश्चर्य भी हुआ।

तुरादेवी की नींद खुल गई। वह उठी भयभीत। उसका मुँह सफेद-सा पड़ गया था !

'क्या हुआ। मुझे बताओ !' वह जोर से चिल्लाई और आवेश में उड्डिलोम के बिस्तर पर जाकर बैठ गई।

मैंने कहा, 'क्या हुआ ! पूछिये क्या होना था ! मैंने उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये हैं।'

उड्डिलोम ने घिघियाकर कहा, 'महादेव ! महादेव।'

और काँप कर सूखे होठों पर जीभ फेर उठा।

मैं कहता गया, 'मन में आता है कि मार-मार कर इसकी चमड़ी उधेड़ दूँ। कमीना ! मैं, तुम समझते हो तुम्हें छोड़ दूँगा। मैं तुम्हें दुनिया में बदनाम करूँगा। इतना कि लोग तुम्हारी सूरत देखकर थूकना भी पसंद नहीं करें।' और मैंने अपने हाथ की हड्डी का वह सिर जो मैं शव की खोपड़ी तोड़ कर उठा लाया था, उसके सामने फेंक दिया ! 'यह लो,' मैं चिल्लाया, 'यह रही तुम्हारी सौगात ! लो अपने कमाल पर हँसो।'

उड्डिलोम ने हड्डी को देखा तो वह ऐसी बुरी तरह चिल्लाया, कि मैं घबरा गया। वह इतना चिल्लाया, इतना चिल्लाया कि तुरा देवी भयभीत होकर उससे चिपट गईं और वह रोने लगी, कभी कहतीं, 'तुम चुप रहो स्वामी! चुप रहो!'

लेकिन उड्डिलोम ने तुरा को हटा दिया और वह कठिनाई से खड़ा हुआ और तुरादेवी का रोकना व्यर्थ हो गया। वह बिस्तर से नीचे उतर गया और हम तीनों उस समय भयार्त्त से खड़े रहे। जब वह हड्डी को उठा कर खड़ा हो गया और ऐसा लगा जैसे कुछ सुन रहा था।

उसने बड़बड़ाया, 'समय शायद आ गया है, आ गया है।'

और धड़ाम से वह फर्श पर गिर गया। उसका सिर पलंग की नोंक से लगा और उसमें से खून निकल आया।

मैंने आतंकित दृष्टि से देखा कि हड्डी उसके हाथ से ऐसे उड़ गई जैसे किसी ने उसकी मुट्ठी खोलकर छीन ली और उड़ कर दरवाजे की तरफ़ चली गई।

तुरा चिल्लाई। मैंने पुकारा, 'उड्डिलोम!!' परन्तु मुझे विश्वास नहीं हुआ। क्या यह स्वर मेरा ही था! कितना विकृत था, कितना भर्राया हुआ था। एक बार विश्वास करने को मैं फिर चिल्लाया, 'उड्डिलोम!'

किंतु वह नहीं बोला।

मैंने उसे कठिनाई से उठाया। उसके मुख पर रक्त था। उसने बहुत ही भर्राये स्वर से कहा, 'सुनो! सुनो!!'

हमने सुना।

उस घोर निस्तब्धता में हमने सुना। ऐसा लगा जैसे कोई सीढ़ी के पास चल रहा था, जैसे सीढ़ी से धीरे-धीरे उतर रहा था।

उड्डिलोम बिस्तर पर बैठ गया। तुरा ने अपना मुँह उसके सीने में छिपा लिया। और उस क्षण मैंने अनुभव किया कि मैं उनके पास था।

मैंने मुड़ कर देखा। वही आवाज आ रही थी।

अब लगा कि सीढ़ी पर से वह आने वाला उतर चुका है और इसी कमरे की तरफ घूम रहा है।

हठात् दीप बुझ गया और उड्डिलोम भयार्त्त होकर एक दम घिघिया गया। न जाने उन दोनों की यह अवस्था देख कर मुझमें फिर कैसे साहस-सा लौट आया। मैंने अंधकार में हाथ बढ़ा कर उड्डिलोम का कंधा पकड़ लिया। खुले द्वार में से बाहर के दीप का मद्धिम आलोक द्वार के पास पड़ रहा था। हड्डी का टुकड़ा द्वार के पास पड़ा था।

वह उठा और बाहर चला गया अपने आप, बिना किसी मदद के! कैसे!!

और फिर सीढ़ी पर पाँवों के चढ़ने की आवाज आने लगी।

मैं तुरन्त द्वार पर गया। मुझे लगा जैसे ऊपर कोई चढ़ रहा था। कुछ ही देर में वहाँ कोई नहीं रहा।

मुझे लगा मेरे भीतर सारा खून बिल्कुल ठंडा हो गया था।

तुरा देवी मूर्छित हो गई थीं। मैंने बड़ी मुश्किल से हवा कर-करके उन्हें होश में लाने का सफलता प्राप्त क', लेकिन वह इतनी भयभीत थीं कि कुछ भी नहीं बोल सकीं।

उड्डिलोम ने धीरे से कहा, 'तुम उससे बोले तो नहीं थे न?'

'नहीं,' मैंने कहा।

बाकी रात हम तीनों ने ऐसे बैठ कर बिस्तर पर एक साथ बिताई जैसे किसी भयानक बन में बरसते पानी में एक ही पेड़ के नीचे थे, एक दूसरे से चिपटे हुए। और रह-रहकर तीनों भय से काँप उठते थे, उस समय हम लोगों को कोई दूसरा भाव नहीं था।

उड्डिलोम कहता था, 'वह गया?'

तुरा कहती थी, 'हे महादेव! हे महादेव!'

और मैं कहता था, 'उड्डिलोम! तुरा! उड्डिलोम! तुरा! वहाँ कोई नहीं है।'

'पर तुम काँपते क्यों हो?'

'क्या मैं काँप रहा हूँ ?'

'नहीं, मैं काँप रही हूँ।'

'नहीं,' उड्डिलोम कहता, 'मैं काँप रहा हूँ। मैं...मैं......।'

मेरे जीवन के विश्वासों का आधार हिल गया था !

आखिर सुबह हुई। पहली चिड़िया ने वातायन में गाना गाया। लेकिन फिर भी हममें इतना साहस नहीं था कि हम अलग-अलग बैठ जाते। सुबह दास और दासियाँ आये तो उन्होंने हम तीनों को उसी अवस्था में देखा।

हम अलग हुए, तो हम तीनों के शरीर से ऐसा पसीना छूटा कि दास हमारे अंगों को पोंछने लगे।

'क्या हुआ स्वामी,' एक ने पूछा।

मैं ऊपर जाना चाहता था।

'मैं ऊपर जाऊँगा,' मैंने कहा।

उड्डिलोम ने कहा, 'चार दासों को ले जाओ।'

मैं उनको लेकर ऊपर गया। वहाँ कुछ भी नहीं बिगड़ा था। केवल कहीं-कहीं मेरे ही खून के छींटे पड़े थे।

जब मैं नीचे आया तुरा ने कहा, 'आप का हाथ !'

तब मैंने देखा ! रक्त सूख गया था।

उसने वैद्य को बुलवाया जिसने मेरा हाथ धोकर पट्टी बाँध दी।

सुषेण इतना कह कर एक लंबी साँस लेकर बोला, 'यह तो हुआ परंतु फिर मुझे चैन नहीं आया। मैंने उड्डिलोम से कहा, 'मुझे तो छुट्टी दो।'

उसने दयनीय दृष्टि से मेरी ओर देखा जैसे मैं उसे विपत्ति में छोड़ कर जा रहा था। लेकिन मैं करता भी क्या !

मैंने कहा, 'तुम यह मकान छोड़ दो।'

'छोड़ दूँ ?'

'वर्ना क्या मरोगे यहाँ ?'

तुरा ने भी यही कहा।

भारूक को मालूम पड़ा तो काँप उठा। उसने बताया कि वह अँधेरे ही उठ गया था, तब उसने देखा कि बाहर उद्यान में एक सफेद साफे वाले को चलते देखा था। उसके कपड़े बड़े अजीब थे।

'तुमने देखा था!' मैंने कहा, 'तो क्या वह सब फिर साबुत हो गया!'

उड्डिलोम ने कहा, 'मैंने भी उसे तोड़ दिया था, लेकिन वह ऐसा ही साबुत हो गया। तभी, तभी मैंने कहा था कि वह आयेगा, अपनी हड्डियाँ बटोर ले जायेगा। और वह आया भी। परंतु मैं तुम्हारे कमरे में नहीं, उसके बगल में सोया था। मैंने तुम्हारे कमरे को उधर से बंद भी कर दिया था। रात तो वह नीचे भी आ गया! सुषेण! मैं क्या करूँ?'

'तुरंत घर छोड़ दो,' मैंने कहा।

अपने कपड़े और बर्त्तन लेकर उसी दिन उस बड़े घर को जैसा पाया गया था, वैसा ही उड्डिलोम ने छोड़ दिया और सब लोग ताला डालकर बाहर चले आये और उड्डिलोम ने बाहर तम्बू गड़वा कर तब तक के लिये निवास बनाया, जब तक कि नया भवन न ले लेता।

तब मैं भी तीन दिन, तीन रात वहाँ रहा। जब सब ठीक-ठाक सा लगने लगा, कोई भय की बात नहीं रही, तब मैंने उन लोगों से बिदा माँगी।

कई महीनों की यात्रा थी। बिदा होते-होते छः महीने बीत गये। आखिर उड्डिलोम ने नया भवन ले लिया और मैं चल ही दिया। उन लोगों ने रोकने की बहुत कोशिश की। लेकिन तब भद्रवाह नामक वणिक का सार्थवाह उत्तर जा रहा था, मैं भी संग हो लिया। जब हम कांची पहुँचे एक-दो दिन के लिए सार्थवाह रुक गया। व्यापारी माल खरीदने-बेचने में लगे और मैं नगर देखने के लिये तैयार होने लगा। तभी एक व्यक्ति मेरे पास आया और उसने कहा कि मैं उसके साथ सात

कोस दूर चल कर उसके मरीज को देख लूँ। उसने मुझे धन भी दिया। मैंने भी कोई हानि नहीं समझी। उसके साथ मैं चल पड़ा। वह घोड़ा ले आया था। मैं तुरन्त ही उस पर चढ़ गया।

मैंने अनुकूल समय पर ही रोगी को देखा, रोग का निदान किया और लौट पड़ा। घोड़ा उसने मेरे साथ अगली बस्ती तक कर दिया जहाँ तक उसका आदमी मेरे साथ आया और मुझे छोड़ गया। यहीं तक मैंने उसका आदमी माँगा था। वहाँ से रथ मिल जाते थे।

लेकिन जब मैंने रथ वालों से कहा तो मुझे चार कोस का विदेशी यात्री समझ वे बहुत ज्यादा दाम माँगने लगे। मैंने सोचा कि क्यों एक ऐसे मद्यविक्रेता के यहाँ चलूँ जहाँ कोई न कोई दिवालिया रथवान मिल जायेगा और मैं सस्ते ही पहुँच जाऊँगा। यही विचार कर मद्य-विक्रेता का पता माँगा। सौभाग्य से वह विक्रेता अपने तीन रथ चलाता था, क्योंकि काश्ची यात्री बहुधा मिल जाते थे। उसने अपनी राय में अधिक पर औरों से तो कम ही धन माँगा।

मैंने स्वीकार कर लिया।

उसने तुरन्त सेवक को पुकारा और उसके आने पर कहा, 'दम्भक कहाँ है? वापिस आ गया या नहीं?'

'नही दम्भक तो नहीं आया।'

'तब तो तुम्हें राजुल को ही जगाना पड़ेगा।'

'जगाना पड़ेगा!' मैंने कहा, 'अजीब बात है। दिन का तीसरा पहर भी अभी लगा नहीं और वह सो रहा है? क्या तुम्हारे सारथी दिन में सोते हैं?'

'यही सोता है,' मद्यविक्रेता ने मुस्करा कर कहा। मैंने देखा वह मुस्कराहट बड़ी अजीब थी, जैसे वह बात तो केवल उसी को ज्ञात थी।

और सेवक ने कहा, 'वह तो सपने भी देखता है।'

'तुम्हें क्या पड़ी इन बातों से', मद्यविक्रेता ने अपने सेवक को डाँटते

हुए कहा, 'तू जा और राजुल को जगा दे। श्रीमान् उसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं, और तू बातें करके समय बिगाड़ रहा है ?'

मद्यविक्रेता मोटा और काले रंग का आदमी था, जो पान बहुत खाता था, क्योंकि उसे अनगढ़ दाँत लाल-लाल से दिखते थे और मसूड़े इतने ज्यादा गहरे लाल थे कि काले-काले भी दिखाई देते थे। उसके गले में सोने का हार पड़ा था और उसका कंकण भी सुवर्ण का ही था।

उसकी मुद्रा और उसके सेवक की प्रतिक्रिया से मुझे लगा कि जो उन्होंने कहा है, उससे भी अधिक उनके भीतर है, जो अभी वे कह नहीं पाये हैं। मुझे लगा कि यहाँ कोई विचित्र रोगी अवश्य है, जिससे मुझे लाभ होगा। मेरी इच्छा हुई कि मैं उसके रोग का निदान करूँ।

मैंने उसके सेवक से कहा, 'ठहर! मैं चलता हूँ। जगाने के पहले मेरा भी वहाँ रहना ठीक रहेगा। मैं वैद्य हूँ। शायद वह विचार ठीक ही हो जाये। उसके दिमाग में कुछ खराबी आ गई होगी।'

'नहीं वैद्यराज!' मद्यविक्रेता ने कहा, वह तो इलाज के परे है। वैसे अगर आप चाहें तो देख लें। मुझे तो इसमें प्रसन्नता ही होगी। मैं स्वयं आपके साथ चलता हूँ।'

वह उठ खड़ा हुआ। आँगन पार करके हम लोग एक ओर अस्तबल में पहुँचे जहाँ उसके घोड़े बँधे थे। एक घोड़े ने मुड़ कर हमें देखा भी। वहाँ पहुँच कर उसने सेवक से कहा, 'मैं यहीं रुका जाता हूँ। तू वैद्यराज को भीतर लेकर जा।'

मैं और आगे बढ़ा। सेवक एक बुड्ढे आदमी के पास जाकर रुक गया जो कि पुआल पर सो रहा था।

मैं गया और मैंने झुक कर देखा। गौर से देखा कि उसका चेहरा झुर्रियोंदार था और दुख की उस पर गहरी छाया थी। उसकी भौं में जैसे पीड़ा की मरोड़ थी और मुख छोटा था और कोनों पर झुका हुआ था। गाल बैठे हुए थे और उसके सिर पर कम बाल थे, जो थे वे सफेद

हो चले थे। ऐसा लगता था जैसे उस आदमी ने जीवन में काफी दुख उठाया है। वह बड़ी भारी साँस लेता था; जैसे घुट रहा था और कभी-कभी नींद में बड़बड़ा उठता था।

'उठो!' सेवक ने कहा, धीरे से कान के पास जाकर जैसे वह फुसफुसाया।

'उठो!' उसी समय राजुल ने भी कहा, लेकिन उसने और भी कहा, 'खून! खून!!'

और उसके दाँत भिंच गये। फिर उसने अपना पतला बूढ़ा हाथ धीरे से उठाया और अपने गले पर रख लिया और एक बार जैसे वह काँप उठा। और तब उसने पुआल पर करवट बदली। फिर उसके हाथ ने गले को छोड़ दिया और हाथ फैल गया और दूसरी ओर वह हाथ कुछ पकड़ने के प्रयत्न में पुआल को पकड़ बैठा। मैंने देखा उसके होंठ हिलने लगे। तब मैं और झुक गया और उसके मुँह से निकलते शब्दों को सुनने लगा जो वह नींद में बड़बड़ा रहा था।

वह कह रहा था, 'हल्की कन्जी आँखें, और बाँया पलक कुछ झुका हुआ, रेशमी बाल, और उनमें चमक—अच्छी बात है माँ—गोरी मुलायम बाहें, स्त्री का छोटा सा हाथ, उँगलियों के लाल नाखून—चाकू—वही कमबख्त चाकू—पहले इस ओर—फिर दूसरी ओर—आह—पिशाचिनी—चाकू कहाँ है...बोल...'

अंत में उसकी आवाज उठी और अंतिम शब्द कुछ अधिक स्पष्ट सुनाई दिये। और वह उसके बाद बेचैन हो उठा। मैंने इसे पुआल पर फिर थरथराते हुए देखा, उसका वृद्ध मुख फिर विकृत हो गया और उसने दोनों हाथ झटके से पागल की तरह ऊपर उठा दिये। उसके हाथ ऊपर लटके एक छिंके से टकराये जो काफी नीचे लटक रहा था, और तभी वह जग गया।

इससे पहले कि वह पूरी तरह से होश में आता मैंने सेवक को

इशारा किया और हम लोग बाहर आ गये, जहाँ मद्यविक्रेता अत्यन्त उत्सुकता से खड़ा हुआ था।

'आपने देखा?' उसने पूछा

'हाँ,' मैंने कहा।

'आप समझे?'

'कुछ-कुछ।'

'सच!' उसके स्वर में आश्चर्य था।

'मुझे उसके अतीत के बारे में कुछ बता सकते हो?' मैंने पूछा, 'वह जानना आवश्यक है।'

'वह तो श्रीमान्,' मद्यविक्रेता ने कहा, 'आपको मैं सुना सकता हूँ। बड़ी अजीब सी कहानी है। लोग तो उस पर विश्वास भी नहीं करते। लेकिन मुझे तो वह सच लगती है। आप देखिये न? उसकी हालत देखते हुए उसे झूठ कैसे माना जाये?' उसने फिर अस्तबल की ओर इशारा किया और कहा, 'बिचारा! रात को चैन नहीं पाता, तभी तो देखिये दिन में सोता है। और नींद की हालत तो आपने देख ही ली है।'

'नहीं, नहीं,' मैंने कहा, 'उसे जगाओ नहीं। मुझे कोई जल्दी नहीं है। मैं तब तक रुकूँगा जब तक दूसरा सारथी लौट नहीं आता। मुझे खाने को कुछ फल मँगा दो, मैं हल्की चीज खाना चाहता हूँ।'

'श्रीमान् का स्वागत है। आइये। मैं आपकी सेवा में गौड़ी मदिरा प्रस्तुत करूँगा। श्रीमान् का हृदय मक्खन की भाँति कोमल है।'

वह मुझे अपने साथ ले गया। सेवक फल ले आया। मैं खाने लगा। मद्यविक्रेता ने पुकारा, 'जीमूत!'

जीमूत आया। बौना सा था वह कुरूप व्यक्ति। उसने तामिल में पुकारा, 'क्या है?'

इतनी भाषा मैंने भी सीख ली थी।

मद्यविक्रेता ने पाली में कहा, 'तू दूकान पर बैठ, मैं श्रीमान् की सेवा में लगा हूँ।' फिर खाँस कर उसने मुझसे कहा, 'श्रीमान्! आप बड़े कोमल हृदय के व्यक्ति हैं, जिन्होंने इस बिचारे की विपदा को देखकर अपना समय नष्ट करना उपयुक्त समझा। अन्यथा वैद्य तो अब धन के पीछे ही निदान भी करते हैं।'

'तुम वैद्यों की चर्चा मत करो,' मैंने उसे काट कर कहा, 'अपनी कहो। इस व्यक्ति की कथा मुझे सुनाओ। क्या था इसका नाम भला-सा...'

'श्रीमान्! राजुल।'

'हाँ, हाँ राजुल।'

'यह मेरा बड़ा अच्छा सेवक है।'

'अवश्य,' मैंने कहा, 'तुम्हारी मदिरा तो बड़ी स्वादिष्ट है।'

'श्रीमान् की दया है,' मद्यविक्रेता ने कहा, 'इसका मूल्य एक द्रम्म के हिसाब से है।'

'बहुत अच्छा।' मैंने द्रम्म को सामने रखा तो उसने उठाते हुए नकली हँसी हँसते हुए कहा, 'नहीं, नहीं...हैं हैं हैं, भला इसकी क्या आवश्यकता थी....।'

और तब उसने मुझे कथा सुनाई। उसके ही शब्दों में मैं उस घटनाचक्र को कहता हूँ ताकि आप उसे स्वयं जाँच लें। उसने कहा, 'राजुल पहले ताम्रलिप्ति नामक बन्दरगाह में रहा करता था। उसका काम वहाँ भी रथ हाँकना ही था। यदि उसे किसी धनी के यहाँ नौकरी मिल जाती तो कर लेता, या फिर अपना रथ हाँकता। वह जाति से क्षत्रिय पिता का पुत्र एक शूद्र के गर्भ से पैदा हुआ और इस तरह अपना वर्ण खो बैठा। किंतु इसके पिता ने इसे और इसकी माता को पाली लिखना-पढ़ना सिखा दिया।

राजुल एक ईमानदार आदमी था, दृढ़ था और अपने काम में ऐसा लगा रहता था कि और किसी भी बात की चिंता नहीं करता था। किन्तु भाग्य उसका अच्छा नहीं था, यह बात उसी तक सीमित नहीं थी,

उसके अड़ोसी-पड़ोसी जानते थे। घर में माता थी, क्योंकि पिता का देहांत हो गया था। बिचारे का इसमें अपना कोई दोष नहीं था, फिर भी अच्छे अवसर उसके हाथ से सदैव निकल जाते थे। उसे लोग अच्छा परिश्रम करने पर भी ठीक से दाम नहीं देते थे। उसको बहुधा लोग, अभागा राजुल के नाम से पुकारते थे, हालाँकि कोई यह नहीं कह सकता था कि यह आदमी इसी के योग्य है।

किंतु इतनी मुसीबतों में भी वह विचलित नहीं होता था। अभावों के कारण ही जैसे वह सब कुछ झेल जाया करता था। उसने विवाह ही नहीं किया और इसी से संतान भी नहीं हुई। तब वह चिंता किस बात की करता। वह किसी और को अपने साथ परेशान नहीं करना चाहता था। 'अकेला हूँ, कोई बात नहीं, सब भुगत लेता हूँ। एक और बिचारी को ले आऊँ और वह भी मेरे साथ दुख भोगे, ऐसा काम ही क्यों करूँ।' यही वह सब से कह देता और लोग चुप हो जाते। यह संसार ऐसा है कि इसमें दूसरे के विवाह कराने की लोगों को बड़ी लालसा हुआ करती है। और इसी तरह दिन निकलते गये। राजुल चालीस के करीब पहुँच गया। लेकिन फिर भी उस पर कोई लांछन नहीं लगा सकता था। उसकी कोई प्रिया नहीं बनी, न उसने किसी स्त्री को कभी छेड़ा ही, यहाँ तक कि जो स्त्रियाँ उससे छेड़खानी चाहती थीं, वे उससे नाराज भी हो गईं, परन्तु राजुल को इस सबसे भला क्या मतलब।

जब वह नौकरी पर न होता तो अपनी विधवा और 'अच्छी' माँ के पास रहता। वह स्त्री उस क्षत्रिय की याद में रहती, जो राजुल का पिता और उसका अपना पति था। उसी की निशानी राजुल को उसने बड़े ही प्रेम से पाला था। उसी ने उसे पढ़ना सिखाया था, लिखना सिखाया था। दुर्भाग्य से राजुल जीवन में उठ नहीं सका। न सही, किंतु स्नेह तो धन और वैभव नहीं देखता। वह अपने विगत सुखी जीवन की बात कभी नहीं चलाती थी, और यद्यपि वह सभी के प्रति बड़ी विनम्र थी फिर भी वह किसी से बहुत अधिक आत्मीयता नहीं बढ़ाती थी।

उसकी अपनी जरूरतें बहुत कम थीं, जिन्हें वह कुछ न कुछ करके जुटा लेती थी और जब उसका पुत्र संसार में अपने दुर्भाग्य की ठोकरें खाकर लौटता तो वह उसके लिये द्वार सप्रेम उन्मुक्त रखती। वह आता और आराम से रहता। यहीं उसे जीवन में एक ठौर थी, जहाँ स्नेह मिलता फिर वह अपने सारे दुखों को भूल जाता और फिर संसार में लौट जाता, अर्थात् किसी काम की खोज में निकल पड़ता था।

यों ही माँ बेटे का जीवन इतने दिन तक बीत गया और कोई परिवर्तन नहीं आया।

हेमंत ऋतु थी। चालीसवाँ साल पूरा करके राजुल इकतालीसवें में लगने वाला था। राजुल को पता चला कि एक श्रीमंत के यहाँ सारथि का स्थान रिक्त हो गया है।

'माँ,' उसने कहा, 'मैं जाता हूँ।'

'भगवान तेरा मंगल करें,' माँ ने कहा, 'लेकिन दो दिन तो तेरे जन्मदिन को रह गये हैं।'

'तू भी माँ!' राजुल ने कहा, 'अब मैं क्या छोटा हूँ।'

'अच्छा तू मेरे लिये कब से बड़ा हो गया?' माँ ने कहा।

'अच्छा मैं लौट आऊँगा।'

'मुझे बचन दे के जा।'

'अच्छी बात है,' राजुल ने कहा।

'तो तू सोम को जा रहा है। याद रखना बुध को तेरा जन्मदिन है। समझ ले अच्छी तरह आज द्वितीया है, चतुर्थी को है। याद रखेगा न।'

'मैं तुझे मीठे चावल पकाकर खिलाऊँगी,' माँ ने फिर कहा। उस दरिद्रता में मीठे चावल का अर्थ था कि ठाठ की बात होगी।

'माँ,' राजुल ने कहा, 'मैं तुझे कितना दुख देता हूँ। क्या करूँ। इतना भी नहीं कर सका कि तुझे बुढ़ापे में आराम दे सकता।'

'अरे बेटा !' बुढ़िया ने कहा, 'मेरा आराम तो यही है किन्तु मेरे पास है बेटा। और मुझे क्या सुख चाहिये।'

राजुल का हृदय भर आया। उसने कहा, 'मैं जरूर आ जाऊँगा माँ, तू चिन्ता मत कर।'

लेकिन सोम की रात को वह बहुत देर में पहुँचा और उसे एक धर्मशाला में टिकना पड़ा। मंगल को वह अपने होने वाले स्वामी के पास पहुँचा, परन्तु वे उस दिन किसी कारण से क्रुद्ध बैठे थे।

उन्होंने पूछा कौन है ?

राजुल घबरा गया। भुनभुनाकर उन्होंने कहा, 'नहीं मेरे यहाँ कोई जगह नहीं है। मेरा आदमी लौट आया है।'

राजुल को बड़ा धक्का लगा। वह अपना रथ लौटा लाया और सोचने लगा कि ऐसी चोट उसके साथ सदा ही क्यों हो जाती है।

किन्तु उसने बुरा नहीं माना।

उसने कहा, 'स्वामी को कभी मेरी सेवा की आवश्यकता हो तो मुझे अवश्य बुलवा लें। दास सदैव प्रस्तुत रहेगा।'

लेकिन उसकी नम्रता से कोई प्रभाव नहीं पड़ा, क्योंकि स्वामी आज क्रुद्ध थे।

'तो फिर मेरे लिये क्या आज्ञा है ?'

'कुछ नहीं।'

अब इसके आगे वह क्या कहता।

उसने झुककर कहा, 'स्वामी प्रणाम करता हूँ।'

स्वामी ने केवल सिर हिलाया और राजुल को लाचार होकर हटना पड़ा। सिर भारी था और तरह-तरह के विचार आ रहे थे।

किन्तु राजुल ने अपनी नम्रता का त्याग नहीं किया। उसने धनी के कारिन्दे को धन्यवाद दिया कि उसने उसके स्वामी से मुलाकात करा दी थी। उसने इस घटना को भी अपना दुर्भाग्य समझ कर ही स्वीकार कर

लिया और कोई विशेष दुख नहीं किया। चलते समय उसके मुख पर कोई व्यक्त विषाद नहीं था।

जब उसने घर की ओर रथ हाँका तो वह एक धर्मशाला में गया और उसने कोई पास का रास्ता वहाँ दरयाफ्त किया।

एक आदमी ने बताया और बार-बार दुहरा कर उसे, यह मोड़, वह मोड़, वहाँ पेड़, वहाँ टीला करके सब समझा दिया। राजुल चल दिया। लेकिन समय से पहले ही उस दिन साँझ हो गई। क्योंकि घने बादल उमड़ आये, इतने घने कि अँधेरा छा गया। पहले तो सवनों की पाँत, उड़ी फिर पेड़ जमीन की ओर झुकने लगे। आँधी आ गई और साथ ही बड़े जोर का पानी गिरने लगा।

उस समय वह एक धर्मशाला के जैसे मकान के पास था। उन मकान की ओर ही उसने रथ हाँक दिया और उसके आँगन के कोने में पड़े छप्पर में रथ रोक दिया।

'कौन है ?' मालिक ने पूछा।

'यात्री हूँ।'

'लेकिन यहाँ धर्मशाला नहीं है।'

'ऐसे दिन तो संसार में जहाँ भी आदमी रहते हैं, वहीं एक दूसरे के लिये धर्मशाला खुल जाती है।' राजुल ने माथे पर उँगली फेर कर पानी की बूँदे झाड़ी जो एक दूसरे से मिल कर लीक बन कर टपक पड़ीं।

आकाश में बिजली झमझमा रही थी।

वहाँ कुछ राज, मजूर बैठे थे। उसमें से एक ने कहा, 'स्वामी, बिचारा यात्री है। ठहरा ही लीजिये न ?'

'मेरे पास खाने को खिलाने को कहाँ है ?'

राजुल समझ गया कि यह सूम है। उसने और कोई चारा न देखकर मन ही मन सोच लिया कि आज रात को यहीं काटना पड़ेगा। अतः कहा, 'मित्र ! तुम चिन्ता न करो। आज मैं ही तुम्हारे परिवार

को दावत दूँगा। अगर तुम मँगा सको तो थोड़ी मदिरा भी मँगा लेना। लेकिन एक शर्त है।'

'क्या ?' सूम ने प्रसन्न होकर कहा।

'यही कि मैं आराम से सोऊँगा।'

सूम ने कहा, 'भला यह भी कोई बात है। तुम जैसे अच्छे आदमी को मैं क्या सुलाऊँगा नहीं;' फिर उसने राज से कहा, 'उठ, देखता क्या है ? रथ को सँभाल। पशुओं को पानी पिला।' और राजुल से कहा, 'तुम यहाँ आकर बैठो। यहाँ।'

राजुल उसी की खाट पर बैठ गया और एक द्रम्म निकाल कर कहा, 'लो यह इस समय रखो, बाकी का हिसाब मैं फिर करूँगा। जरा मुझे पानी पिला दोगे ?'

'हाँ, हाँ। अवश्य,' उसने कहा, 'तुम्हें क्या कोई मना कर सकता है ?'

वह एक साधारण व्यक्ति था और उसका भोजन भी उतना ही साधारण ही था। खाना खा कर वह सूम तथा मजदूरों से बातें करता रहा। यों आधीरात हो गई। बड़े मजे में समय व्यतीत हो गया। किसी प्रकार से भी ऐसी कोई बात नहीं हुई जिसका कोई भी प्रभाव ऐसा माना जा सकता है कि जो आगे हुआ, उसके लिये राजुल का दिमाग पहले से उलझन में फँसा हुआ माना जा सके। राजुल वैसे भी कोई कल्पनाशील व्यक्ति नहीं था कि तिनके का पहाड़ बनाने की सामर्थ्य रखता हो।

सूम उसके साथ गया। ऊपर के भाग में एक बड़ा सा प्रकोष्ठ था। राज, मजूर नीचे ही सो गये। भीतर की तरफ स्त्रियाँ रहती थीं। सब दरवाजे बंद कर लिये गये। राजुल ने आश्चर्य से देखा कि ऊपर के प्रकोष्ठ के द्वार भी लोहे से मँढ़े हुए थे और उनमें अर्गला भी बड़ी मजबूत थी।

सूम ने कहा, 'भाई ! लोगों को यह विचार या कहूँ भ्रम हो गया है

कि मेरे पास धन बहुत है और यही कारण है कि इस घर के सब ही दरवाजे बड़े मजबूत हैं। हालाँकि मेरे साथ किसी ने कभी कुछ नहीं किया, लेकिन सस्ता रोवे बार-बार मँहगा रोवे एक बार, मैंने इसी सिद्धांत को मान कर इस मकान को मजबूत बनवा दिया है। कभी-कभी जब राज, मजूर नहीं रहते, तब मैं और मेरी स्त्री ही यहाँ रह जाते हैं। लड़कियाँ घर में डरती हैं और ऐसी ही हमारी नौकरानी है। तुम यहीं सोओ। आराम से रह सकते हो। तुम्हें कोई कष्ट तो नहीं हुआ? खाना तो पसंद आया?'

'बहुत! आपको किस प्रकार धन्यवाद दूँ,' राजुल ने कहा।

'मदिरा बची हो तो लाऊँ?'

'नहीं वह आपके लिये है। मैं तो बहुत कम पीता हूँ। आज वैसे ही पी डाली कि आप जैसे अच्छे मित्रों की सेवा कर सकूँ।'

'आप की दया है,' सूम ने कहा, 'मैं भी इस वस्तु को ज्यादा अच्छा नहीं समझता। लेकिन क्या करूँ? बच रही है तो मैं ही पी डालूँगा क्योंकि इतनी बची नहीं है कि सब मजूरों में बाँटी जाय। फिर तो उसका रहा-सहा मजा भी चला जायगा। खैर! मुझे कुछ तो करना ही होगा। हाँ, दरवाजा आप चाहें तो बंद कर लें, क्योंकि मेरे खयाल में आपके पास धन है और मजूरों की नीयत की तो मैं जानता नहीं। नहीं, दरवाजा आप बंद ही कर लें। वह देखिये दीप जल ही रहा है। यह देखिये चकमक पत्थर रखा है।'

'हाँ, हाँ, मुझे जरूरत नहीं पड़ेगी। होगी तो देख लूँगा।'

'मेरा तो काम अपना कर्त्तव्य निभाना है महाशय। वह मैं निभा रहा हूँ। अच्छा मैं चलता हूँ। जय महादेव!'

'जय महादेव!' कह कर राजुल ने दरवाजा बंद करके अर्गला चढ़ा दी और देखा कि दीपक जल रहा था। वह थका हुआ सा बिस्तर पर लेट गया। बाहर हेमंत की तेज हवा चल रही थी जिसे पानी भिगो रहा था। वह आवाज रात के सन्नाटे में काफी बड़ी हो कर सुनाई देती थी।

राजुल को अजीब-सा लगा। उसने दीप को जलते रहने दिया और सो जाने की चेष्टा करने लगा क्योंकि न जाने क्यों उसके मन ने यह स्वीकार नहीं किया कि वह अँधेरे में लेटे और उस हवा की सुनसान में गूँजती पुकार को चुपचाप बिस्तर पर पड़ा सुनता रहे।

उसके विचारों को भी शांति नहीं थी। वह सोच रहा था, कल सुबह जन्मदिन है। जन्म तो उसका इसी रात को हो गया था। माँ बैठी होगी। नौकरी नहीं मिली। इत्यादि उलझनें कभी-कभी उसके दिमाग में डोल उठती थीं।

धीरे-धीरे नींद आ गई। उसकी आँखें झपक गईं और फिर वह सब कुछ भूल गया। दीप चुपचाप जलता रहा और अपना प्रकाश दीवारों पर फेंकता रहा। नींद आने के बाद उसे यह एक अजीब सी अनुभूति हुई कि वह ऊपर से नीचे से सनसना कर काँप उठा है और उसके दिल में बड़े जोर से दर्द हो रहा है, ऐसा जैसा उसके कभी नहीं हुआ था। कंपन ने उसकी नींद में व्याघात डाला किंतु पीड़ा ने उसे जगा दिया। एक क्षण में ही वह जाग उठा और उसकी आँखें भाँटा सी खुल गईं और उसे लगा जैसे वह कभी भी सोया ही नहीं था। कितना विचित्र था यह विचार!

दीप काफी देर से जल रहा था। ऐसा लगता था अब, वह बुझने पर आ गया है। उसका उजाला बड़ा मद्धिम हो गया था।

उसने देखा कि उसके पैताने और बंद दरवाज़े के बीच में उसकी ओर देखती हुई, चाकू हाथ में लिये हुए, एक स्त्री खड़ी थी।

उसे भय हो आया। वह बोल नहीं सका। लेकिन उसका दिमाग ठीक था और उसने एक क्षण को भी स्त्री पर से दृष्टि नहीं हटाई। वह एक भी शब्द नहीं बोली और दोनों एक दूसरे की ओर एकटक देखते रहे, लेकिन फिर वह पलँग की बाँई तरफ धीरे-धीरे बढ़ने लगी।

उसकी आँखों ने स्त्री का पीछा किया।

वह एक सुन्दर स्त्री थी। उसका रंग गोरा था। उसके बाल सुनहले

और रेशमी थे, जिनमें एक चमक थी। उसकी आँखें हल्की कंजी थीं। और उसका बाँया पलक कुछ झुका था! उसकी बाहें गोरी थीं, मुलायम थीं। उसका हाथ छोटा सा था। उँगलियों के नाखून लाल थे, उसी हाथ की मुट्ठी में चाकू था।

जब तक वह बिस्तर के पास आई, तब तक उसने यह सब बातें देख डालीं और वह अवाक् था। उस स्त्री का मुख गंभीर था, और उस पर कोई भाव ही नहीं था, न उसके पैरों की चाप सुनाई देती थी। वह बढ़ती आई, और पास...और पास...और फिर उसने अपना चाकू उठाया।

राजुल ने अपना हाथ वार बचाने के लिये अपने गले पर रख लिया और देखा कि चाकू उसकी ओर आ रहा था, उसने अपना हाथ दूसरी ओर फेंका कि बिस्तर का किनारा पकड़ सके और अपने शरीर को झटका दिया और करवट लेकर हट गया किंतु चाकू बिस्तर में घुस गया। वह बाल-बाल बच गया था।

राजुल ने फिर अपनी आँखें उसके हाथ पर गड़ा दीं। स्त्री के हाथ ने धीरे से चाकू बिस्तर से खींच लिया, जिसे काट कर वह नीचे दरी और गद्दे में घुस गया था। वह हाथ गोरा था, कोमल था और छोटा सा था। उसके नाखून सचमुच लाल थे और राजुल एक टक देखता रहा।

परन्तु उसमें जैसे शक्ति नहीं थी। वह अवाक् था।

स्त्री वहीं गंभीरता से खड़ी थी। स्त्री अब बिस्तर की दायीं तरफ आने लगी। उसे जैसे कोई जल्दी नहीं थी। उसके पाँवों से अब भी कोई चाप सुनाई नहीं दे रही थी। उसके हाथ का चाकू बड़ा था, ऐसा जैसा कि स्त्रियाँ तरबूज और इसी तरह की चीजें काटने के लिये रखती हैं। या कि जिससे गोश्त काट जाता है।

उसका मुख अब भी भावहीन था, परन्तु सुंदर वह उतना ही था।

अब की बार उसने फिर चाकू उठाया और उसके सीधे हाथ पर वार किया, और उसका वार सीधा पड़ा। इस बार उसकी दृष्टि हाथ से हट

कर उस चाकू पर गई। उसका मुष्ठा सींग का बना था और चाकू नया था, चमचमा रहा था। वह उस वार को भी बचा गया था।

तब स्त्री ने दूसरी बार भी चाकू बिस्तर में से खींच लिया, और अपने कपड़ों में छिपा लिया। बिस्तर के पास रुकी और उसे देखती रही तभी दीपक की लौ काँपी, उठी और कम हो गई। अँधेरा सा छा गया।

एक क्षण और बीत गया और बत्ती के सिरे पर फिर चमक सी दिखाई दी, फिर उससे धुँआ निकला, और यह जैसे उसका अंत था। अब भी वह स्त्री पर ही दृष्टि गड़ाये था। तभी दीप का अंतिम प्रकाश फैला और फिर उसने देखा कि वह सुंदर स्त्री वहाँ नहीं थी, चली गई थी, और तभी दीप बुझ गया।

उसको यह लगा कि वह फिर उस प्रकोष्ठ में अकेला था। इससे उसका भय कम हुआ और उसकी जीभ हिलने लगी, अभी तक की खोई हुई शक्ति उसमें जैसे जाग उठी। वह जो उसे एक अजीब सी शक्ति ने जकड़ लिया था, उसकी पकड़ सहसा ही जैसे ढीली हो गई थी। पहले वाला दिल का दर्द अब उसमें से गायब हो गया था।

उसका दिमाग सनसना उठा, कुछ चकराया भी। और दिल जोर से धड़क उठा। उसे लगा उसके कान फिर खुल गये थे, क्योंकि अभी तक उनमें सन्नाटा छा रहा था और अब वह फिर बाहर तेज चलती, रोती पुकारती सी हवा की आवाज सुन रहा था।

उसे अनुभव हुआ कि उसने सचमुच एक भयानक चीज देखी थी, वह स्वप्न नहीं था। वह तुरंत बिस्तर से कूद पड़ा और बुरी तरह चिल्लाया, 'खून ! खून ! जागो। जागो ! उठो ! उठो !'

और अँधेरे में ही वह दरवाजे की तरफ दम लगा कर भागा।

वहाँ जाकर उसने देखा कि दरवाजा जैसा उसने बंद किया था. वैसा ही बंद था, वह मजबूत दरवाजा !

उसकी पुकारों से घर के सब लोग जाग गये और उनमें दहशत छा गई। स्त्रियाँ बुरी तरह चीत्कार कर उठीं और रोने की भी आवाज

आई। सामने ही द्वार खोलते ही उसे सूम और राज तीर, कमान, तलवारें, भाले और फरसे लिए हुए दीपक लिये दिखाई दिये, उनके चेहरों पर उनकी आँखें फटी-फटी-सी दिखाई दे रही थीं, क्योंकि वे सब चौकन्ने हो गये थे।

सूम ने डरे हुए स्वर से पूछा, 'क्या बात है! क्या हुआ?'

निश्चय ही वह प्रेत नहीं था! लेकिन राजुल ने इस पर कोई ध्यान नहीं दिया। उसने धीरे से चौकन्ने होकर फुसफुसाते हुए कहा, 'एक औरत, गोरी सी, रेशमी सुनहले से बाल थे, उसने दो वार मुझ में चाकू घुसेड़ देने की कोशिश की!'

सूम के चेहरे पर मुर्दनी छा गई। उसने राजुल की ओर उत्सुकता से देखा और अपने हाथ के दीपक का प्रकाश उस पर डाला! तब उसके चेहरे का रंग बदलने लगा। वह लाल हो गया। उसकी आवाज भी बदल गई।

उसने कहा, 'मालूम देता है वह दोनों बार चूक गई?'

राजुल ने उसी डरे हुए स्वर में कहा, 'मैं खिसक गया। दोनों वार उसका चाकू जाकर बिस्तर में दाँये-बाँये गड़ गया।'

सूम आगे बढ़ा।

उसने बिस्तर देखा और उस पर हाथ भी फेरा और उसका क्रोध फूट निकला, 'मूर्ख! कहाँ है तुम्हारी स्त्री और उसका वह चाकू! क्या आदमी से पाला पड़ा है। न जाने इन लोगों की सृष्टि करके ब्रह्मा को क्या मजा आता है! बिस्तर पर कोई निशान नहीं है। मैं तुमसे पूछता हूँ कि तुम इतने डरपोक थे तो अकेले सोये क्यों? मुझे लगता है यह बात ही और है! यह पागल तो नहीं है। भला बताओ। भले आदमी ने रात बिताने को जगह दी तो सपना उल्टा सीधा सादा देखा और चिल्ला पड़े। यह नहीं सोचते की घर में औरतें हैं, बच्चे हैं, वे डर भी सकते हैं!'

राजुल ने दबे स्वर से कहा, 'मैं तुम्हारे घर में नहीं रहूँगा। इस आँधी-पानी में भीगना अच्छा है। यह मकान तो भुतहा है।'

'ऐ क्या बकते हो!' सूम ने कहा, 'वह निश्चय ही राजों की मौजूदगी में यह तारीफ घर के लिये नहीं सह सकता था क्योंकि राज लोग वे पढ़े-लिखे थे, वे इसे सत्य मान बैठते।' उसने स्वर उठा कर कहा, 'शराब पीकर उल्टी-सीधी बातें सोचने लगे और जो जी में आया बकने लगे। मैंने ही गलती की जो पहले परख नहीं की। चले तो ऐसे आये थे जैसे पूछने की जरूरत ही नहीं थी। मैंने भी सोचा कि चलो आ ही गया है तो वह भी जाने दो। इस आँधी-पानी में यह जायेगा भी कहाँ!'

'कुछ भी हो!' राजुल ने कहा, 'जो कुछ मैं इस कमरे में देख चुका हूँ, अब उसे देखने के बाद मैं यहाँ नहीं ठहर सकता। मुझे बताओ तुम्हें क्या चुकाना है?'

'चुकाना!' सूम ने चिल्ला कर कहा, 'एक द्रम्म!'

राजुल ने बढ़ा दिया। उसने लेकर कहा, 'मैं तो तुम्हें यहाँ ठहरने ही नहीं देता। मुझे क्या मालूम था कि तुम दुःस्वप्न देख कर दूसरों को डराने की विद्या में इतने निपुण हो!' फिर उसने मजदूरों की ओर देख कर कहा, 'देखो तुम लोग देखो। कहीं तुम्हें यहाँ बिस्तर पर चाकू का कोई निशान दिखाई देता है। है कहीं? नहीं न? और यह मनुष्य कहता है कि इस पर चाकू का वार किया गया था। खिड़कियाँ वैसे ही बंद हैं! बाहर का दरवाजा इसने अपने हाथ से खोला है!'

'भला यह भी कोई बात हुई।'

'शराब में बड़ा कमाल होता है,' एक राज ने कहा।

सब हँस पड़े।

लेकिन राजुल ने कुछ नहीं कहा।

सूम ने कहा, 'मेरे भाई! जरा हिम्मत रखो। दुनिया में रहना सीखो।' उसने अपने कपड़े ठीक किये और फिर वे लोग नीचे चल दिये।

'रात का तीसरा पहर है,' सूम ने कहा, 'क्या समय निकाल कर मित्र ने कोलाहल किया है कि प्रशंसा किये बिना नहीं रहा जाता।'

राजुल कुछ नहीं बोला।

सूम ने उसका रथ सँभलवा दिया और वह उसे लेकर निकल पड़ा उसके पीछे बड़ा द्वार बंद हो गया। अंतिम बार उसने पीछे हँसी की आवाज सुनी, उसे निश्चय हो गया कि किसी ने भी उसकी बात का विश्वास नहीं किया है।

बाहर पानी बरसना तो बंद था, लेकिन रात बड़ी अँधेरी थी और हवा तो कितनी तेज, कितनी ठंडी थी, कि उसकी हड्डियाँ बार-बार काँप कर भी अंदाज नहीं लगा पायीं।

परन्तु राजुल न अब हवा से डरता था, न सर्दी से, न अँधेरे से। वह तो उस मकान के बाहर आकर चैन की साँस ले रहा था। हवा चिल्लाती थी, अँधेरा हँसता था, ठंड उसको घोंटती थी, लेकिन इस सब में उसे सुख हुआ।

वह घर की ओर चल पड़ा।

और उसने सोचा।

वह चाकूवाली स्त्री कौन थी?

क्या वह स्वप्न था!!

या फिर...या फिर......

इस खयाल के आते ही उसके रोंगटे खड़े हो गये।

क्या वह...क्या वह...

प्रेत लोक की कोई आत्मा थी...

वह डर गया, परन्तु रहस्य को सुलझा नहीं सका।

उसने गाना छेड़ दिया और गाता रहा, अपनी आवाज इस काली रात में उसे हिम्मत बँधाने लगी। और उसका साथी ही कौन था! गाना बढ़ता गया और फिर उसने देखा कि रथ रुक गया। सामने एक ऊँची चट्टान खड़ी थी। तब तो वह रास्ता भूल गया था! उसने रथ

लौटाया। न जाने वह उस नये रास्ते पर कितनी बार रास्ता भूला, परन्तु उसे इसमें तनिक भी झुँझलाहट नहीं हुई। वह तो वहाँ लौट कर नहीं जाना चाहता था।

दूसरे दिन जब किरन फूटी तो उसने देखा कि वह जंगल के एक कच्चे रास्ते पर जा रहा था।

एक चरवाहा जा रहा था। उससे राह पूछ कर वह फिर अपने घर की ओर लौटा। बुधवार था। वह ठीक समय पर घर पहुँच गया। उसने देखा तो एक चैन की साँस ली और यहाँ आते ही उसके हृदय में साहस का संचार हुआ। रथ से कूद कर वह पुकार उठा, 'माँ!'

उसकी आवाज में स्नेह था और जीवन के प्रति जैसे आश्वासन उसमें अपने आप छलक आया था।

माँ उत्सुकता से बाहर आ गई। उसका मुख देखकर ही वह समझ गई कि कुछ गड़बड़ जरूर हो गई है, क्योंकि वह कुछ उजड़ा उजड़ा-सा दिखाई दे रहा था।

अपना रथ बाँध कर वह भीतर आया तो बोला, 'माँ मैं रास्ता भूल गया। मैंने एक बुरा सपना देखा है कल रात माँ, हो सकता मैंने भूत देखा था। जो भी हो, मैं उसे देखकर बहुत ही डर गया हूँ। अभी तक मैं ठीक नहीं हो सका हूँ माँ।'

'मेरा बेटा,' माँ ने कहा, 'तेरा मुँह देखकर मुझे डर लगता है। यहाँ आ अँगीठी के पास बैठ। और मुझे सब बातें बता। अपना जी हल्का कर ले।'

वह बताने को लालायित था, वह सुनने को। उसे आशा थी कि उसकी माँ जो उससे अधिक बुद्धिमती थी वह जरूर कुछ न कुछ समझ जायगी। वह जरूर इस रहस्य को सुलझा देगी। उसे हर एक बात साफ-साफ याद थी, लेकिन वैसे वह उलझा हुआ था, क्योंकि उसकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था, कि आखिर वह रहस्य क्या था।

जैसे-जैसे वह कहानी सुनाता गया, उसकी माँ का चेहरा पीला पड़ता

गया। लेकिन वह बीच में नहीं बोली। चुपचाप एक-एक शब्द को सुनती रही। जब कथा समाप्त हो गयी, वह उसके पास सरक आई और उसके सिर पर हाथ फेर कर बोली, 'राजुल उस समय जब कि तूने सपना देखा बुध के उषा काल के कुछ ही पहले था न? अंदाज से कौन-सा पहर था!'

'माँ वह तीसरा पहर ही था रात का,' उसने सोचकर कहा, उसे याद आया था कि सूम ने ऐसा ही तो उसके चलते समय कहा था। उसने अंदाज से पूरा हिसाब लगाया और घटा कर समय बता दिया।

माँ ने हाथ हटा लिया और दोनों हाथ एक दूसरे से ठांक दिये और मुट्ठी बाँध ली, जैसे वह घोर निराशा में पड़ गई थी।

'वही तो तेरे जन्म का समय था राजुल!' माँ ने कहा, 'तू उसी समय तो पैदा हुआ था!'

राजुल माँ की बात की गहराई समझ नहीं पाया कि वह किसी चीज से डर रही थी। उसे आश्चर्य हुआ, और वह चौंका भी, जब माँ उठी और एक लिखने का कपड़ा निकाल लाई और उसके हाथ में दावात, कलम भी थी। माँ ने कहा, 'राजुल! मेरी बात मानेगा।'

'क्यों नहीं माँ।'

'तो तुझे जो भी याद है वह सब इस पर लिख तो दो।'

'क्यों माँ।'

'मेरी याददाश्त अब कमजोर हो गई है,' माँ ने उत्तर दिया, 'और तू तो कुछ याद रखता नहीं। मैं चाहती हूँ कि आयंदा के आने वाले बरसों में भी यह बात रहे और जो तूने कल रात देखा था, उसे ज्यों का त्यों बोल जा। मैं लिखूँगी। बता तो कैसी थी वह औरत और कैसा था वह चाकू?'

राजुल ने कहा, 'हल्की कंजी आँखें...बाँया पलक कुछ-कुछ झुका हुआ, बाल रेशमी, सुनहले, चमकदार, गोरी बाँहें... छोटा सा हाथ ... और नाखून लाल चाकू बड़ा...सींग का मुठा...चमकदार...नया...

माँ ने लिखकर मिती, वार, काल, संवत् सब लिख दिया और हिफाजत से उस कपड़े को लपेट कर अपने बक्स में रख दिया और यों अपना काम उसने खत्म कर दिया।

उसके बाद जब भी राजुल ने अपनी माँ से उस विषय में पूछना चाहा, माँ ने बात टाल दी। वह उस विषय पर बिलकुल बात करना पसंद नहीं करती थी। जब वह उस लेख को देखना चाहता तो मना कर देती। राजुल हार गया, परन्तु माँ ने इस विषय पर अपना मौन नहीं तोड़ा। यहाँ तक कि समय बीतता गया, बात पुरानी पड़ती चली गई। धीरे-धीरे उस स्वप्न के प्रभाव उस पर से दूर होते गये और उसे पहले तो कभी-कभी ही उसका ध्यान आता, परन्तु बाद में वह उस बात को बिलकुल ही भूल गया। भुलक्कड़ स्वभाव का तो वह आदमी था ही। परन्तु माँ ने तो कभी इस बात की चर्चा भूल से भी नहीं चलाई। वह ऐसे थी, जैसे उसे मालूम ही नहीं था कि ऐसी कोई बात उसके पुत्र के साथ हुई भी है कि नहीं।

परन्तु अब राजुल की हालत सुधरने लगी। घर में उतनी गरीबी नहीं रही। उसके हाथ में पैसा आने लगा और वह बचाने भी लगा। पड़ोसियों को कुछ आश्चर्य भी हुआ। परन्तु मसल मशहूर है कि बारह बरस बाद घूरे के भी दिन फिरते हैं। सो घूरे के दिन बदलने लगे। और सात वर्ष उसने खूब कमाया, अच्छी तरह बचाया और जब उसका स्वामी मर गया तब उसे काफी कुछ धन दे भी गया कि एक बार राजुल ने उसकी स्त्री को एक रथ की दुर्घटना में अपने प्राणों की चिंता न करके बचाया था। और फिर कभी उसे प्रगट नहीं किया था।

जब राजुल माँ के पास लौटा तब उसके पास इतना धन था कि बाकी जीवन वह और उसकी माँ बिना किसी परिश्रम और चिंता के बिता सकें। तभी एक दिन उसका जन्मदिन आ गया और दोनों एक जगह बैठ कर आराम से खाने लगे। खीर बनी थी।

लेकिन शाम को जब अँधेरा घिरने लगा माँ को याद आया कि वह

नित्य जो त्रिफला का चूर्ण खाती थी, वह बीत गया था। उसे ऐसा खयाल था कि अभी वह एक शाम को और काफी होगा। वहाँ देखा तो कुछ भी नहीं था। राजुल ने कहा, 'मैं जाकर ले आता हूँ।'

'लेकिन बाहर पानी पड़ रहा है राजुल', माँ ने कहा, 'हवा ठंडी है, अँधेरा है। रहने भी दो।'

'अरे वैद्य पास ही तो रहता है।'

'वैद्य तो नगर के बाहर गया हुआ है।'

'कोई बात नहीं। उसका वह नौकर तो होगा, जो दवा देता है।'

'हाँ वह तो होगा!'

'तो बस अभी ले,' कह कर राजुल चल दिया।

जब वह वैद्य के यहाँ घुसने लगा उसने देखा एक स्त्री जो कि दरिद्रों के से वस्त्र पहने थी शीघ्रता से बाहर निकल रही थी। उसका मुँह देखा तो उसे कुछ अजीब सा लगा? वह उतर कर सीढ़ियों के नीचे पहुँचा तो वह उसको ओर मुड़कर देखता हुआ ऊपर चढ़ने लगा।

दवा बाँधने वाले ने कहा, 'तुम उस स्त्री को देख रहे हो? मुझे भी लगता है उसका माथा फिर गया है।'

'क्यों क्या हुआ?'

'वह अपने दाँत का दर्द ठीक करने के लिये सँखिया माँग रही थी।'

'संखिया!!'

'हाँ! मैंने कहा कि मैं स्वामी की आज्ञा के बिना विष नहीं दे सकता। वह कह गई है, वह फिर आयेगी। भले ही आये। बताओ न? मैं उसे विष कैसे दे सकता हूँ? मुझे तो डर है कि वह स्त्री किसी कारणवश आत्महत्या करना चाहती है।'

राजुल का कौतूहल बढ़ गया। पहली ही दृष्टि में उसका मुँह देखकर चौंका था, जिस पर इस बात ने तो उसकी जिज्ञासा को और भी बढ़ा दिया।

उसने कहा, 'त्रिफला !'

तुल गई, मिल गई तो वह उसके लिये, अपनी आँखें फैलाता लौटने लगा। वह सड़क की दूसरी तरफ टहल रही थी। उसका हृदय उसे देख कर अपने आप तेजी से धड़कने लगा कि राजुल को स्वयं अपने इस परिवर्तन पर आश्चर्य भी हुआ। ऐसा क्यों हुआ? उसने सोचा किन्तु वह तब तक सड़क पार करके उस स्त्री के पास पहुँच गया था।

'क्या तुम किसी दुख में हो ?' उसने पूछा।

स्त्री ने अपने फटे दुशाले और कपड़े की ओर इशारा किया। उस सर्दी में भी वह असल में एक लँहगा, पुराना सा पहने थी और तन पर एक पुरानी चोली थी और किसी तरह अपने को फटे दुशाले से ढाँके हुई थी। उसके सिर पर फटी सी ओढ़नी थी और कुछ नहीं। लेकिन वह सुन्दर थी। और इस हालत में भी सुन्दर लग रही थी।

'मैं सुखी दिखाई देती हूँ ?' उसने विद्रूप से हँसकर पूछा, 'क्यों है न ?'

उस स्त्री के वस्त्र और इसकी बोली में भेद था। वह शुद्ध बोलती थी और लगता था वह किसी कुलीन परिवार की स्त्री है जो किसी कारण से मुसीबत के दिन काटने को मजबूर हो गई है। उसके हाव-भाव भी उच्च कुल की स्त्रियों के-से थे, उसमें गँवारपन नहीं था। उसके शरीर पर चिथड़े होने पर भी उसकी खाल बड़ी मुलायम थी, जैसे उसने कभी कड़ा काम नहीं किया था। वह आराम से ही रही थी। वह सब राजुल ने धुँधली रोशनी में देखा जो वैद्य के खुले द्वार में से उसके पास आ रही थी। हाथ कोमल थे, जिनसे यह प्रगट होता था कि वह सदैव कोमलता में रही थी। उसने कोई परिश्रम नहीं किया था।

धीरे-धीरे प्रश्न करने पर उस स्त्री ने अपनी करुण कथा सुनाई, जिसका तात्पर्य यही था कि वह अच्छे घर की थी, परन्तु दुख से दिन काट रही थी।

'मेरा नाम', उस स्त्री ने बताया, 'विशाला है और अब मेरे पास

उसने उस पर विश्वास कर के ठीक ही तो किया था, उसने सोचा, क्योंकि विशाला उसे वहाँ मिली।

वह आदमी जीवन भर स्त्रियों से दूर रहा था। और अब सैंतालीस साल का था। उस पर उस स्त्री का जादू-सा छा गया। वह सब कुछ भूल गया। स्त्री की बातचीत उच्चकुल की स्त्रियों की सी थी, जिसने उस पर प्रभाव डाला। वह उससे आकर्षित होने लगा।

उसके बाद कुछ दिन और छिप कर मुलाकातें होती रहीं। उसका हृदय वासना से आंदोलित होने लगा।

उसने कहा कि यदि विशाला उसकी पत्नी होना स्वीकार कर ले तो फिर वह उसे बड़े आराम से रखेगा।

स्त्री ने उसे इतना काबू में कर लिया कि वह उसकी बात पर अपनी आज्ञा-सी चलाती थी। जैसे उस अधेड़ आदमी पर उसने वशीकरण कर लिया था।

'अच्छा माँ से क्या कहोगे?' उसने पूछा।

'यही कि तुम अच्छी हो...'

'छिः छिः यह तो कोई ढंग नहीं।'

'तो तुम बताओ।'

'तुम कह दोगे?'

'क्यों नहीं!'

'अच्छी बात है सुनो,' उसने कहा, 'अगर तुम उससे कहोगे कि मैं कौन हूँ, तुम्हें कैसे मिली हूँ तो क्या होगा जानते हो?'

'कुछ नहीं होगा।'

'तुम तो समझते ही नहीं।'

'वह नाराज होगी। तुम ठीक कहती हो।'

'नहीं, इतना ही नहीं। वह हमें रोकने का भी प्रयत्न करेगी और बाधा डालने में कुछ भी उठा नहीं रखेगी।'

'ऐसा क्यों सोचती हो?'

'क्योंकि स्त्री स्त्री को इस अवस्था में अच्छा नहीं मान सकती। राजुल !'

'क्या है विशाला !'

'तुम समझते हो संसार में सब लोग तुम्हारी ही तरह सीधे-सादे और अच्छे होते हैं ?'

यह राजुल की प्रशंसा थी और वह इसके बोझ से दब गया। उसने कहा, 'तो ऐसी कोई तरकीब सोचो कि माँ भी नाराज नहीं हो, और काम भी हो।'

'तुम ऐसा करो। कहना कि जिस स्वामी के यहाँ तुम थे, मैं वहीं के एक सेवक की बहिन हूँ। और कह देना कि वह मुझसे मिल ले। बाकी मैं सब सँभाल लूँगी। इससे पूर्व कि वह मेरे बारे में मेरी असलियत जान सके, मैं उसे समझा लूँगी और ऐसा कर दूँगी कि वह मुझे उतना ही प्यार करने लगे, जितना वह तुम्हें करती है।'

राजुल प्रसन्न हो गया। उसकी परेशानी दूर हो गई। जिज्ञासा शांत हो गई। लेकिन एक बात और थी। उसके आनंद में कहीं कोई कमी-सी थी, उसके भीतर कोई अभाव था, और वह विशाला की अनुपस्थिति में नहीं, उसकी उपस्थिति में उसके भीतर जाग उठता था। वह उसे समझता नहीं था। वह उसे बता नहीं सकता था। केवल एक रहस्यमय सी अनुभूति थी उसके भीतर। कैसी अजीब-सी थी वह ! वैसे वह बड़ी शीलवती थी, दया उसमें प्रगट ही थी। वह यह कभी प्रगट नहीं करती थी कि वह किसी कुलीन परिवार की है और राजुल नहीं है। वह उससे बहुत मीठे ढंग से मिलती थी। लेकिन इस सबके बावजूद वह उसके साथ बैठ कर कुछ आराम नहीं पाता था, परन्तु चाह उसकी बढ़ती जाती थी।

पहली बार जब वह उससे मिला था तब उसे यह धारणा हुई थी कि उसने कहीं उस स्त्री के मुख को देखा था। लेकिन कहाँ ? शायद नहीं देखा था ! वह कुछ भी तय नहीं कर पाया था। और इतने दिन

बाद भी उसे एक छाया सी वह लगती थी कि उसके लिये वह स्त्री अपरिचित नहीं है।

'माँ, मैं ब्याह करूँगा,' उसने कहा।

माँ प्रसन्न हुई। उसने उसका माथा सूँघा और कहा, 'जियो मेरे बेटे। फूलो, फलो, दूधो नहाओ। लेकिन तुमने कन्या ढूँढ़ ली है?'

'हाँ माँ?'

'कौन है?'

'मैं जहाँ नौकर था न?'

'हाँ, हाँ?'

'वहीं के एक सेवक की बहिन है।'

'कौन जात है?'

'शूद्रा है।'

'तब ठीक है रे, ठीक है। पर मैं पहले उसे देखूँगी।'

'जरूर माँ, मैं उसे चुपचाप ले आऊँगा।'

'क्यों उसका कोई नहीं है क्या?'

'माँ वह भाई उसका अब नहीं रहा, बिचारी अब अकेली है।'

'बेचारी!' माँ ने कहा, 'ले आ उसे, देख कोई दुख न हो उसे! समझा!'

माँ की यह बात उसे अत्यंत अच्छी लगी। उसने जाकर सारी सूचना विशाला को दी।

'कल चलना तुम,' उसने कहा।

'चलूँगी।'

'मैं सुबह आ कर ले जाऊँगा तुम्हें।'

'जरूर।'

'कपड़े तो ठीक हैं?'

'तुम्हारे दिये पैसों से इतने दिन आराम से रही ही हूँ।'

वह प्रसन्न-सा घर आ गया। लेकिन न जाने मन में एक अभाव था। वह क्या था? राजुल नहीं समझ सका।

दूसरे दिन माँ उठी, कहा, 'राजुल।'

'हाँ माँ।'

'अरे खाने को क्या बना दूँ!'

'क्यों?'

'होने वाली बहू आयेगी न?'

राजुल झेंप गया।

'अरे तो क्या वह बिना खाये चली जायेगी?' माँ ने स्नेह से कहा।

नहा-धो कर माँ ने अच्छे वस्त्र पहने। माथे में चंदन लगाया और राजुल से कहा, अब तू जा।'

'जाता हूँ।'

'रथ ले जा।'

'अच्छी बात है।'

'जल्दी आ जाना।'

'जरूर।'

वह रथ ले कर चल दिया। जब वह पहुँचा तो विशाला खड़ी मिली।

'तुम रथ ले आये?' उसने पूछा।

'हाँ, माँ ने कहा था।'

विशाला कुछ रुकी।

'क्यों क्या बात है?'

'कुछ नहीं,' विशाला ने कहा।

'तुम कुछ सोच रही हो?'

'नहीं, नहीं।'

'तो रुकी क्यों?'

'मैं और बात सोच रही थी।'

'वह क्या ?'

'तुम ने मेरा जीवन बदल दिया।'

'कैसे ?'

'मैं तो उस रात मरना चाहती थी।'

'छिः छिः उन बातों को भूल जाओ विशाला।'

'भूल तो जाऊँगी,' उसने कहा।

'आओ। रथ पर बैठ जाओ।'

विशाला रथ पर चढ़ गई।

'मैं कह चुका हूँ कि अपने पुराने दुखों को भूल जाओ विशाला।'

विशाला ने कहा, 'भूल जाऊँगी।'

फिर कहा, 'माँ से कहा था आज ?'

'क्या ?'

'कुछ मेरे बारे में ?'

'नहीं, माँ ने ही कहा था।'

'क्या कहा था ?'

'यही कि मैं तुमको जा कर आऊँ।'

विशाला कुछ नहीं बोली। राजुल ने देखा आज वह कहीं अधिक सुंदर दिखाई दे रही थी। और यह राजुल को एक अज्ञात रहस्यमय रूप से भय की छाया में डूबाने लगा था।

कैसी अजीब बात थी यह !

ठीक समय पर राजुल और विशाला घर के भीतर घुसे जहाँ माँ थी।

माँ दो पग आगे बढ़ी परन्तु सहसा ही उसने विशाला को देखा। और फिर ठिठक कर देखा। उसका मुख जो पहले आवेश और ममता से ललाई लिये हुए था वह हठात् ही सफेद पड़ गया। वह वहीं रुक गई, उसकी आँखों में से दया और कोमलता की स्निग्धता चली गई, वरन् उनमें आंतक की शून्यता दिखाई देने लगी। उसके उठे हुए हाथ गिर गये

और कुछ हट कर उसने अपने पुत्र को पकड़ लिया और जैसे उसके मुख से चीत्कार निकल गया।

'राजुल,' उसने उसकी बाँह को कस कर पकड़ते हुए बहुत धीरे से कहा, 'क्या तुम्हें इस स्त्री का मुँह देखकर किसी की याद आती है।'

राजुल को लगा वह बीमार थी। वह डर गया।

इससे पहले कि वह कुछ उत्तर दे सके, माँ ने उसे इतना भी समय नहीं दिया कि वह विशाला की ओर मुड़कर एक बार देख सके, और वह उस ओर गई जहाँ बक्स रखा था।

विशाला इस प्रकार के स्वागत से क्रुद्ध हो गई थी। उसे आश्चर्य भी हो रहा था।

माँ ने कहा, 'राजुल !'

'क्या है माँ !'

'इस बक्स को खोल।'

उसने कहा, 'क्यों ?'

'मैं कहती हूँ पहले इसे खोल।'

'इसका क्या मतलब है ?' विशाला ने कहा, 'यह कौन-सा ढंग है। जब मुझसे कोई मतलब ही नहीं तो तुम मुझे यहाँ लाये ही क्यों हो ? क्या तुम्हारी माँ मेरा अपमान करना चाहती है।'

'जल्दी कर राजुल !' माँ ने भय से पीछे हटते हुए कहा, 'इसमें एक लेख है उसे निकाल। जल्दी।'

राजुल ने वह कपड़ा निकाल कर दिया। वह क्षण भर उसे देखती रही, फिर उसने विशाला की ओर देखा, जो कि क्रोध से जाने वाली थी, फिर माँ ने तुरन्त उसका कन्धा पकड़ा और उसकी ओढ़नी सरका कर उसका हाथ देखा, और बाँह भी देखी। विशाला के मुख पर क्रोध और भय दिखाई देने लगे। उसने अपने को बुढ़िया के हाथ से छुड़ा लिया।

'पागल !' वह बड़बड़ाई। राजुल छिपा गया।

और वह कमरे से बाहर निकल गई। राजुल उसके पीछे जाने वाला

था कि माँ ने मुड़कर उसे रोक लिया। राजुल ने उसके मुख पर विचित्र आतंक देखा, ऐसा कि उसमें घोर व्यथा थी। वह वहीं रुक गया। आर्त हो गया।

माँ ने भयभीत स्वर से धीरे से दरवाजे की तरफ इशारा करके कहा, 'हल्की कंजी आँखें, बाँया पलक कुछ झुका हुआ, रेशमी, सुनहले चमकदार बाल, गोरी बाहें, छोटा सा हाथ, लाल नाखून! राजुल! स्वप्न वाली स्त्री? स्वप्नवाली स्त्री!'

राजुल की जिज्ञासा शांत हो गई। वह जो बराबर सोचा करता था कि उसने विशाला को कहीं देखा है, कहीं देखा, वह अब सुलझा। उसने उसे सात बरस पहले जन्मदिन देखा था सपने में, और सात बरस बाद अब देखा था वैद्य के यहाँ! वह घबराहट से उसे उसकी उपस्थिति में अभाव बनकर अनुभव होती थी, उसकी मुलझन यहाँ थी। वह स्वप्न वाली स्त्री से मिलती-जुलती थी।

'सावधान!' माँ ने कहा, 'सावधान! राजुल! उसे जाने दे मेरे बेटे! तू मेरे पास से न जा। अब भी चेत!'

जब माँ ने यह शब्द कहे राजुल को लगा कि खिड़की काली हो गई, उसकी रीढ़ में कंप हुआ और उसने देखा, वहाँ विशाला आई और पर्दे के नीचे से कौतूहल से देख रही थी।

वह तो चली गई थी?

फिर लौट आई!!

तो क्या वह गई नहीं?

राजुल ने कहा, 'लेकिन माँ!'

'क्यों?'

'एक बात कहूँ।'

'क्या?'

'मैंने उसे बचन दे दिया है।'

'कैसा बचन?'

'मैं उससे विवाह करूँगा।'

वह रो पड़ा! उसकी आँखों में धुंध छा गई लेकिन उसने देखा कि वह स्त्री वहाँ से हट गई थी। खिड़की पर उजाला छा गया था।

माँ का सिर झुक गया!

'माँ!' वह फुसफुसाया।

माँ नहीं बोली।

'माँ!' उसका स्वर करुणा से भरा था।

'हाँ पुत्र!' उसने सहसा कहा, 'यह तेरा निश्चय है?'

'माँ,' पुत्र गिड़गिड़ा उठा।

माँ बैठ गई।

'माँ तुम मूर्च्छित तो नहीं हो।'

'नहीं।'

'फिर तुम बोलती क्यों नहीं?'

'पुत्र! एक बात है।'

'क्या माँ!'

'यहाँ तू नहीं रहेगा।'

'फिर तो तू मुझसे क्रुद्ध नहीं होगी।'

'पुत्र,' माँ ने कहा, 'क्रुद्ध! तुझसे?'

उसने राजुल को छाती से लिपटा लिया। दोनों रो पड़े।

तभी खिड़की फिर छाया से ढँक गई। वही चेहरा—विशाला का स्वप्न वाला चेहरा फिर झाँक उठा और राजुल की आँखें उधर ही चिपक गईं। लेकिन माँ की आँखों में आँसू थे। वह नहीं देख सकी।

उसने कहा, 'राजुल?'

'हाँ माँ!'

'महादेव! तेरी रक्षा करें।'

राजुल ने सिर झुका लिया। खिड़की फिर उजाली हो गई थी क्योंकि वहाँ से विशाला हट गई थी।

इस घटना के तीन-चार सप्ताह के बाद दोनों का विवाह हो गया और पुरुष की वासना ने उसे कुछ भी उस समय सोचने नहीं दिया।

लेकिन अलग घर लेने पर भी माँ ने फिर कभी उसकी पत्नी को नहीं देखा, न वह कभी वहाँ गई। उसने उसके विषय में बात करने से भी इंकार कर दिया। राजुल ने बहुत कुछ कहा, किन्तु माँ ने एक नहीं सुनी।

विशाला के पहले जीवन के विषय में माँ से बात करने का प्रश्न ही नहीं उठा और सिवाय इसके कि वह सूरत में स्वप्न वाली स्त्री से मिलती थी, और कोई उनमें झगड़ा भी नहीं था।

विशाला को बहरहाल अपनी सास से ऐसे सम्बन्ध हो जाने का तनिक भी क्षोभ नहीं था। राजुल ने भी इसका विरोध नहीं किया जब विशाला ने कहा कि बुढ़ापे से माँ की बुद्धि मन्द हो गई है।

किन्तु विवाह के कुछ मास बाद ही राजुल की स्त्री के व्यवहार में परिवर्तन होने लगा। वह उससे घृणा से बातें करती। और उसने अपनी मुलाकात खतरनाक आदमियों से बढ़ा ली। वह रोकता, वह नहीं सुनती। उलटा जबाब देती और कुछ दिन बाद जब उसे ज्ञात हुआ कि उसका सम्बन्ध बदमाश शराबियों से था, तब तक उसे यह भी पता चला कि उसकी विशाला खुद बहुत शराब पीती है।

इस चीज ने तो उसके दिल को तोड़ दिया। माँ बीमार रहती थी, और राजुल उसकी जिम्मेदारी भी अपने ऊपर ही समझता था, क्योंकि माँ का स्वास्थ बिगड़ने का और कोई कारण ही नहीं हो सकता था। और पत्नी के इस पतित आचरण ने उसे जो मानसिक कष्ट दिया वह इस व्यथा में मिल गया और इस दुधारी मार ने राजुल के चेहरे पर स्थायी दुख का भाव प्रगट किया।

माँ बीमार तो थी, लेकिन सब से पहले उसी ने इस परिवर्तन को ताड़ा। उसने कहा, 'बेटा राजुल!'

'हाँ माँ!'

'एक बात तुझसे जानना चाहती थी।'

'पूछतीं क्यों नहीं माँ।'

'शायद तुझे अच्छी न लगे।'

'क्यों?'

'ले बटा, तेरे मुख पर यह उदासी क्यों है?'

राजुल का हृदय ममता की चोट से आहत हो गया। वह माँ के घुटनों पर सिर रख कर रोने लगा। वह चुप बैठी रही।

राजुल ने कहा, 'माँ इसे भी देख लिया?'

'बेटा, मैं तेरी साँस में साँस लेती रही हूँ,' माँ ने कहा, 'मुझसे अपनी वेदना कह डाल।'

'माँ! मैं कैसे कहूँ!'

'क्यों!'

'लज्जा से मेरा मुँह खुलता नहीं।'

'लेकिन मुझसे कैसी लज्जा रे तुझे?'

'माँ। तेरी बहू बदमाशों से मिलती है। मुझसे लड़ती है। आवारा शराबी उसके दोस्त हैं, और वह आप भी शराब पीती है।'

माँ ने सुना और स्तब्ध बैठी रही। राजुल ने कहा, 'तूने सुना माँ!'

'हाँ।'

'तू बोली नहीं।'

'नहीं बेटा, अब कुछ कह कर मैं तेरा दिल नहीं दुखाना चाहती।'

माँ उठी। उसने बाहर जाने के वस्त्र पहने और कहा, 'राजुल!'

'माँ!'

'मैं अब बहुत दिन तो नहीं जियूँगी न?'

राजुल कुछ नहीं कह सका। माँ ने कहा, 'मेरा सुख क्या है? तू! तू समझता है मुझे मृत्यु शैया पर चैन मिल सकेगा? नहीं। तू सुखी रहे, तभी मैं सुखी रह सकती हूँ। मैं चलती हूँ।'

'कहाँ?'

'तेरे साथ।'

'लेकिन कहाँ ?' वह चकित था।

'तेरे घर।'

'घर ??'

'हाँ।'

'क्यों माँ ?' जैसे वह समझा नहीं था।

'मैं, अपना भय दूर करना चाहती हूँ राजुल। मैं उससे बातें करूँगी। मुझे अपने साथ ले चल।'

राजुल ने हाथ बढ़ाया। माँ ने कहा, 'चल।'

दोनों घर पहुँचे।

दुपहर का वक्त था। खाने की तैयारी करती हुई विशाला उस समय रसोई में थी और वे दोनों कमरे में गये जहाँ उन्हें जाना था। आज विशाला ने ज्यादा शराब नहीं पी थी और इसलिये उतनी मौज भी उसमें नहीं थी। वह स्त्री को बुलाने गया। विशाला ने 'आई' कहा और काम में लगी हुई उठने की जल्दी करने लगी। फिर सास-बहू की अच्छी मुलाकात हुई, ऐसी कि राजुल को भी आश्चर्य हुआ। लेकिन उसने देखा कि माँ सब कुछ करते हुए भी अपने पर काबू कर रही थी। वह सीधी नजर मिलाकर विशाला से बातें नहीं कर रही थी।

खाने का प्रबन्ध हुआ। विशाला ने थाल रखे। और भीतर जाकर वह फल काटने लगी। और फिर उसने लाकर उन्हें भी रखा।

वह भीतर गई कि माँ के चेहरे पर फिर वही आतङ्क छाया जो पहली बार विशाला को देख कर उसके मुख पर छा गया था। उसने बड़बड़ा कर कहा, 'राजुल ! मुझे ले चल। मेरे घर छोड़ आ ! मेरे साथ आ और लौट कर कभी न आना।'

वह डर गया। उसने कारण नहीं पूछा। उसने उसे चुप रहने का इशारा किया और जल्दी से उसे बाहर ले गया। जब वे खाने के पास

से गुजरे तब रसोई के उस भाग की ओर इशारा करके माँ ने कहा, 'तूने देखा ? उसने वह छोटा सा फल किससे काटा था ?'

'नहीं माँ । क्या था वह ?'

'देख !'

उसने देखा । चाकू ! नयी सींग की मूष्ठ ! चमकदार । वही सपने वाली चाकू ! उसने उसे उठाने को हाथ फैलाया । तभी कुछ भीतर गिरा और माँ ने उसका हाथ खींच लिया और कहा, 'वही स्वप्न का चाकू है राजुल ! मुझे उसके आने के पहले ले चल ।'

चाकू का साम्य देखकर वह डर गया था । उसे अब कोई भी संदेह नहीं रहा, कि वह स्वप्न वाली स्त्री थी ।

उसने बड़ी हिम्मत करके माँ को बाहर पहुँचाया । और घर ले गया।

माँ ने बैठ कर कहा, 'राजुल ! तू जा रहा है ?'

'हाँ ।'

'मैं कहती हूँ न जा ।'

'मैं वह चाकू ले आऊँ माँ,' उसने दबे स्वर से कहा ।

'न जा मैं कहती हूँ ।'

'नहीं माँ ! उसे मैं जरूर जाऊँगा ।'

वह नहीं रुक सका । चल पड़ा ।

राजुल का खयाल था कि चाकू वाली बात विशाला को मालूम नहीं थी लेकिन वह जान गई थी । उसने अब तक खूब शराब पी ली थी और गुस्से से भरी बैठी थी । खाना उसने मोरी में फेक दिया था और थाल आँगन में पड़े थे, लेकिन—

चाकू नहीं था !!

उसने पूछा, 'विशाला ! चाकू कहाँ है ?'

'तुम क्यों चाहते हो ?'

'मुझे चाहिये ।'

'लेकिन क्यों ?'

'मैं बता नहीं सकता।'

'तो मैं नहीं दे सकती।'

'और गिड़गिड़ाओ। रोओ! नहीं दूँगी। समझे,' वह चिल्लाई, 'समझे! वह मेरी खरीद है मैंने पैसा बचा कर खरीदा है। वह मेरी है। कौन होते हो, जो मैं तुम्हें दे दूँ। नहीं दूँगी। कभी नहीं दूँगी।'

राजुल चुप हो गया। उसने बाद में छिप कर ढूँढ़ा पर चाकू नहीं मिला। रात आई और वह घर से बाहर निकल गया। उसे उसके साथ रहते हुए अब डर लगता था।

उजेला पाख बीत गया और अँधेरा पाख अँधेरा निकल गया। पर वह चाकू नहीं देती थी और वह उसके साथ रात को रहता नहीं था। उसे डर था कि वह उसे मार डालेगी। वह रात भर राहों पर घूमता या माँ के पास जा बैठता, वहीं पड़ा रहता।

उसी समय उसकी माँ मर गई। उसके जन्मदिन के कुछ ही दिन पहले उसका देहांत हो गया था!!

राजुल उस समय वहीं था! माँ के अंतिम शब्द थे, 'बेटा लौट कर न जाना! कभी मत जाना।'

लेकिन वह गया इसलिये कि वह उसकी हालत की जानकारी चाहता था।

क्षत्रिय का पुत्र होने के कारण उसने माँ का कार्म कुछ अच्छे ढंग से किया। उसकी पत्नी आ गई। उसने उसे बुलाया नहीं था। लेकिन वह शराब पीकर आई। राजुल का मजाक उड़ने लगा। और विशाला गाली बकने लगी। उसे क्रोध हो आया और वह आगे बढ़ा और चिल्लाया, 'चुप रहो!'

वह जब नहीं मानी तब राजुल ने उसे जोर से मारा।

मारने के साथ ही उसे लगा कि वह गलती कर गया है।

वह कमरे के कोने में झुक कर लोमड़ी की तरह बैठ गई और चुप हो कर उसने राजुल की तरफ घूर कर देखा। राजुल की साँस रुक गई,

ऐसी थी वह दृष्टि। उसका रक्त जैसे ठंडा हो गया। वह काँप उठा। उसे और तो कुछ सूझ नहीं सका। उसने झपट कर उसे पकड़ा और एक कमरे में बंद करके बाहर से ताला लगा दिया। कर्म इस तरह किसी भाँति समाप्त हुआ।

फिर वह चला गया।

जब वह लौटा उसने द्वार खोला। देखा?

वह शांत बैठी थी। गोद में एक कपड़े की गठरी सी थी! और वह एक अजीब तरह से बोली, 'किसी पुरुष ने मुझे दो बार नहीं मारा न मेरा पति ही मार सकेगा। द्वार खोल दो। मुझे जाने दो। आज से हम दोनों एक दूसरे को कभी नहीं देखेंगे।'

वह चली गई। उसने देखा वह सड़क पर निकल गई।

क्या वह लौटेगी!

पूरी रात जाग कर उसने प्रतिक्षा की। पर कोई पगध्वनि सुनाई नहीं दी। अगली रात वह जागते-जागते ही थक कर वैसे ही बिस्तर पर गिर गया। सुबह ही जगा। इसी तरह सात दिन बीत गये।

वह दरवाजा अच्छी तरह बंद करके आठवें दिन दीप जला कर ही लेट गया। अब उसका स्वास्थ्य अच्छा था। वह परेशान भी नहीं था। कमरे में कहीं से भी आने का किसी का रास्ता नहीं था। वह चैन से सो गया। परंतु आज दो बार उसकी नींद खुल गई। लेकिन कोई बात नहीं हुई। न कोई बेचैनी ही थी। लेकिन तीसरी बार उसे वही कंपन। वही पीड़ा हुई जो वर्षों पहले उसे सूम के घर हुई थी। उसने अचानक ही देखा। पलँग की बाँई तरफ.........

स्वप्न वाली स्त्री? फिर? नहीं! वह विशाला थी! जीवित चेहरा स्वप्न वाला, वही मुद्रा भी...उठी हुई गोरी बाँह...छोटे कोमल हाथ में दबी हुई चाकू की सींग की मूँठ..........

ज्यों ही उसने उसे देखा वह उस पर टूट कर कूद पड़ा और इससे पहले कि वह चाकू छिपा सके, उसने उसे देख लिया। न वह चिल्लायी,

न वह गरजा, उसने उसे पकड़ कर पास पड़ी चौकी पर कसकर बाँध दिया और फिर उसकी अस्तीन में से वह चाकू निकाल लिया।

उसे डर भी था, दहशत भी। द्वार बंद था। पहले उसने उसे खोला और उसे घूरता रहा। फिर चाकू उठा कर उसने कहा, 'तुमने कहा था कि हम दोनों अब एक दूसरे को कभी नहीं देखेंगे। लेकिन तुम लौट आई। अब की बार मेरी बारी है और मैं सदा के लिये जाता हूँ। मैं कहता हूँ कि हम एक दूसरे से कभी नहीं मिलेंगे। और मेरा वचन अटल रहेगा।'

वह उसे छोड़ कर रात में ही निकल गया। बाहर पानी पड़ चुका था। हवा तेज थी। रात का अँधेरा था।

उसे एक रात्रि-प्रहरी मिला।

'क्या समय है?' राजुल ने पूछा।

'दूसरा प्रहर बीत चुका! तीसरा लग गया है।'

तब उसने हिसाब लगाया! बुध ही तो है अब!

और!!

अचानक ही उसको बिजली की कौंध की तरह विचार आया! आज उसका जन्मदिन था!! क्या इसी दिन की छाया उसने वर्षों पहले देख ली थी!! पर यह केवल दूसरी चेतावनी थी!!

क्या अभी और भय की गुंजायश है?

इस विचार ने उसमें संदेह जगा दिया। वह रुका और सोचने लगा और तब फिर नगर की ओर लौट चला।

उसने निश्चय किया कि वह उससे नहीं मिलेगा, नहीं देखेगा उसे। पर अब वह उस पर नजर रखना जरूरी समझता था।

चाकू तो उसके पास था, लेकिन अब भी उसमें एक अजीब अविश्वास था!

'मुझे यह मालूम होना चाहिये कि वह कहाँ जाती है, क्योंकि अब

वह समझ गई है कि मैंने उसे छोड़ दिया है,' उसने अपने आप से कहा और अपने घर के पास आकर छिप रहा।

अभी अँधेरा ही था। जब वह गया था वह कमरे में दीप जला कर गया था, पर अब वातायन में अंधकार था। वह घर के द्वार तक गया। उसे यह देख कर आश्चर्य हुआ कि वह खुला था!

यह कैसे हुआ?

वह तो उसे बाहर से बन्द कर गया था!

सुबह तक वह छिप कर घर देखता रहा। जब कोई आवाज नहीं सुनी तो भीतर गया। सब जगह देखा। ऊपर गया। देखा। वातायन के पास रस्सी फँसी थी।

तो वह इधर से चढ़ कर भीतर आई थी!

जरूर इधर ही से चली गई होगी।

लेकिन कहाँ? कौन जानता था। कोई नहीं बता सका।

राजुल ने सदा के लिये नगर छोड़ने का निश्चय किया और अपने एक पड़ोसी मित्र से कह दिया कि वह सारे घरबार को बेचकर कोट्टपाल के यहाँ रकम जमा करा दे ताकि उसको विशाला के राज की खोज कर सके। सब कुछ हुआ परन्तु विशाला का पता कहीं भी नहीं लग सका।

मद्यविक्रेता रुक गया और उसने कहा, 'इतनी तो पुरानी बात हुई। फिर वह मेरे पास आया। मैंने उसे रथ पर रख लिया। वह भला आदमी है। कैसा बुड्ढा सा हो गया है। रात को तो सोता ही नहीं। मुझे भी आसानी पड़ती है, क्योंकि यहाँ शराबी बड़ी देर तक आते हैं! बारी-बारी से अन्य सेवक जाग कर उसके साथ काम करते हैं। वह दिन में सोता है। पर एक बात है। भला इतना है कि कभी काम पड़ जाये तो उठने में विरोध नहीं करता। बिचारा!'

मैंने कहा, 'तो क्या वह डरता है कि वह स्त्री अब फिर लौट आयेगी?'

'नहीं श्रीमंत,' मद्यविक्रेता ने कहा, 'वह सपना उसे बार-बार आता है कि वह अक्सर बताता है।'

'पर विशाला का कहीं पता चला ?'

'कभी नहीं। पर राजुल का खयाल है कि वह जीवित है और उसे ढूँढ रही है। दूसरे और तीसरे पहर में तो रात को वह कभी सोता ही नहीं। वह वैसे तो अकेला रहने में नहीं डरता, लेकिन जन्मदिन को तो वह कभी अकेला नहीं रहता। सब हँसते हैं, पर वह चिन्ता नहीं करता।'

मद्यविक्रेता ने उठ कर कहा, 'अरे दम्मक आ गया !'

'दम्मक आ गया था। मैंने उसे अच्छी तरह दाम चुकाये और रथ में बैठ कर नगर आ गया।'

सुषेण चुप हो गया।

सागरक ने कहा, 'आपकी पहली कहानी तो भूत की थी, किन्तु दूसरी में तो ऐसी कोई बात नहीं थी।'

'तो वत्स उसमें क्या था ?'

'उसे भय हो गया था।'

'पहले से कैसे देख लिया उसने ?'

'यह तो समस्या है ही।'

'तो फिर क्या इसे दैवी शक्ति नहीं कहोगे ?'

'लेकिन यदि उस स्त्री में आत्मा की जगह प्रेत था, तो उसने अपनी छाया पहले ही क्यों दिखा दी ?'

'नहीं बात यह थी कि उसने पहले ही मारना चाहा, मार न सकी, तब उसने पीछा किया और अब भी कर रही है।'

'अब तो वह मर भी गया होगा !' सागरक ने हँसकर कहा जैसे सारी बात उसने मजाक में उड़ा दी।

आर्किमिडीस को सागरक का यह रवैया अच्छा नहीं लगा। न चक्रधर ही प्रसन्न हुआ। सुहासिनी तो स्त्री थी और अधिक विश्वास करती थी। उसने कहा, 'वत्स ! तुम अभी क्या संसार को इतना समझते हो, जितना यह लोग देख चुके हैं ?'

'नहीं आर्ये !'

'फिर मानते क्यों नहीं ?'

'मानने से मैं इन्कार क्या करता हूँ ।'

'तुम संदेह करते हो न वत्स ?'

'करता हूँ,' सागरक ने कहा, 'क्योंकि तथागत ने यही कहा है कि जो समझ में न आये, उस पर तर्क करो ।'

'पर बुद्ध भगवान तो पिशाचों को मानते थे,' चक्रधर ने कहा, 'वे तो पिशाचों को उपदेश भी देते थे ।'

सागरक इसका उत्तर न दे सका । वह सबकी ओर देखने लगा ।

बाहर हवा पानी का तांडव बदस्तूर था ।

'क्या इरादे हैं आज ?' आर्किमिडीज ने कहा ।

'रुकने का नाम ही नहीं लेता,' सुषेण ने उत्तर दिया ।

'अरे तो चिन्ता क्यों करते हो ?' चक्रधर ने कहा, 'यह क्या तुम्हारा घर नहीं है । बाहर जंगल होता तो फिक्र करने की भी जरूरत थी ।'

'हाँ,' सुहासिनी ने हँसकर कहा, 'घर में बैठकर भी इतनी परेशानी !'

वे सब हँस दिये ।

६

सागरक उठ खड़ा हुआ ।

'तुम कहाँ जा रहे हो ?' चक्रधर ने पूछा ।

'वहीं ।'

'पागल न बनो सागरक,' आर्किमिडीस ने कहा, 'इन जगहों में आदमी की कुछ नहीं चलती ।'

'मैं यही देखना तो चाहता हूँ,' सागरक ने कहा।

चक्रधर घबरा गया था। उसने कहा, 'सुषेण ! इसे समझाओ !' किंतु कोई नहीं रोक सका।

चक्रधर ने कहा, 'मैंने तुम्हें बताया कि मेरे पितृव्य, उनका पुत्र, सब वहीं मर गये। हब्शी नौकर का पता नहीं चला। कहा जाता है कि पितृव्य एक बार बाहर चले गये तो उनकी लड़की बिस्तर पर मरी पड़ी मिली। कारण कोई समझ में नहीं आया। पितृव्य जब लौट कर आये तो वे सदमा न सह सके और पागल से हो कर चल बसे।'

'अगर ऐसा है तो,' सागरक ने कहा, 'पितृव्य और उनकी पुत्री मुझे क्यों कष्ट देंगे। आप से तो उनके संबंध अच्छे थे न ?'

'तुम मजाक कर रहे हो सागरक। पितृव्य की पुत्री की मृत्यु के संबंध में बहुत-सी बातें हैं जो और भी कही जाती हैं। कहा जाता है कि वह हब्शी से बहुत चिढ़ती थी। उससे डरती थी। उसने पितृव्य से कहा भी था कि वह उसे निकाल दें लेकिन पितृव्य परवाह नहीं करते थे। अंत में हब्शी को उन्होंने बुरी तरह निकाला था। हब्शी ने कसम खाई कि वह इसका बदला अवश्य लेगा। और तुरंत ही चला गया। फिर उसका पता ही नहीं चला।'

सागरक हँसा। उसने कहा, 'वहाँ रोशनी-सी कब दिखाई देती है ?'

'बरसात में अक्सर कर। बाद में भी वहाँ लोग मरे पाये गये हैं। एक साधू उनकी पुरानी चीजों में कोई पुरानी पुस्तक लेने गया था, वह मर गया। फिर उनका पुत्र आया, वह भी नहीं बचा।'

सागरक ने कहा, 'पानी रुक गया है। सुबह फिर मिलेंगे।'

'क्या करोगे जा कर ?'

'सोऊँगा,' कह कर सागरक चला गया। चक्रधर व्याकुल हो उठा। उसने कहा, 'भगवान ! रक्षा करो। सागरक बालक है। मेरी ही भूल थी कि उसके सामने मैं यह सब कह गया। देखो, देखो। वह रोशनी !'

सब ने देखा। रोशनी चमकती थी बुझ जाती थी। सुहासिनी का मुँह भय से पीला पड़ गया।

'वह चमक दो घंटे में बुझ जायेगी,' चक्रधर ने कहा।

रात बड़ी लम्बी लगने लगी। कोई नहीं सो सका।

उषा की पहली किरन बादलों को फाड़ कर फूट निकली। आर्किमिडीस ने कहा, 'चलो हम लोग चल कर देखें।'

'वह अभी लौटा नहीं,' सुषेण ने कहा।

सुहासिनी वहीं रह गई। बाकी तीनों उठ खड़े हुए।

वे लोग नीचे उतरे। तभी बादल फिर इकट्ठे हो गये। पानी फिर बरसने लगा और घनघोर वर्षा होने लगी, खड़ी बूँदे गिरने लगीं। जब वे पेड़ों के नीचे हो गये तब उन्हें चारों ओर फेन ही फेन दिखाई दिया।

अंत में वे उस भाग के पास पहुँचे। वह भवन दीर्घ था। काला पड़ गया था। एक ओर मुड़ कर चक्रधर ने पुकारा, 'सागरक। तुम कहाँ हो?'

आवाज गूँज कर लौट आई। कोई उत्तर नहीं आया। तब वे भीतर गये और गीलेपन की बदबू उनकी नाक में घुसी। चारों ओर वही खालीपन था। वहाँ भवन में कुछ था नहीं। नीरवता मन का भार बन गई। चक्रधर फिर चिल्लाया किंतु पुकार कर्कशता से गूँजी और सन्नाटे पर झनझनाती रही। तब वे लोग और भीतर घुसे।

द्वार के सामने ही उन्हें बुरी बू सुँघाई दी और वहीं उन्होंने सागरक को मूर्छित पड़ा पाया। उसका शरीर अकड़ा हुआ था जैसे वह बड़े भारी दुख में था, उसका सफेद मुँह काले आनूबसी फर्श पर चमक रहा था। उन्होंने झुक कर उसे देखा। सुषेण ने वह विशाल कोष्ठ देखा जिसमें पर्तों धूल पड़ी थी। उस समय अधिक समय नहीं था। बदबू उन्हें घेर रही थी। वे शीघ्रता से सागरक को उठा लाये।

'इसे तुरन्त ले चलना चाहिये,' आर्किमिडीस ने कहा।

वे उसे ले आये। कुछ ही देर बाद वह होश में आ गया परन्तु पूरे पन्द्रह दिन में वह बिल्कुल ठीक हो गया। विदिशा में बात फैल गई।

उससे पूछे जाने पर उसने कहा, 'वहाँ पहुँचने पर मैं जितनी धीरे हो सकता था, उतनी धीरे ही उस मकान में घुसा और जा कर उसी प्रकोष्ठ में चकमक पत्थर से आग पैदा करके मार्ग ढूँढता हुआ रुक गया। वहाँ जो पलङ्ग था उस पर मैं लेट गया। मुझे लगा मेरे मुँह में कुछ बहुत ही बुरे स्वाद की चीज घुस गई और मेरा खयाल ऐसा है कि वह धूल थी जो मेरे पाँवों से ही उठी थी।

पहले मैं तक्षशिला की बातें सोचता रहा। बाद में मैं सोचने लगा कि अब की बार में रोमक साम्राज्य क्यों न देख आऊँ?

विशाल भवन में घोर सन्नाटा था। ऐसा कि बेचैन कर देने वाला। कुछ देर बाद मुझे लगा वहाँ कोई और था। मैं बैठ गया और मैंने धीरे से पूछा पर कोई न बोला। मुझे आशा थी कोई उत्तर देगा। जब ऐसा नहीं हुआ तो मैं बोला जोर से चिल्लाया, 'कौन है?'

पर फिर भी जवाब नहीं आया।

सन्नाटा मन को घुटन में डुबाने लगा।

मैं चाहता था कोई सामने आये तो लड़ूँ, मगर वहाँ कोई था नहीं मगर सन्नाटा इतना वीभत्स था, इतना डरावना था कि जरा सी भी आवाज सुन देती।

और तब मैं, अविश्वास का पुतला, जो कि डर के कारण को ही स्वीकार नहीं करता था, एक अजीब भाव से काँपने लगा। वह भय ही था। जब मुझे इसकी अनुभूति हुई मुझे क्रोध आने लगा।

तभी मुझे लगा कि अंधकार कम हो रहा है। ऊपर से हल्का सा उजाला छन छन, कर आने लगा। मैंने छत की ओर देखा। ऊपर कुछ उजेला था, एक जगह, जो बढ़ने लगा और मैंने देखा वह चमक में बढ़ता चला गया। कब तक मैं उसे देखता रहा वह पता नहीं। ऐसा लगा जैसे वर्षों बीत गये। तब मैंने

निश्चित किया। बड़ी मुश्किल से अपनी आँखें उस प्रकाश से हटा सका। उठा और घूमने लगा। प्रकोष्ठ में घूमते हुए मुझे लगा कि मेरे पाँव बहुत भारी हो गये थे। वह चमक कुछ-कुछ हरी थी और चाँदनी जैसी ज्योति उससे निकलती थी। लेकिन जरा सी भी हलचल से धूल कमरे में उठने लगती थी और चाँदनी को ढँकने की चेष्टा करती थी। नहीं कुछ देर मैं घूमता रहा। मुझ पर कुछ भार-सा छाता जा रहा था, जो मुझमें एक भयानक बेचैनी सी भर रहा था। बुरी बदबू मुझे व्याकुल किये दे रही थी।

तब मैं पलँग पर लेट गया।

कुछ क्षण मैं ऊपर देखने से घबराता रहा। मुझे लगा जैसे कोई मुझे उस उजाले के पीछे से ऐसे देख रहा था, जैसे वह उजाला सिर्फ एक खिड़की थी। दीवारों पर भय था, सब तरह से, सब तरफ भय ही भय था और मेरा मन घबड़ा रहा था। फिर मुझे तन्द्रा सी आने लगी और फिर मेरी आँख छत की रोशनी पर ही अटक गई।

अब उजाला धुँधला होने लगा था। कहीं-कहीं काले-काले धब्बे उस पर दिखाई देने लगे थे। और तब उस जगह एक मोटा-सा, काला सा चेहरा, विकृत चेहरा दिखाई देने लगा। फिर मुझे लगा कि वह चेहरा मेरी ओर नीचे उतरता आ रहा है और रोशनी पिघल कर काली, लसलसी सी चीज बन कर बड़ी-बड़ी बूँदों के रूप में टपकने लगी है।

मुझे लगा मैं अपने आप को बचा नहीं सकूँगा, मैं हिल भी नहीं सकूँगा। अब मुझे तर्क की शक्ति नहीं थी। भय था, भयानक भय और उस भय ने, उस घृणा ने मुझे शक्ति दी। मैंने देखा मेरे हाथों में पागलपन छा गया था। एक हाथ उस विकृत चेहरे में घुस गया और मुझे लगा हाथ ने वह चेहरा फाड़ दिया है। तब मैं किसी तरह पलँग से कूद पड़ा और द्वार की ओर भागा और फिर मुझे होश नहीं रहा।'

सागरक के पिता ने सुना तो स्तब्ध रह गये। सब ही चौकन्ने थे। सागरक ठीक होते ही बोला, 'मैं एक प्रार्थना करता हूँ।'

'क्या ?' चक्रधर ने कहा ।

'हम सब चल कर दिन में देखें तो सही ।'

बात सागरक के पिता को जँच गई। बीस आदमी, बीस सैनिक साथ ले लिये गये और सागरक, अपने पिता, चक्रधर, सुषेण और आर्किमिडीस के साथ वहाँ पहुँचा ।

धूप निकल रही थी। उजाला था ।

सागरक ने कहा, 'उफ़ !'

सब चौंक उठे ।

सागरक ने कहा, 'अब समझा ।'

'क्या समझे ?' सुषेण ने पूछा ।

'वह तो काई है,' उसने ऊपर सिर उठा कर कहा ।

सब ने देखा काई थी ।

'अरे यह मिस्र के दक्षिण के बनों की काई है जो चमकदार पौधों के कारण हो जाती है। यह अपने पास की धूल को जहरीला बना देती है और अपने आप अपने भीतर की औषधि गुण-मात्रा के कारण चमकती है। यह तो मैंने तक्षशिला में देखी है। इसमें से हरी चमक निकलती है। बरसात में ज्यादा दिखती है, इसमें जो एक विशेषता है कि यह बहुत धूल बनाती है और तभी यहाँ धूल भी बहुत अधिक है। इसमें से जो हवा पैदा होती है वह विषैली होती है जिससे बुरी बदबू निकलती है जो दम घोटती है। इसकी काई की बूँद यदि किसी पर गिर जाये तो उसका रक्त विषमय हो जाता है।'

सागरक की बात ने सारी बात को सुलझा दिया। सुषेण ने उसकी पीठ ठोंकी। आर्किमिडीस ने कहा, 'साधु ! साधु !!'

सागरक ने कहा, 'लेकिन यह यहाँ आई कैसे ? आई कैसे ?' उसने मुड़ कर सहसा कहा, 'पितृव्य तो अपने साथ एक हब्शी रखते थे न ?'

'हाँ,' चक्रधर ने कहा ।

'तब वही लाया होगा इसे ।'

बात साफ हो गई। सागरक ने कहा, 'ऊपर चल कर इस छत को और देखना चाहिये।'

'नहीं,' चक्रधर ने कहा, 'वह व्यर्थ है।'

'क्यों?'

'इसकी छत पर एक प्रकोष्ठ है जो विभाजित है। और वह दोनों आड़े ढंग से बँटे हुए हैं जैसे टाँड़ होता है।'

'चलो उसे ही देखें।'

सागरक विजयी था। उसे कोई न रोक सका। सबको जाना पड़ा। सहसा चक्रधर ने सागरक को पकड़ कर रोक लिया।

'क्यों!'

'देखो! आलोक! देखा तुमने!'

एक हल्की रोशनी क्षण भर दिखाई दी और गायब हो। गई इतनी जल्दी कि उसकी सत्ता पर भी विश्वास होना कठिन था।

सागरक ने कहा, 'श्रीमंत चक्रधर! आप बता सकते हैं उस दिन वह चमकदार आदमी आपने कहाँ देखा था?'

चक्रधर ने अँधेरे कोने की ओर दिखा कर कहा, 'वहाँ।'

सबने वहीं जाकर देखा। वहाँ अँधेरा था। चक्रधर ने सिर डाल कर देखा और वह भय से पीछे हट गया।

'चमकदार आदमी! वह रहा,' चक्रधर के मुँह से सहसा ही निकल गया। सब आतंकित हो गये! किन्तु सागरक ने साहस करके देखा और उसने देखा कि हाथ भर की दूरी पर अँधेरे में वह खड़ा था। लम्बा आदमी। इनकी ओर उसकी पीठ थी, वह दीवार से टिका हुआ था और सिर से पाँव तक सफेद चमकदार सी चीज उस पर चढ़ी हुई थी।

वे सब आश्चर्य से देखते रहे।

वह भूत चुप खड़ा था।

सागरक ने एक तलवार ली और उसका सिर छुआ।

उसके सिर से तलवार के लगते ही सिर गिर पड़ा, जैसे कोई काई कट गई हो और उसके नीचे हब्शियों के से बाल दिखाई दिये।

'यह क्या है', सागरक ने पूछा, 'आर्य सुषेण! देखिये। यही है वह हब्शी। पर काई उस पर भी जम गई है। अपने ही प्रयोगों में वह मारा गया है। जरूर वह जड़ी-बूटियों का रहस्य जानता था।'

शीघ्र ही भवन साफ कर दिया गया। अब सुषेण और आर्किमिडीस ने ऐसी-ऐसी दवाइयाँ दी कि सब काई साफ करवा के भवन को पवित्र कर दिया गया।

उसी भवन में एक बड़ा जलसा हुआ, जिसमें विदिशा के समस्त गणमान्य आमन्त्रित किये गये और सागरक का बड़ा भारी सम्मान किया गया। सागरक का नाम फैल गया।

लेकिन उसी समय पद्मा दौड़ी-दौड़ी आई और उसने चक्रधर से कान में कुछ कहा। सुनते ही उसका रंग उड़ गया।

सागरक ने तुरन्त पूछा।

चक्रधर ने उत्तर नहीं दिया। वह चल पड़ा। पद्मा उसके साथ चली। सागरक और अतिथिगण पहले तो स्तब्ध खड़े रहे, फिर सुषेण और आर्किमिडीस के साथ वे भी मुख्य भवन में पहुँचे।

सुहासिनी सिंधुजा को गोद में लिये बैठी थी।

'क्या हुआ?' देखने के बाद जब सब बाहर आये तब सागरक ने पूछा।

चक्रधर ने कहा, 'सिंधुजा डर गई है।'

'क्यों?'

'वह कहती है वह लेट रही थी। वहाँ कोई नहीं था। उसने एक सुन्दर स्त्री को देखा। वह स्त्री आई और उसके बिस्तर पर झुक गई। सिंधुजा उसकी ओर मुस्करा कर देखती रही। उसने इसे प्यार किया और उसकी बगल में लेट कर उसे स्नेह से चिपटा कर मुस्कराने लगी। सिंधुजा सो गयी। अचानक उसे लगा कि उसके गले के नीचे दो लम्बी

सुइयाँ सी चुभीं। वह जोर से चिल्ला पड़ी। स्त्री उठ खड़ी हुई और उसे देखती रही और फिर फर्श पर फिसल गई और बिस्तर के नीचे छिप गई।'

'बस?' सागरक ने कहा।

'हाँ।'

'अरे यह तो वहम था,' उसने कहा और सबने सिर हिला कर स्वीकार किया। सुषेण ने देखा कि आर्किमिडीस कुछ बड़े ध्यान से सोच रहा था, जैसे वह बड़े गहरे सोच में पड़ गया था।

लोग उत्सव के लिये लौट गये।

आर्किमिडीस ने सुषेण को इशारे से रोक लिया और अकेला होने पर सिंधुजा के पास जा बैठे।

'रानी बिटिया!' आर्किमिडीस ने पूछा, 'तुम्हें सुई चुभी थी?'

'हाँ पितृव्य!' सिंधुजा ने कहा।

'फिर।'

'फिर मैं डर गई।'

'डर क्यों गई रानी। अच्छे बच्चे कभी डरते हैं?'

'पर पितृव्य मेरे दर्द हुआ था।'

'कहाँ।'

'गले के नीचे।'

'देखूँ! कहाँ? यहाँ।'

'हाँ।'

आर्किमिडीस ने देखा। वहाँ कुछ लाल से निशान अवश्य थे। बहुत ही हल्के। बहुत ही हल्के। उसने सुषेण को इंगित किया जिसने देखा, पर कुछ समझा नहीं। कहा, 'कुछ नहीं है।'

आर्किमिडीस चुप हो रहा।

'मुझे डर लगता है,' सिंधुजा ने कहा।

'क्यों?'

'मैं अकेली नहीं रहूँगी।'

'अच्छा मत रहना बेटी। पर डरने की क्या जरूरत है?' आर्किमिडीस ने मुड़ कर कहा, 'सुहासनी देवी! आप सदैव इसके पास रहा करें।'

सुहासिनी समझी नहीं। उसने कहा, 'जरूर! मैं रहूँगी तो बिटिया ऐसे सपने नहीं देखेगी।

'नहीं, बूआ! वह सपना नहीं था। सचमुच की स्त्री थी।'

सुषेण हँस दिया। आर्किमिडीस चुपचाप सोचने लगा था। आर्किमिडीस ने उसका शयन भवन देखा और लौटते समय सुषेण को ले गया। उसने बाहर जाकर चक्रधर से कहा, 'मुझे लगता है कोई आत्मा अवश्य आई है।'

'आत्मा!' सागरक ने कहा, 'अभी वहम बाकी है? हर बात की असलियत निकल सकती है।'

आर्किमिडीस नहीं माना। चक्रधर ने पंडित भेज कर समस्त स्थान का प्रोक्षण करवा के उसे पवित्र करवा दिया।

उत्सव समाप्त हो गया। सब चले गये।

सुषेण ने कहा, 'आर्किमिडीस बात क्या है?'

'मैं स्वयं ठीक से नहीं कह सकता। परन्तु मैंने सुना है कि इस बात का भी आत्मा से सम्बन्ध है।'

चक्रधर ने कहा, 'फिर?'

'एक काम करो मित्र!' आर्किमिडीस ने कहा, 'किसी सयाने को बुला कर स्थान को निरापद करा दो।'

चक्रधर ने दूसरे ही दिन ऐसा किया। जब सागरक को ज्ञात हुआ, खूब हँसा।

अब चक्रधर के सब भवन रहने योग्य हो गये। उसके यहाँ कई सेवक आ गये जो कि उसने बढ़ा लिये। अब समस्त भवन में चहल-पहल रहने लगी। और कुछ ही दिन बाद वह फिर अपनी पुत्री, और

सुहासिनी तथा पद्मा को लेकर, अपने मित्रों से बिदा लेकर यात्रा पर चल दिया और इस बार उसने व्यापार भी किया और अपार धन कमाया। वह अपनी पुत्री को स्नेह से पालता रहा और उसे पढ़ा-लिखा कर तैयार करता रहा। उसके मन में बड़ी साध थी कि पुत्र के अभाव में वह अपनी एकमात्र पुत्री को ही इस योग्य बना दे, जो कि उसका यश फैला सके और सिंधुजा भी उसकी आशा के अनुकूल ही बड़ी होने लगी।

जिस समय वह प्रयाग में था उसे एक दिन सुषेण का पत्र मिला, जिसे पढ़ कर यह स्तब्ध रह गया। पढ़ कर उसने उसे सुहासिनी को दे दिया। सुहासिनी ने बाद में एकांत में उसे पढ़ कर पद्मा को सुनाया जिसका आशय इस प्रकार था; सागरक अपने अभिमान में फूल गया। उसने समझा कि सब कुछ को वह समझ लेगा! और इसका बड़ा भयानक परिणाम हुआ। सागरक मर गया। उसे भूतों ने मार डाला। सुषेण और आर्डिमिडीस ने बहुत समझाया भी मगर उसने किसी की भी बात पर ध्यान नहीं दिया।

'बड़ी बुरी बात हुई,' पद्मा ने कहा।

'भला बताओ,' सुहासिनी ने कहा, 'एक बार उसकी आंधी बैठ गई तो सब जगह उसे काई ही दिखाई देने लगी।'

'पत्र कौन लाया था?'

'एक सार्थ आया है। उसके साथ एक वणिक है। वह विदिशा का है।'

सायंकाल जब तीनों अर्थात् सुहासिनी, पद्मा और चक्रधर बैठे तब किसी ने भी इस चर्चा को नहीं चलाया।

और इसी भाँति अनेक वर्ष बीत गये जब कहीं उसे लौटने की सूझी। किन्तु इस बार उसने बहुत थोड़े से सेवक साथ लिये और एक दिन वह विदिशा की सीमा को देख कर प्रसन्न हो उठा।

दूसरा भाग

७

मैं सिंधुजा हूँ। इस समय मैं उन्नीस वर्ष की हूँ। बचपन की तो याद नहीं पर मेरी कथा तब से प्रारंभ होती है जब मैं अपने पिता, बूआ सुहासिनी और बूआ पद्मा के साथ विदिशा लौट कर आई और पितृव्य सुषेण और पितृव्य आर्किमिडीस से मिली।

गर्मी के दिन थे। और संध्या का समय था। पिता ने मुझसे कहा,

'सिंधुजे!'

'हाँ पिता।'

'क्या कर रही है?'

'कुछ नहीं।'

'आ चलकर सांध्य बन की शोभा देखें।'

मैं प्रसन्न हुई। हम लोग किले के सामने के भाग में आ गये। यहाँ एक पुल सा था। हम उससे कुछ दूर रुक कर वन को देखने लगे। सूरज डूब चुका था। पक्षी पेड़ों की ओर लौट-लौटकर आ रहे थे।

पिता ने टहलते हुए कहा, 'महा सेनापति मंदहास साँची से इतनी शीघ्र नहीं आ सकेंगे, जितनी कि हमें आशा थी।'

वे आने वाले थे और हम समझते थे कि वे शीघ्र ही आ पहुँचेंगे। उनके साथ उनकी पुत्री भी आने वाली थी जिसका नाम गंधमादिनी था। मैंने उसे कभी देखा तो नहीं था, लेकिन उसका जो वर्णन सुना था उसके अनुसार वह बड़ी ही अच्छी और सुंदर नारी थी। मुझे विदिशा उजाड़ सी लगती थी, नगर से हम लोग दूर थे और अब वह मेरी होने

वाली साथिन भी नहीं आ रही थी। मैंने बहुत दिन से आशा बाँध रखी थी कि वह आयेगी तो बड़ा अच्छा समय व्यतीत होगा।

'अब वे कब आयेंगे ?' मैंने पूछा।

'अगले वसंत तक नहीं। कम से कम इतना तो मेरा अंदाज है।' उन्होंने कहा, 'अच्छा ही हुआ तुम गंधमादिनी से मिल ही न सकीं !'

मुझे जिज्ञासा भी हुई और भय भी। मैंने कहा, 'क्यों ?'

'क्यों, वह मर चुकी है।'

'मर गई ?'

'हाँ।'

'आपको कब सूचना आई ?'

'मेरे पास पत्रग्राहक पत्र लाया है तब तुम भीतर थीं और मैं फिर बता न सका।'

'महासेनापति मंदहास इसी कारण से न आ सकेंगे ?'

'हाँ।'

'तभी ! वे कितना लिखते थे कि वे शीघ्र आयेंगे ! शीघ्र आएँगे।'

'तुम पत्र पढ लो बेटी।'

पिता ने पत्र दिया। मैंने पढ़ा। दुख भरा पत्र था। मुझे भी दुख हुआ। पिता ने कहा, 'बड़ी वेदना से लिखा हुआ पत्र है।'

हम वहीं एक पत्थर पर बैठ गए जहाँ सुंदर वृक्ष खड़े थे। सूर्य की चमक अब भी आकाश में बाकी थी। सामने का नाला आजकल सूखा हुआ था। बरसात आते ही वह बहने लगता था।

मैंने पत्र पढ़ा। वह कुछ असाधारण सा लगा। कहीं उसमें वेदना थी, कहीं क्रोध था, और कहीं आपही विरोधाभास सा प्रगट होता था। मैं तो सिवाय इसके कि दुख का असर है, और कुछ नहीं समझ सकी।

पत्र में था, मेरी प्रिय पुत्री चली गई है, मैं उसे कितना चाहता था, यह तो तुम खूब समझते हो। उसके लिये ही असल में मैं इतना धन अर्जित करता था। वह एक योग्य व्यक्ति की पुत्री कहलाये इसीलिये

मैंने इतना भार भी उठा रखा था। गंधमादिनी बीमार पड़ी। मैं इतना व्यस्त था कि तुमको इसकी सूचना भी न दे सका। लेकिन मुझे इतना भय भी नहीं था। खतरा ही नहीं था। मैंने उसे खो दिया है। अब सब जान पाया हूँ। लेकिन अब क्या है! अब पछताये होत का, जब चिड़िया चुग गई खेत। लेकिन वह अबोध थी, और सरलता में ही उसके प्राण चले गये और सदैव अपने उज्जवल भविष्य की पवित्र कल्पना करती रही। जिस दैत्य ने हमें धोखा दिया वही इसके लिये जिम्मेदार भी है। मैं समझता था मैं अपने घर में सरलता, आनंद के रूप में गंधमादिनी के लिये एक साथिन खोज लाया हूँ। उफ! वासदेव! कितना मूर्ख था! मैं प्रसन्न हूँ कि मेरी पुत्री प्रसन्नता से मर गई। उसे अपनी पीड़ा का कारण तनिक भी नहीं ज्ञात हुआ। वह तो अपनी यातना और दुख के बारे में कुछ भी नहीं जान सकी! मैं अब उस दैत्य के विनाश में ही अपना बाकी जीवन लगा दूँगा। मुझे बताया गया है कि...कि अपने इस पवित्र और करुणामय कर्त्तव्य को जो कि प्राणि मात्र का भला करने वाला है मैं पूरा कर सकने में समर्थ हो सकूँगा। लेकिन इस समय तो आशा की कोई भी किरण नहीं दिखाई दे रही है। मैं अब अपने अभिमानी, अविश्वासी, अपनी हठीली प्रवृत्ति, अंधेपन, इन सब को घृणा करने लगा हूँ। मैं अपने को औरों से बहुत ऊँचा समझता था। अब वह मुझे भूल सी लगती है। लेकिन अब न मैं ढंग से लिख पा रहा हूँ, न बातें ही कर पाता हूँ। मैं विक्षिप्त हूँ। जरा ठीक होने पर मैं इस विषय की खोज में लग जाऊँगा और शायद इसके लिये मुझे मध्य एशिया तक भी जाना पड़े। यदि मैं बसंत तक जीवित रहा, तो अवश्य आऊँगा, और तब मैं तुम्हें वह सब बतऊँगा जो अभी मैं लिख नहीं पा रहा हूँ। मेरे दोस्त, मुझे दुआ दो। अब बिदा।

यही था वह पत्र! हालाँकि मैंने कभी गंधमादिनी को देखा नहीं था, फिर भी मेरी आँखों में आँसू आ गये और इससे मुझे कुछ आश्चर्य भी हुआ, और दुख हुआ सो तो अलग।

अब धुँधलका छाने लगा था। मैंने पत्र अपने पिता को वापिस कर दिया। उन्होंने लिपटे हुए कपड़े को अपने हाथ में थाम लिया।

हम फिर टहलने लगे। मैं उस पत्र के असंबद्ध वाक्यों को ही बार-बार समझने की चेष्टा कर रही थी कि आखिर इसका मतलब हो क्या सकता है। महा सेनापति जिस दैत्य को खोज रहे हैं! निश्चय ही वे मृत्यु के लिये कह रहे हैं! लेकिन मृत्यु का रहस्य कौन समझ सका है। क्या मध्य एशिया में वह मिल सकता है? कभी नहीं। यह तो उनकी जबर्दस्ती की घबराहट है!

धीरे-धीरे चन्दा उग आया और पूरनमासी का चन्दा अपनी पूरी छटा लिए हुए निकला। कब उसका उजेला फैल गया, हम ध्यान नहीं दे सके। सुहासिनी और पद्मा बूआ भी वहीं आ गई थीं और उनके साथ कुछ दास-दसियाँ भी आ गये थे। एक सैनिक अंगरक्षक भी आ-गया था।

'कितना सुन्दर चन्द्रमा निकला है,' सुहासिनी ने कहा।

पिता ने कहा, 'तुमको महाभारत का वह वर्णन याद नहीं आता जहाँ युद्धभूमि में चन्दा निकलता है तो सब लोगों का क्रोध आनन्द में बदल जाता है?'

सुहासिनी पद्मा की ओर देख कर मुस्कराई। कहा, 'पुरुष को युद्ध के अतिरिक्त कुछ दिखता ही नहीं।'

हम सब हँस पड़े।

पिता ने कहा 'अच्छा ठहरो। मैं तुम्हें बताता हूँ...'

किन्तु तभी पहियों की गड़गड़ाहट सुनाई देने लगी। जैसे साथ ही कई घोड़े दौड़ रहे हों।

पेड़ों की घनी छाया में शीघ्र ही हमने दो घुड़सवारों को निकलते देखा जिन्होंने पुल को पार किया। उनके पीछे चार घोड़ों का एक रथ भागता हुआ दिखाई दिया, जिसके पीछे दो आदमी घोड़ों पर सवार भाग रहे थे।

हमने सोचा किसी बड़े आदमी का रथ है। वह कहीं जा रहा है। लेकिन इससे इतना हुआ कि हम सब लोग पास-पास आ गये और उस ओर देखने लगे। उत्तर से पश्चिम की ओर तो कई गाड़ियाँ जाती थीं किन्तु यह गाड़ी वन में से निकल कर आ रही थी। हमें आश्चर्य होना स्वाभाविक ही था। गाड़ी का रुख यूची के पुराने किले की दिशा की ओर था।

पिता ने कहा, 'यह कहाँ से आ रहे हैं!'

एक दास ने कहा, 'यह किसी ग्राम से आ रहे होंगे।'

'हाँ उधर तो ग्राम पथ ही है?'

'कितनी तेज जा रहे हैं?' पद्मा ने कहा, 'लगता है रथ उड़ रहा है। इतनी जल्दी की क्या जरूरत है?'

'समझ में नहीं आता।'

'अरे जा रहा होगा कोई,' सुहासिनी ने टोका।

लेकिन देखते ही देखते अजीब बात हुई।

रथ बड़ी तेजी से आ रहा था, कि पुल पर पहुँचते ही एक घोड़ा भड़क उठा और उसकी देखा-देखी सब ही घोड़े घबरा गये और डर से गये और सब एक साथ बड़ा जोर से उछले और सरपट दौड़े। आगे के घुड़सवारों ने मुड़ कर देखा कि वे घोड़े रथ को हमारी ओर खींच ला रहे हैं और अपनी राह छोड़ चुके हैं। घोड़े पूरी रफ्तार पर थे।

रथ के भीतर से स्त्रियों के चीत्कार सुनाई देने लगे। सारी हवा में एक सनसनी सी व्याप गई।

हम डर और घबराहट से आगे बढ़े। पिता गम्भीर थे।

हमारी परेशानी क्षण भर ही रह सकी। घोड़े सामने का पेड़ देख कर डरे और इधर-उधर होते समय रथ का पहिया पेड़ की जड़ पर चढ़ गया, जहाँ वह अटक गया।

मैं जानती थी क्या होने वाला है। मैंने अपनी आँखें भय से बन्द कर ली और सिर घुमा लिया। मैं उस दारुण दृश्य को देखना नहीं

चाहती थी कि सुहासिनी और पद्मा का चीत्कार सुनाई दिया। मैंने आँखें फाड़कर देखा। दो घोड़े जमीन पर पड़े थे। रथ गिर गया था और उसके दो पहिये हवा में उड़ गये थे। मर्द उसे उठाने में लगे थे और एक दबदबे की स्त्री बाहर निकल आई थी जो कि मुट्ठी बाँधे आज्ञा दे रही थी किन्तु उसके हाथ में उसके आँचल का छोर भी था, जिससे वह रह-रह कर अपनी आँखें पोंछ लेती थी।

रथ में से एक युवती को बाहर निकाला गया जो कि मर गई सी लगती थी।

मेरे पिता ने पास आकर कहा, बड़ी भयानक घटना हो गई देवी, सब ठीक हो जायगा। आप घबरायें नहीं।'

स्त्री ने जैसे सुना नहीं। वह उस युवती की ओर देख रही थी जो कि इस समय धरती पर कपड़ा डाल कर लिटा दी गई थी।

मैं आगे बढ़ी।

मैंने देखा—युवती डर से बेहोश-सी जरूर हो गई थी, लेकिन वह मरी नहीं थी।

पिता ने उसकी नाड़ी देखी। वह चल रही थी।

उन्होंने कहा, 'नाड़ी धीमी है, मेंढक की चाल से चल रही है, लेकिन युवती जीवित है। डरने की कोई बात नहीं है। वह अभी होश में आ जायेगी। आप इनकी...'

'माँ हूँ...' खड़ी हुई स्त्री ने आँखें पोंछते हुए कहा, जैसे वह बड़े भारी दुख में थी। यह सुन कर उसने दोनों हाथ जोड़ लिए और आकाश की ओर देखा, जैसे वह भगवान की करुणा के लिए कृतज्ञता प्रकाशित कर रही थी कि उसने उसकी बच्ची को जीवत रखा। उससे छीन नहीं लिया।

मुझे उसी समय महा सेनापति मंदहास की व्यथा याद हो आई क्योंकि उनकी भी पुत्री ही थी जो कि इस संसार से चल बसी थी। बेटी को इतना प्यार किया जाता है, यह सोच मुझे अच्छा लगा।

और वह स्त्री एक नाटकीय ढंग से रो पड़ी। मुझे अजीब-सा लगा। पर मैं यह सोच कर रह गई कि शायद यह उन्हीं भावुक लोगों में से है जो, जो भी काम करते हैं उनमें एक कृत्रिमता का आभास जरूर मिलता है। वह स्त्री निश्चय ही अपने यौवन में बहुत सुन्दर रही होगी जिसकी कि छाया अब भी उसके मुख पर प्रति बिम्बित हो रही थी। वह अब भी पतली-दुबली-सी छरहरी देह की थी और क़द में लंबी थी जैसी कि शक स्त्रियाँ होती थीं। शक और कुषाण में तो कोई भेद नहीं। कुषाण शकों की एक शाखा ही है। वह काला मखमल पहने थी। उसका मुख गोरा था और उस पर तनी हुई भवें थीं, जो उसके अधिकार पद को जता रही थीं, जो उसके रोम-रोम में बसा हुआ था।

उसने कहा, 'क्या कभी इस प्रकार के दुख के लिये भी ईश्वर ने मनुष्य की सृष्टि की है।' उसने मेरी ओर देखा, क्योंकि मैं पास आ गई थी। 'यहाँ मैं अकेली,' स्त्री ने कहा, 'जिन्दगी और मौत के सवाल को तय करने वाले सफर पर और एक-एक क्षण मेरे लिये मूल्यवान है उस समय मेरी बच्ची की यह हालत कि वह यात्रा में भी नहीं जा सकती, वह इस योग्य भी नहीं रही कि मेरे साथ चल सके। मैं क्या करूँ? नहीं मैं इसे छोड़ जाऊँगी! देर कैसे करूँ। सब कुछ चला जायेगा, सब कुछ। और उसे मैं देख नहीं पाऊँगी, तीन महीने... क्या करूँ...'

मैंने पूछा, 'आपका जाना जरूरी है?'

'बहुत,' उसने कहा।

'रुक नहीं सकतीं?'

'कैसे रुक सकती हूँ।'

'क्यों?'

'कैसे बताऊँ? तुम नहीं जानतीं। कैसे समझाऊँ! वह बात मैं कैसे कहूँ! पर मेरा जाना बहुत ही जरूरी है।'

मैंने कहा, 'उनकी तबियत तो...'

'उफ। मेरी बच्ची!' उसने कहा।

'यही तो कहती हूँ ।'

'हे भगवान ! तूने क्या कर दिया । यह विदेश ! मैं क्या करूँ क्या न करूँ ? यहाँ कोई धर्मशाला नहीं है ?'

'है तो ।'

'वहाँ कोई पुजारी होगा ?'

'अवश्य ।'

'क्या मैं अपनी लड़की को उसके सुपुर्द कर जाऊँ तो प्रबन्ध हो सकेगा ।'

मैंने पिता के पास जाकर कान में, 'पिता इसे यहीं रोक लीजिये न ? कितनी मुसीबत में पड़ गई है बिचारी ।'

'लेकिन यह कौन है ?' पिता ने वैसे ही पूछा ।

'पता नहीं । पर कुषाण है । देखिये न ?'

'है तो और ऐसा परिवार लगता है, जिसमें संस्कृत भाषा तो पहुँच गई है, परन्तु अभी उच्चारण में यूची ध्वनि मौजूद है ।'

'कौन सा कुल हो सकता है ?'

'कौन जाने ?'

'आप कहिये न ?'

पिता ने उस स्त्री से कहा, 'आप यदि ठीक समझें और आपको कुछ अनुचित न लगे तो इस युवती को मेरी पुत्री से अतिथि रूप में छोड़ जायें और हम इस पवित्र कार्य को करने में कुछ भी उठा न रखेंगे ।'

'नहीं श्रीमन्त ! यह तो आप पर भार डालना होगा । कम से कम किसी ब्राह्मण को तो मैं धन भी दे सकूँगी ।'

'किंतु यह हम पर बड़ी कृपा होगी । हमें प्रसन्नता होगी । मेरी पुत्री की एक सहेली की अभी मृत्यु हो गई है, जिससे उसके हृदय को बहुत आघात लगा है । वह तो बड़े हर्ष की आशा में थी । यदि हम इस युवती को यहाँ रखेंगे तो हम समझेंगे कि हमारी पुत्री को एक साथिन मिल गई है । आप भी कुषाण हैं और हम भी । सबसे पास का गाँव भी यहाँ

से कोस-डेढ़ कोस से पास नहीं है और आपका इसे विदिशा ले जाना तो उचित नहीं। यह तो कुषाण कुलों के ऊपर धब्बा लगेगा कि हमारे रहते आप को सहायता नहीं मिली। यदि आपका जाना आवश्यक ही है तो आप चली जायँ और पुत्री को यहीं छोड़ जायँ। जितनी निश्चिंत आप इसे यहाँ छोड़कर हो जायेंगी, उतनी और कहीं कैसे हो सकेंगी ?'

रथ तब तक सीधा हो गया था।

स्त्री खड़ी सोचती रही और जैसे उसने निश्चय किया। उसने अपनी पुत्री की ओर देखा और मुझे लगा कि जो वात्सल्य की भावना उसकी आँखों में कुछ देर पहले थी, वह अब वहाँ नहीं थी। उसने कुछ हट कर पिता की ओर इंगित किया। वे दोनों कुछ हट कर खड़े हो गये। वहाँ उन्होंने कुछ बातें की, जो कि सुनाई नहीं दी। लेकिन मैंने देखा कि अब उसके चेहरे पर ममता का चिन्ह भी नहीं था। वह बिल्कुल कठोर लग रही थी।

मुझे इसका आश्चर्य हुआ किन्तु पिता उसके मुख के उस परिवर्त्तन को देख नहीं सके। जाने वह क्या कह रही थी। मेरे भीतर एक गहरी जिज्ञासा थी। लेकिन सुनाई तो कुछ नहीं दे रहा था। बल्कि मुझे उस समय उस स्त्री के चेहरे पर संतोष तो दिखाई दिया, किंतु उसमें भी कुटिलता थी। वह तो बिलकुल पिता के कान के पास मुँह ले जाकर बात कर रही थी। पिता वृद्ध थे। उन्होंने अधिक ध्यान भी नहीं दिया।

कुछ ही देर में बात समाप्त हो गई और तब वह मुड़ी और आगे चल कर अपनी पुत्री के समीप आई, जिसे उस समय सुहासिनी ने सँभाल कर गोद में उसका सिर ले रखा था। माँ झुकी और कुछ उसके कानों में फुसफुसाया जिसका अन्तिम शब्द सुनाई दिया : कल्याण हो। हम समझे कि उसने एक प्रकार का आशिर्वाद दिया है। फिर उसने उसका माथा चूम लिया। वह रथ पर चढ़ गई और पर्दे ने उसे छिपा लिया। घुड़सवारों ने ऐड़ लगाई। और तुरन्त ही आगे के घोड़े भाग चले जिनके पीछे रथ और बाकी के दो घुड़सवार भी भाग निकले। और क्षण भर में

दिया और धीरे-धीरे युवती को स्मरण आने लगा कि क्या हुआ था और उसे यह सुन कर प्रसन्नता हुई कि कोई भी चोट की लपेट में नहीं आया और तब पिता ने बताया कि उसकी माँ तीन महीने बाद लौट कर आ जायेगी। तब तक वह हमारी अतिथि है। घबराने की कोई आवश्यकता नहीं है। तब वह रो पड़ी।

मैं पास जाना चाहती थी कि बूआ पद्मा ने मेरी बाँह पर हाथ रख कर कहा, 'पास मत जाओ। एक से ही बात करने दो।' सुहासिनी वहाँ सब ठीक कर रही है। कहीं जरा सी भी आवेश की बात हो गई तो वह फिर कहीं मूर्च्छित हो जायगी।

मैंने सोचा ठीक ही तो है। जब यह ठीक हो जायगी तब मैं इसकी शैय्या के पास जाकर ही इससे मिल लूँगी।

मेरे पिता ने इस दौरान में सुषेण और आर्किमिडीस के लिये घोड़े दौड़ा दिये थे। कमरा ठीक करके युवती को लिटा देने की बात हुई। सुहासिनी ने सहारा दिया और युवती धीरे-धीरे उठी और फिर वह उसके साथ पीछे की ओर एक हलकी निगाह डाल कर हमारे किले में चली गई।

हम जिस कमरे में रहते थे वह काफी बड़ा था। उसमें चार खिड़कियाँ थी जिनसे वह बाहर का पुल और खाई दिखाई देती थी और वह बन भी दिखाई देता था, जिसके सामने वह दुर्घटना हुई थी। कमरे में काफी सामान था। कई आसन पड़े हुए थे और दीवारों पर चित्र भी टँगे हुए थे। धरती पर मोटे कालीन बिछे थे, जो कि ईरान से आये थे। अलमारियाँ रखी थीं जिनमें सुवर्ण के सुन्दर खिलौने सजे धरे थे।

हम यहीं दीपों के प्रकाश में बैठ गये और शाम के बारे में बातें करने लगे। एक दासी ताड़ का बड़ा पंखा झल रही थी। बिस्तर पर पड़ते ही तरुणी सो गई थी। और बूआ ने एक सेवक को उसकी देख-रेख करने को वहाँ छोड़ दिया था।

'तुम्हें वह कैसी लगी ?' मैंने बूआ सुहासिनी के साथ पद्मा को आते देखकर पूछा । 'मुझे बताओ ?'

'अच्छी है, सुहासिनी ने कहा, 'इतनी सुन्दर स्त्री तो शायद मैंने वर्षों से नहीं देखी । ऐसी है तुम्हारी ही आयु की । बड़ी अच्छी भी है ।'

पद्मा ने कहा, 'है तो वह बहुत सुन्दर । एक झलक मैंने भी उसे गौर से देखा है ।'

'उसकी आवाज कितनी मीठी है ?' सुहासिनी ने कहा ।

पद्मा ने कहा, 'तुम लोगों ने रथ में बैठी उस स्त्री को भी देखा था, जोकि नीचे उतरी ही नहीं ।'

'तो ?' मैंने पूछा ।

'पर्दे में से झाँक लेती थी ।'

मैंने और सुहासिनी ने सिर हिलाया । हमने नहीं देखी थी ।

'कैसी थी,' मैंने पूछा ।

'कुरूप ! काली ! उसके सिर पर हब्शियों का-सा वस्त्र भी था । बराबर पर्दे के पीछे से झाँकती रही । वह उस बड़ी वाली स्त्री को इशारे से भी कहती थी, कभी हँसती सी लगती थी तो उसके बड़े-बड़े भद्दे से दाँत चमक उठते थे । उसकी आँखें भैंस की सी बड़ी-बड़ी थीं । बड़ी डरावनी सी लगती थी ।'

सुहासिनी ने कहा, 'सो तो है ! तुमने उन घुड़सवारों और उस सारथि को देखा था ?'

मेरे पिता ने हँसते हुए कहा, 'वे तो बड़े कुरूप थे । मैंने शायद इस तरह के आदमी नहीं देखे, जो शकल से ही कमीने, बदमाश और खतरनाक लगते थे । कहीं ऐसा न हो कि वे उस बिचारी को जंगल में कतल कर दें । पता नहीं वह कुलीन स्त्री उनके चक्कर में कैसे आ गई ?

सुहासिनी ने कहा, 'वे थके हुए भी तो थे ! सफर भी लंबा ठहरा । बदमाश तो अलावा चीज है, उनके चेहरे कितने पतले, कितने काले

और कितने ज्यादा उदास से थे। मुझे तो उन्हें देख कर ही घृणा हो आई थी।'

पद्मा ने कहा, 'लेकिन जो स्त्री भीतर बैठी थी वह यदि तुमने देखी होती! उफ! सोचती हूँ तो डर लगता है वह कितनी भयानक और वीभत्स थी!'

'शायद', सुहासिनी ने कहा, 'कल वह तरुणी सब बताये।'

मेरे पिता ने रहस्यमय ढंग से मुस्कराते हुए कहा, 'नहीं, वह नहीं बतायेगी।' उनकी मुद्रा से लगता था कि वे कुछ अधिक जानते थे, जो वे इस समय बताना नहीं चाहते थे।

इससे मुझे अधिक कौतूहल हुआ। आखिर वह क्या बात थी? शायद वह स्त्री पिता से कुछ कह गई थी! लेकिन बहुत थोड़ी सी बात तो उनमें हुई ही थी। इतनी देर में ऐसा सब क्या कह दिया होगा?

जब मैं पिता के साथ अकेली रह गई मैंने कहा, 'पिता!'

'क्या है बेटी?'

'तुम्हारी उस स्त्री से कुछ बातें हुईं थीं न?'

'हाँ हुईं तो थी।'

'मुझे नहीं बताओगे?'

'बताने को ऐसी कोई बात तो नहीं है।'

'क्यों? तुम्हें कोई एतराज है?'

'ऐसा तो नहीं है पर कुछ विशेष है भी नहीं।'

'उसने कुछ कहा तो था?'

'यही कहा था कि उसे इसका अफसोस है कि हमें इतना कष्ट उठाना पड़ रहा है। लड़की उसकी कोमल है। क्या करे। जल्दी घबरा भी जाती है। लेकिन कोई खास उसे भूत-प्रेत नहीं लगा हुआ है। वैसे बिल्कुल ठीक है, लेकिन कभी-कभी दौरा-सा हो आता है।'

'यह भी कोई कहने की बात थी! कैसी अजीब थी वह!'

'जो भी हो,' पिता ने हँस कर कहा।

'सच यही बात थी !'

'बिल्कुल यही कहा था उसने। और पूरी बात सुनो, उसने कहा, मैं बड़े जरूरी काम से यह लम्बी यात्रा कर रही हूँ। यह यात्रा शीघ्र करनी है और गुप्त है।'

'गुप्त !!'

'हाँ गुप्त ही। वह बोली मैं तीन महीने में लौट आऊँगी, तब बेटी को ले जाऊँगी। तब तक वह आपको नहीं बतायेगी कि वह कौन है क्योंकि यह हम पहले ही तय कर चुके हैं। बस।'

'केवल ? बोली किसमें थी ?'

'संस्कृत में।'

'उसके उच्चारण में कुछ दोष था न ?'

'थोड़ा था तो। और जब उसने गुप्त शब्द कहा तो वह कठोर सी लगी और मेरी आँखों में आँखें डाल कर देखती रही, जैसे गुप्त पर वह बहुत जोर दे रही थी। तुमने देखा वह कितनी जल्दी चली गई थी।'

'फौरन ही तो !'

'यही मैं सोचता था।'

'क्या ?'

'मैंने लड़की को रखकर भूल तो नहीं की ?'

'इसमें भूल क्या हो सकती है भला ?' मैंने पूछा।

'तू अभी दुनिया को नहीं जानती।'

'क्यों नहीं जानती। मैं क्या अब बच्ची हूँ ?'

'बच्ची ही है मेरी बेटी।'

'हाँ, हाँ। बूआ भी यही कहती हैं। मुझे तो वह बड़ी अच्छी लगती है।'

'क्यों ?'

तभी सुषेण और आर्किमिडीस पितृव्य आ गये। हम सब बातें करने

लगे। उन्होंने बताया कि वे लड़की को देख आते हैं। वह कल ठीक हो जायगी।

आर्किमिडीस ने कहा, 'घबराने की तो कोई बात दिखाई नहीं देती। उसकी हालत अच्छी है।'

सुषेण ने कहा, 'वह तो पलँग पर बैठी है।'

'मैं देख आऊँ ?' मैंने पूछा।

'भले ही जाओ' सुषेण ने उत्तर दिया।

मैं तुरन्त चली गई।

जिस प्रकोष्ठ में तरुणी को ठहराया गया था वह बहुत ही सुन्दर था। उसमें वैभव की झलक थी। उसमें भव्य चित्र बने थे। एक में हस्तिनापुर के डूबने का दृश्य था, जिसमें पानी से निकल कर लोग कौसाम्बी बसाने का विचार कर रहे थे। एक चित्र में सम्राट सिकंदर था जो कि अपनी विद्रोही सेना के सामने पसीने-पसीने हो कर खड़ा था। सम्राट कनिष्क खिराज लेते हुए बैठे थे। सारी भीतों पर सुनहला रंग फिरा हुआ था।

उसके बिस्तर के पास दीप जल रहे थे। वह बैठी थी। उसका सुन्दर शरीर इस समय मलमल के कपड़ों में बहुत ही सुडौल दीख रहा था। उसकी कंचुकी सफेद रेशम की थी। और गर्मी की ऋतु होने के कारण वह अपनी सुन्दर बाँहों को उठाये बैठी थी, जिन्हें उसने पलँग के पीछे टेक लिया था। उसकी काँखों में शायद पसीना आ गया था, जिसे सुखाने को उसने कुछ गंधपूर्ण वहाँ सफेद-सफेद सा लगा दिया था।

लेकिन ज्योंही मैंने उसे देखा मैं भय से दो पग पीछे हट गई। मैं कुछ नहीं कह सकी। अवाक देखती रही !

मैंने वही चेहरा देखा था !

वही ! हाँ वही था !

जिस दिन सागरक के सम्मान में उत्सव हो रहा था, मैंने बचपन में लगभग १० वर्ष पूर्व जो स्त्री अचानक देखी थी, जो अकस्मात् ही मेरे

बिस्तर के नीचे छिप गई थी, वही मैं देख रही थी। वैसा ही सुन्दर और करुणामय। मोहक भी। वही गोरा रंग।

किन्तु मेरे देखते ही देखते वह मुस्कराई और उसने कहा, 'अद्भुत!'

वही बोली, मैं बोल भी न सकी।

उसने कहा, 'ठीक यही। ठीक यही।'

मैं चौंकी।

उसने कहा, 'दस वर्ष पूर्व मैंने ठीक तुम्हारी जैसी एक स्त्री को सपने में देखा था। तब मैं छोटी ही थी। लेकिन मुझे आज तक कल की-सी याद है।

'सचमुच अद्भुत है,' मैंने दुहराया। मेरा भय दूर हो गया। मैंने कहा, 'दस वर्ष, हाँ तभी मैंने निश्चय ही तुम्हीं को देखा था। लेकिन वह स्वप्न था या सच? पर मैंने तुम्हें ही देखा था। मैं तुम्हारा मुख भूल नहीं सकी। तब से मेरे सामने आज तक है।' यह कहते हुए मेरे भीतर फिर वही आतंक छा गया।

उसके मुख पर मुस्कान फैल गई। मुझे अब उसमें कोई विचित्रता दिखाई नहीं दी। वह सचमुच कितनी सुन्दर थी।

तब मैंने उसके स्वागत के शब्द कहे, और उसे बताया कि उसके आने से मुझे कितनी अधिक प्रसन्नता हुई है। बात करते-करते मैंने उसका हाथ अपने हाथ में ले लिया। उसने मेरे हाथ पर अपना दूसरा हाथ रख दिया। और मेरी आँखों में आँखें डालकर शर्माते हुए उसने मुँह झुका कर मेरे शब्दों का उत्तर दिया। और कहा :

'यह कितनी अजीब बात है कि हम दस साल पहले एक दूसरे से मिल चुके हैं। पर यह तो देखो उस समय हमने एक दूसरे के दस वर्ष बाद के रूप देखे।'

और उसने ठीक वही किस्सा सुनाया जो मेरे साथ हुआ था। केवल वह छोटी थी, चिल्लाई थी, डरी थी और मैं पलँग के नीचे छिप गई थी। सुनकर मेरे आश्चर्य की सीमा नहीं रही।

मैंने कहा, 'यहीं मैंने देखा था।'

'उफ,' उसने मुस्करा कर कहा, 'पता नहीं हम दोनों में से किसे डरना चाहिये। शायद हम दोनों को एक दिन मिलना ही था। अब मिल भी गये। हमारी दोस्ती कितनी पुरानी है। आज तक मेरा कोई भी दोस्त बना ही नहीं,' उसने साँस खींच कर कहा और फिर वह मेरी ओर वासनामय नेत्रों मे देखने लगी।

मुझे लगा मैं उसकी ओर आकर्षित हो गई हूँ। किन्तु भीतर ही भीतर जैसे मुझे उससे घृणा भी हुई। लेकिन इस दुतरफा चीज में आकर्षण ही जीता और मुझे उसके रूप ने अपने सामने पराजित कर दिया।

वह कुछ थकी हुई नजर आने लगी।

'तुम थक गई हो,' मैंने कहा।

'क्यों?'

'तुम्हें आराम करना चाहिये। वैद्यराज का कहना है कि तुम्हें रात को शायद किसी की मदद की जरूरत पड़े। एक नौकरानी यहीं रह जायेगी। वह बहुत अच्छी है। काम खूब करेगी।'

'तुम्हारी दया है यह सब,' उसने कहा, 'लेकिन······'

'लेकिन क्या···'

'मैं सो नहीं सकूँगी···

'क्यों भला?'

'मैं नौकरानी को रात को कमरे में रख कर सो नहीं पाती। मुझे नींद नहीं आती। अब तो मुझे किसी की जरूरत नहीं है। मुझे डर लगता है।'

'डर!'

'हाँ, ऐसा लगता है कि दरवाजा खोलकर सोई तो डाकू घुस आयेंगे। एक बार हमारे यहाँ डाका पड़ा था। दो नौकर मारे गये तब

से मैं द्वार बंद करके ही सोती हूँ। भीतर से कुण्डी चढ़ा कर ही सोती हूँ। मुझे आदत पड़ गई है।'

'अच्छी बात है। गर्मी न लगेगी।'

'खिड़की खुली रहेगी।'

'तो मैं चलूँ।'

'कल सुबह मिलेंगे हम। लेकिन एक बात है, बुरा तो न मानोगी?'

'क्या?'

'मैं देर से उठती हूँ।'

'यह भी तुम्हें आदत है?' मैं हँसी। वह भी हँस दी।

मैं चली तो उसने मुझे आलिंगन किया और कहा, 'थकी हूँ जरा। वर्ना तुम्हें छोड़ने को जी नहीं करता।'

फिर वह तकिये पर लेट गई और उसकी सुन्दर आँखें कुछ उदास सी कुछ स्नेह भरी मुझे जाते हुए देखती रहीं।

तरुणाई भावना विचार प्रधान नहीं होती, भावावेश प्रधान होती है। मुझे वह सब बहुत अच्छा लगा। कितनी मीठी तरह से वह मुझसे मिली थी! कितना विश्वास दिखाया था उसने। वह जरूर मुझे दोस्त बनाना चाहती थी।

मैं आई और सो गई।

अगले दिन हम फिर मिले।

दिन में भी वह रात को हो भाँति आकर्षित प्रतीत हुई।

मैंने कहा, 'तुम्हें पहली नजर देख मैं डर गई थी।'

'और मैं क्या भीतर ही भीतर नहीं डरी थी सिधुंजा!'

उसने मेरा नाम लिया।

'तुम्हें मेरा नाम किसने बताया,' मैंने पूछा।

'सब ही तो लेते हैं।'

'तुमने अपना नाम नहीं बताया।'

'मेरा नाम है सुकुमारि!'

'जैसी हो, वैसा ही नाम भी है,' मैंने कहा।

वह चुप हो गई और उसके मुख पर एक उदास-सी छाया दिखाई देने लगी। भीतर से मन उचाट-सा लगा।

फिर वह ठीक हो गई। मुस्कराई और वह मुझे फिर अच्छी लगने लगी।

फिर हम इधर-उधर की बातें करती रहीं।

तभी सुहासिनी बूआ ने मुझे बुलाया।

'अच्छा चलूँ,' कह कर मैं चली आई और काम में लग गई।

इसी तरह कुछ दिन बीत गये। मैं निश्चय नहीं कर सकी कि वह मुझे अच्छी लगती थी, कि मैं उससे घृणा करती थी। यह द्वन्द्व मेरे भीतर बड़ा अजीब सा था। मैं उसे समझ नहीं पाती थी कि यह क्या था? क्यों वह अच्छी और बुरी, मुझे एक ही समय लगा करती थी!

जब उस पर रहस्यात्मक छाया आती तब वह मुझे अच्छी नहीं लगती। अब मैं उस बात को समझने लगी थी जो उसकी माँ मेरे पिता से कह गई थी।

एक शाम की बात है कि हम सब बैठे थे। सुकुमारि भी वहीं थी। आर्य सुषेण ने कहा, 'सागरक बिचारा व्यर्थ ही मारा गया।'

आर्किमिडीस ने कहा, 'बात तो विचार की है।'

आर्य चक्रधर ने कहा, 'मुझे सुनाओ न?'

सुहासिनी, पद्मा और मैं वहीं अच्छी तरह बैठ गये। सुकुमारि भी बैठी रही।

आर्किमिडीस ने कहा, 'सागरक का समय अच्छी तरह बीतता था। उससे किसी ने कह दिया कि यूची के किले में भूत है। आप तो जानते ही हैं मेरा यूची के किले से संबंध है।'

'हाँ, हाँ,' पिता ने कहा।

'तो सागरक को जोश आ गया,' पितृव्य आर्किमिडीस कहने लगे, 'उसे भला कब ताव था। तुरन्त सामान बाँध दो सेवकों को लेकर चल

पड़ा। सारे नगर में सूचना फैल गई। लोग वहीं जम गये। मैं भी उससे उसके मरने के पहले दिन मिला था। उसने मुझे यह सुनाया था—

वह किला देखने गया और उसने तय किया कि उस कमरे में ही वह रहे जहाँ किसी समय यूची परिवार खाना खाया करता था। उन दिनों शकों में आज के से व्यवहार तो थे नहीं। सेवकों ने दिन में वहाँ रहना स्वीकार किया। रात को वे बाहर के दर्शकों के पास जा ठहरते थे। वह खाना खा कर वहीं रहा। उसने एक पुस्तक खोल ली और दीपक के प्रकाश में पढ़ने लगा। आधी रात तक कुछ नहीं हुआ। तब वह उठा। उसने पानी पिया और तभी उसे लगा कि वहाँ चूहे बहुत आवाज कर रहे थे। निश्चय ही वे पहले भी थे, पर वह पढ़ रहा था। उसने सोचा। किला है। चूहों का होना कोई ताज्जुब की बात तो नहीं।

पर फिर ध्यान आया। अगर वे होते तो क्या पहले वह एक भी नहीं देख पाता?

तभी आवाज बढ़ गई। उसे लगा वे पहले वहाँ नहीं थे। पहले तो वे चूहे उस रोशनी को देख कर डरे, मगर धीरे-धीरे उनकी हिम्मत खुलने लगी। वे कितना ऊधम कर रहे थे। कभी ऊपर दरवाजों पर चढ़ते, कभी नीचे उतरते। कभी दाँत दिखाते, कभी चबाते। कभी जमीन कुरेदते, और कभी एक दूसरे के पीछे दौड़ते।

वह उन्हें देख मुस्कराया। कितने अधिक थे वह! उसने सोचा यहाँ कोई रहता तो है नहीं। जब का किला होगा तभी से यह रहते आये होंगे। बढ़ गये होंगे।

पर फिर उसे विचार आया। खाते क्या होंगे। यहाँ तो कोई बस्ती तक नहीं। पर उससे क्या हुआ? खेतों में जाते होंगे। इस बात ने उसे संतुष्ट कर दिया।

जब उनका शोर बहुत बढ़ गया तो वह दीप ले कर उठा और उसने इधर-उधर देखा। जगह-जगह बिल बने हुए थे, उनमें से उसे

चूहों की आँखें दिखाई देतीं, फिर वे चूहे गायब हो जाते, भीतर से चींचीं करते।

अचानक उसकी निगाह एक रस्सी पर पड़ी जो कि छत से लटक रही थी और वातायन में टँगे घंटे से बँधी थी। वह शायद खतरे की घंटी थी। वह फिर पढ़ने लगा।

एकदम सन्नाटा छा गया। उसने आँख उठा कर देखा। सामने एक सिंहासन-सा रखा था। उस पर एक बहुत मोटा और बड़ा सा चूहा बैठा था, जो उसे खतरनाक ढंग से घूर रहा था।

सागरक ने हाथ उठाया कि मारने के इशारे से उसे भगा दे। वह न हटा। तब उसने कुछ उठा कर ऐसा दिखाया जैसे मार देगा, मगर वह नहीं हटा और उसने गुस्से से अपने दाँत दिखाये। और उसकी निष्ठुर आँखों में प्रतिहिंसा की भावना उस दीपालोक में चमक उठी।

सागरक को आश्चर्य हुआ। उसने उसे मारने को एक डंडा उठाया और उसके पीछे भागा। डंडा लगने के पहले ही चूहा घृणा से चिल्लाकर भागा और वही लटकती रस्सी पकड़ कर ऊपर चढ़ गया। और ऊपर खो गया। वहाँ तक दीप का प्रकाश साफ नहीं पहुँच सकता था। उसके जाते ही सारे चूहे निकल पड़े और वही चीं-चीं शुरू हो गई। वही भाग-दौड़ शुरू हो गई।

मुर्गा बोला। भोर हो गई। आवाजें बंद हो गईं। सागरक लेट गया और गहरी नींद में सो गया।

'बस,' सुषेण ने उससे कहा था, 'अब रहने दो। बहुत हुआ। वह आत्माएँ ही थीं। आत्मा अनेक योनियों में जाती है।'

सागरक नहीं माना।

सुषेण ने कहा, 'वह चूहा अवश्य प्रेत था।'

सागरक हँस दिया।

दूसरी रात चूहों का गोलमाल जल्दी शुरू हुआ। बल्कि उसके वहाँ पहुँचने से पहले से हो हो रहा था। उसके जाते ही वह रुक गया। पर

फिर कुछ देर बाद वे आने लगे। आज वे पहले से अधिक निर्भय थे। पर आज वह उनका खेल देखता रहा। कभी-कभी जब वे पास आते सागरक अपना खड्ग उठा कर उन्हें डराता। वे भाग जाते। हश्श-हश्श कर देता। वह पढ़ने लगा। आधी रात बीत गई।

फिर घोर सन्नाटा छा गया। कल की नीरवता उसे याद थी। उसकी निगाह फिर सिंहासन पर ही गई। वह भीतर ही भीतर सनसना गया। वही मोटा चूहा, वैसे ही देख रहा था।

उसने एक पत्थर उठा कर मारा। उसके लगा नहीं। चूहा बैठा रहा। उसने खड्ग उठाया तो वह भाग कर रस्सी पर चढ़ गया और वही चूहों की रेलम्पेल फिर शुरू हो गई।

कुछ देर ज्यों ही सन्नाटा छाने लगा उसने देखा कि वही चूहा रस्सी पकड़ कर उतर रहा था, जहाँ से कूद कर वह फिर उसी सिंहासन पर आ बैठा। उसने एक पत्थर मारा, 'चूहा बचा गया'। दूसरा मारा। चूहा फिर कूद गया। तब वह खड्ग उठा कर खड़ा हुआ। चूहा भय से चीं-चीं कर उठा और उसके आने के पूर्व ही कूदा और उसने वहीं से लपक कर रस्सी पकड़ा और चढ़ गया और वहीं ऊपर जाकर लुप्त हो गया।

आज सागरक ने उसकी छिपने की जगह देख ली। दीवाल पर एक बहुत बड़ा चित्र था किसी यूची सेनापति का, संभवतः वही जिसने कि यह किला बिगाड़ा था। उसी के पीछे ऊपर की ओर एक छेद था। वह उसी में घुस गया था।

'सुबह देखूँगा,' उसने कहा।

सुबह उसे ज्ञात हुआ, पूछने पर कुछ लोगों ने बताया कि पहले यूची लोग इस तरह की रस्सी फाँसी देने के काम में लाते थे। इसके अतिरिक्त उसे कुछ नहीं दिखा।

रात को वह सोचने लगा। न जाने कितनों को इसी रस्सी ने झुलाया होगा, कौन जाने!

तभी चूहा उतरने लगा, और...

आर्किमिडीस ने रुक कर कहा, 'आगे की कथा सागरक ने नहीं सुनाई। यह मुझे उन पाँच किसानों ने सुनाई जो छिप कर वहाँ एक दरवाजे की संध से देख रहे थे।'

सागरक ने देखा और उस पर खड्ग साधा। चूहा चढ़ कर ऊपर भाग गया। उसने दीप उठाकर देखा और वह डर गया। सामने जिस यूनी सेनापति का चित्र था उस पर उसकी नजर पहली बार गई जिसकी आँखें बिल्कुल उस चूहे की सी कठोर थीं।

सागरक डरने लगा। किसानों ने बोलना चाहा। पर वे बोल न सके। उन्हें सिर्फ दिखता था, सुनाई देता था। पर वे जैसे हिलडुल नहीं सकते थे।

पर सागरक बहादुर था। वह हट आया।

उसने मुड़ कर ऐसे देखा जैसे उसके पीछे कोई खड़ा था। पर वहाँ कोई न था। हठात् वह चिल्ला उठा। चूहा फिर सिंहासन पर बैठा था। और सागरक ने देखा वह फिर भाग गया।

फिर सागरक पढ़ने लगा। पर किसान वहीं जटित रह गये। वे हिल नहीं सकते थे।

कुछ आवाज-सी आई। उसने देखा। वही चूहा उस रस्सी को कुतर रहा था और देखते ही देखते वह रस्सी कट कर धरती पर आ गिरी। सागरक को लगा कि वह अब घंटी नहीं बजा सकेगा। उसे डर भी लगा और गुस्सा भी आया। तभी चूहा कूदा। सागरक उसके पीछे दौड़ा। एक हाथ खड्ग का उसके लगा या लगते-लगते फिसल गया और चूहा अँधेरे में जा छिपा। उसने बैठ कर किताब पढ़ने का यत्न किया और अचानक उसकी निगाह उठी तो उसका खून जम गया। क्या यह हो सकता था! चित्र में से यूनी सेनापति गायब था।

असंभव! सागरक ऐसे काँपने लगा जैसे उसे जूड़ी चढ़ आई थी। और उसने देखा। सिंहासन पर यूनी-सेनापति बैठा था, वही चूहे-सी आँखें, वही भयानक चमक।

सागरक ने खड्ग उठाना चाहा, पर उसके हाथ में शक्ति नहीं थी। सेनापति उठा। उसने उसी रस्सी का फंदा बनाया, पाँव से उसकी मजबूती को परखा और आगे बढ़ा।

सागरक को लगा वह फँस गया था। उसने भागने की चेष्टा की, किन्तु नहीं, सेनापति चैतन्य था। इसके बाद अधिक नहीं हुआ। सेनापति ने सागरक की गर्दन में फंदा डाल दिया और खींच दिया।

सागरक गिर गया। उस समय घंटे पर कई चूहे जा चढ़े थे और घंटा बजने लगा। सेनापति आराम से बढ़ा और फिर वह चित्र बन गया। वह मुस्करा रहा था।

उसके बाद ग्रामीण हिले। उन्होंने देखा और बुरी तरह चीत्कार करते हुए भाग निकले।

लोगों ने आकर देखा। वह मर चुका था।

आर्किमिडीस की कथा समाप्त होने पर सबने देखा। सुकुमारि बेहोश पड़ी थी। उसे तुरन्त उसके कमरे में ले आया गया। होश में आने पर वह मुस्कराई।

'डर गई थी,' सुषेण ने कहा।

'हाँ,' उसने झेंपते हुए कहा, 'यूची परिवार की सब कहानियाँ ऐसी ही हैं। अपनी यात्रा में मैंने कुषाण परिवारों में ऐसे ही किस्से सुने हैं।'

आर्किमिडीस ने कहा, 'तभी तो वह परिवार नष्ट हो गया।'

'पिता, चक्रधर ने कहा, 'मेरी पत्नी तो उसी परिवार की थी।'

व्यथा की एक हल्की छाया मैंने उस मुँह पर आती देखी, जैसे कुछ-कुछ वह घबरा भी गई थी। लेकिन फिर वह ठीक दिखाई देने लगी।

'यह सब गड़बड़ियाँ हैं,' आर्किमिडीस ने कहा, 'कि वे गाड़ते थे, मुर्दे जलाते न थे। कहते हैं गाड़ने से प्रेत घूमता है।'

सुकुमारि का चेहरा पीला पड़ गया। मैंने देखा तो कहा, 'इतना क्यों डरती हो तुम?'

सुकुमारि ने मुझे अपने पास बिठा लिया। उस समय न जाने क्यों

मुझे उससे अत्यन्त घृणा हुई। मैंने उसका मुख देखा, और न जाने एक आकर्षण-सा हुआ।

आर्किमिडीस और सुषेण पितृव्य घर चले गये। मैं जाकर सो रही। मैंने सुना।

बूआ सुहासिनी ने कहा, 'पद्मा बहन।'

'क्यों?'

'तुमने देखा लड़की डरती बहुत है।'

'पर मुझे वह रहस्यमय लगती है।'

'कारण?'

'तुमने देखा वह रथ लेकर इसकी माँ बूची-किले की ओर ही गई थी।'

'हाँ गई तो थी।'

'लेकिन उसने अभी अपना परिचय दिया भी तो नहीं। तुमने एकांत में पूछा था?'

'हाँ। मगर उसने बताया नहीं।'

'क्या कहा?'

'कहा माँ ही बतायेगी।'

फिर वे दोनों चली गईं। मैंने सोचा शायद वह मुझे बता देगी। मुझसे कुछ नहीं छिपायेगी।

और फिर मैं सो गई। जब मेरी आँख खुली तब सुबह हो चुकी थी

६

दुपहर ढल चुकी थी। मैं और सुकुमारि उद्यान में एक पेड़ के नीचे बैठी थीं। मैंने कहा, 'सुकुमारि! तुमने मुझे अपने बारे में कुछ बताया नहीं।'

उसने बहुत टाल-मटूल करके इतना ही बताया।

उसका नाम सुकुमारि था।

वह कुषाण थी।

वह उत्तर से आई थी।

वैसे वह पश्चिम की रहनेवाली थी।

और कुछ नहीं। न उसने कुल के विषय में कुछ कहा, न उसके बारे में कुछ आभास ही दिया।

इसी समय एक शव उधर से लेकर कुछ किसान जा रहे थे। कुषाण थे वे। परम्परा में धीरे-धीरे वे गा भी रहे थे। मैं जानती थी कि वह एक किसान की पुत्री का शव था। बेचारा! सब कुछ लुट गया-सा पीछे-पीछे किसान जा रहा था। उसके साथ अन्य लोग थे।

मैं अपना, शव के प्रति, सम्मान दिखाने को उठ खड़ी हुई।

सुकुमारि ने मुझे हिला कर कहा, 'कितना बुरा संगीत है।'

मुझे उसकी इस हरकत पर आश्चर्य हुआ। बुरा भी लगा। मैंने कहा, 'नहीं, अच्छा है।'

मैं फिर खड़ी रही।

'मेरे कान फटते हैं,' सुकुमारि ने कहा और अपने कानों में उँगली डाल ली। और कहा, 'मैं मुर्दे पसंद नहीं करती। मौत! कितनी बुरी चीज है! और आदमी उसका सम्मान करता है! उसके लिये इतने सब की क्या जरूरत है? कौन नहीं जानता कि तुम्हें मरना है--सबको ही मरना है। घर चलो।'

मैंने कहा, 'शायद मेरे पिता हम लोगों के साथ शव भूमि में जायँ। आर्किमिडीस पितृव्य भी जायें।'

'क्यों?'

'तुम्हें नहीं बताया मैंने।'

'नहीं तो। जाने दो। मुझे करना भी क्या है।' मैंने देखा उसकी आँख में एक चमक थी। मैंने सोचा यह तो अहंकार था।

मैंने कहा, 'बिचारी! कहते हैं इस लड़की ने भूत देखा था, तब से ही उसकी हालत बिगड़ गई।'

'भूतों के बारे में मुझसे न कहा करो। मुझे रात को नींद नहीं आती।'

'कौन जाने क्या होने वाला है। यह नई बीमारी फैल रही है। मुझे तो तुम्हारा डर हो रहा है। तुम्हें आये पन्द्रह दिन हुए हैं। कहीं तुम भी चपेट में न आ जाओ। क्या जवाब देंगे हम तुम्हारी माँ को।'

वह हँस दी। जैसे खूब कही।

मैंने कहा, 'तुम नहीं जानती! अभी एक ग्वाले की स्त्री भी मरी है। उसके पहले एक कायस्थ की पत्नी मर गई। दोनों के बारे में यही कहा जाता है कि उन्हें भूत ने दबाया था।'

मैं शव के चले जाने पर बैठ गई और मैंने देखा उसके चेहरे पर परिवर्तन था। मैं तो देखकर डर गई। उसका मुँह बिलकुल स्याह पड़ गया था। उसकी मुट्ठियाँ भिंच गई थीं और दाँत भिंचे हुए से थे। उसकी भौं में बल पड़ा हुआ था और होंठों को वह भींच लेना चाहती थी! और वह धरती पर रखे अपने पाँवों को घूर रही थी। उसका सारा शरीर काँप रहा था, थरथरा रहा था। उसकी सारी ताकत ऐसे लगी हुई थी जैसे वह अपने ऊपर आते हुए किसी दौरे को रोक रही थी। उसकी साँस रुक सी गई थी और अंत में उसके मुँह से एक धीमी सी दर्दनाक आवाज निकली और जैसे दौरा थम गया।

अंत में उसने कहा, 'तुमने किया। तुमने डराया मुझे!'

मैंने उसे पकड़ लिया। सांत्वना दी।

उसके बाद वह फिर सहजरूप से खिलखिलाने लगी। और कुछ अधिक हँसती, खेलती थी, शायद इसलिये कि मुझ पर से उसके दौरे का असर उतर जाये।

अब इस दौरे को ही मैंने उसकी माँ की बात का मर्म जाना और उसकी सब विचित्र बातें मेरे सामने आईं।

वह बहुत कम खाती थी।

प्रायः अपने प्रकोष्ठ से उतरते-उतरते उसे दुपहर सी हो जाती थी।

वह द्वार बंद करके अकेली सोती थी।

वह मुझे अपने शरीर से चिपटा लेती थी। स्त्री से आलिंगन करना मुझे अच्छा नहीं लगता था, किंतु वह तो जैसे रोमांचित हो उठती थी। वह मेरे गालों पर चुम्बन अंकित कर देती थी।

इतना प्रेम करके भी वह अपने बारे में कुछ बताती नहीं थी।

वह मृत्यु और भूतों से बहुत डरती थी।

और उसे कभी-कभी दुख की छाया घेर लेती थी।

उसे दौरा भी आता था।

आज से पहले मैंने उसे गुस्सा होते हुए नहीं देखा था। पर गुस्सा तो वह बाद में हुई।

इसके बाद एक रोज मैं और वह बीच के विशाल प्रकोष्ठ की बड़ी खिड़की में खड़ी थी कि हमारा बौना आ गया। बौना एक कुबड़ा था जो दो बार साल में आता था। वह भण्ड था। अजीब सा वस्त्र पहनता था। उसका काम था हँसाना। मुझे उसे देखने में बड़ा मजा आता था। बल्कि कोन उसे नहीं छेड़ता था। और वह सबको हँसा-हँसाकर तरह-तरह से रिझाता था, प्रसन्न करता था, फिर अपना इनाम लेकर चला जाता था।

वह प्रांगण में आया। आज वह काली नुकीली दाढ़ी रख कर आया था और उसका चौड़ा मुँह उस काले रंग में बहुत फैला सा लगता था जिसमें जब उसके दाँत चमकते और वह हँसता तो बिलकुल मोटे लंगूर सा लगता। न जाने वह किस प्रकार के बस्त्र पहने था, क्योंकि इसमें सब मेल थे, यूनानी, कुषाण, वंगीय और काश्मीरी। उसका जादू का पिटारा उसके साथ था। उसके साथ एक बड़ा सा कुत्ता था जो उसके साथ-साथ चलता था।

कुत्ता न जाने क्यों प्रांगण में, जहाँ से वह खिड़की में हम दोनों

क देख सका, एकदम ऐसा चिल्लाया, जैसे रो दिया हो। वह आवाजें भी बड़े अपशकुन की थी।

कुबढ़ा बौना सामने आया। उसने अपने विचित्र ढंग से प्रणाम किया और फिर गाने लगा, और हालाँकि कुत्ता कभी-कभी रोता था, कुबड़े की मजाकिया हरकतें देखकर मुझे बड़ी हँसी आई।

तब वह खिड़की के पास अनेक बार हाथ जोड़ता-सा आ गया, उसने एक बड़ी लंबी वक्तृता झाड़ी जो निहायत मजाकिया थी कि मुझे बहुत ही हँसी आई।

वह अजीब-अजीब खेल दिखाता रहा।

उसने कहा, 'सुना है कि आजकल इन जंगलों में भूत डोलते हैं। यह खरीदिये। तांत्रिक ताबीज है। कभी असफल नहीं हो सकता। भूत कभी पास नहीं आयेगा। केवल तकिये पर लगा दीजिये। और भूत सामने आये तो आप आराम से पड़ी-पड़ी उसकी सूरत देखकर हँसती रहिये। टका सा मुँह लेकर भूत लौट जायेगा।'

तुरंत सुकुमारि ने एक खरीदा। मैंने भी खरीद लिया।

बौना हमारी तरफ देख रहा था। हम अब भी मजाक की हँसी हँस रहीं थीं। शायद सुकुमारि भी इसीलिये हँस रही थी। बौने की तेज आँखों में मुझे एक कौतूहल सा दिखाई दिया, न जाने उसने सुकुमारि के चेहरे में क्या चीज देखी थी।

वह झुका। उसने अपने थैले में देखना शुरू किया और फिर एक अजीब-सा लोहे का औजार निकाल कर कहा, 'देखिये देवी। और तो मैं कितना चतुर, महान और कुशल हूँ यह आर्य्यावर्त्त और दाक्षिणात्य में ही नहीं, ईरान, यूनान, रोम और चीन तक विदित ही है। फिर भी मैं एक बात कहूँ। मैं दाँतों का बड़ा अच्छा इलाज करता हूँ। अरे चुप रह!' उसने मुड़ कर कुत्ते से कहा, 'भौंके ही जा रहा है कमबख्त। तू ही व्यापार कर ले, या मुझे ही कर लेने दे।' फिर स्वर बदलकर उसने कुत्ते से कहा, 'समझ गये, समझ गये, डर मत!' फिर मुझसे मुड़कर

कहा, 'देवी! आपकी साथिन है न? इनके दाँत कितने पैने हैं। लंबे हैं नुकीले हैं, हैं न दो! सुई से हैं न?' हहहह वह हँसा, 'मेरी आँखों से कुछ नहीं बच सकता! हो सकता है देवी क्रुद्ध हो जायें, पर मैं उन दाँतों को घिस दूँगा, पता भी न चलेगा, फिर वे मछलियों के से न रहेंगे संुदरी के से हो जायेंगे। हा हा हा ..नाराज तो नहीं हो गईं देवी?'

सुकुमारि क्रोध से वहाँ से हट गई।

'कुबड़ा? मेरी बेइज्जती कर रहा था। तुम्हारे पिता कहाँ हैं? मैं उनसे इसे दण्ड दिलवाऊँगी। मेरे पिता होते तो इसे खंभ से बँधवा कर वह कोड़े लगवाते कि इसकी छाल उड़ जाती और इस पर कुत्ते छुड़वा देते।'

वह खिड़की से हट कर वहीं पास की कुर्सी पर बैठ गई और जैसा क्रोध आया था वह तुरंत ही उड़ गया और ऐसा लगा जैसे वह उसके बारे में सब कुछ भूल गई थी।

संध्या के समय जब पिता आये तब वे बहुत उदास थे। उन्होंने कहा कि फिर एक भूत के कारण एक व्यक्ति के प्राण चले गये हैं। उनका विचार था कि वह भूत था या कोई रोग विशेष ही था, यह निश्चय से नहीं कहा जा सकता था।

'यह सब,' मेरे पिता ने कहा, 'प्राकृतिक कारणों के द्वारा होता है। यह गरीब लोग बिचारे छूत की बीमारी से परेशान हैं और अपने अंध-विश्वासों के कारण एक दूसरे में उसे फैलाते हैं और यह समझते हैं कि भूत आया है।'

'लेकिन वही चीज सबको क्यों डराती है?' सुकुमारि ने पूछा।

'कैसे?' पिता ने पूछा।

'यही कि कुछ वैसी ही चीज मुझे भी डराती है। शायद वह सच ही हो!'

'हम भगवान के हाथ में हैं। उसकी इच्छा और आज्ञा के बिना कुछ भी नहीं हो सकता,' मेरे पिता ने कहा, 'और रोग देश पर आता

है वह तो प्रकृति है ; प्रकृति ! सब चीजें प्रकृति से निकलती हैं। क्यों, है न ? स्वर्ग, पृथ्वी, पाताल, सब प्रकृत्यानुसार काम करते हैं ! मैं तो यही मानती हूँ !' उसने कहा।

पिता बोले, 'प्रारंभ से अंत तक वह परमात्मा ही है। जो उसे मानते हैं उनका आदि-अंत सुलझा हुआ है ! वही हमारी सृष्टि करने वाला है।'

वह चुप हो रही।

'आज मैंने सुरेण और आर्किमिडीस को बुलाया है,' पिता ने कहा, 'उनसे राय लेना ठीक होगा। जो भी रोग वह बतायें।'

'उनसे मुझे तो कोई लाभ नहीं हुआ।'

'तुम बीमार हो ?' मैंने पूछा।

'पहले से भी अधिक।'

'काफी दिन से ?'

'हाँ।'

'तब तो तुम छोटी होगी !'

उसने स्नेह से मेरी कमर में हाथ डाल कर कहा, 'तुम तो सदा ही मजाक करती हो।' और मुझे प्रकोष्ठ के बाहर ले आई।

पिता काम में लग गये।

'पिता डराते क्यों हैं ?' उसने पूछा।

'नहीं तो, डराते कब हैं ?'

'सिंधुजा तुम डरती हो ?'

'अगर मुझे ऐसा खतरा लगे तो जरूर डरूँगी।'

'कैसा ?'

'जैसा गाँव वालों को लगता है।'

'क्या तुम मरने से डरती हो ?'

'सब डरते हैं।'

'लेकिन संग मरने में ? ताकि फिर साथ रह सकें ? लड़कियाँ

तो रेशम के कीड़े की तरह इस दुनिया में रहती हैं। बाद में वे तो तितली बन कर उड़ जाती हैं। उनका आना-जाना ही क्या ?'

दिन के ढलते समय पितृव्य सुषेण और आर्किमिडीस आये और पिता से एकांत में बातें करते रहे।

वे लोग हँसते हुए लौटे।

'तुम तो सुषेण सब समझते हो ?'

'नहीं,' उसने कहा।

आर्किमिडीस गंभीर थे !

मुझे और कुछ सुनाई नहीं दिया ! वे लोग आगे निकल गये थे।

सध्या आ गई। हम विशाल प्रकोष्ठ में बैठे थे। तब ही चित्रकार हारीत का पुत्र सुमुख आया जो पुराने चित्रों को धोकर ज्यों का त्यों बना लाता था। उसकी गाड़ी में कई चित्र थे जो पिता ने उसे दे दिये थे। उसे तुरन्त वहीं बुला लिया गया और हम सब ने उत्सुकता से उसे भीतर आकर प्रणाम करते देखा। वह साँवला सा था। पहले उसे भोजन कराया गया क्योंकि वह विदिशा से आया था। तब वह अपने कारीगरों से बकस उठवा लाया और चित्र निकाल-निकाल कर दिखाने लगा।

दीपकों की बत्तियाँ उठा दी गईं और काफी लोग वहाँ जमा हो गये। अनेक दीपों से काफी उजेला सा हो गया।

सुकुमारि भी वहीं बैठी थी और हम एक के बाद दूसरा चित्र देखते गये। यह पुराने लोगों की तस्वीरें थीं जिन्हें उस समय के कुशल चित्रकारों ने अंकित किया था।

मेरी माँ का चित्र भी था, जिसे पद्मा ने मुझे दिखाया। यूची परिवार की वह स्त्री, उसे देख मेरा मन कितना स्नेहसिक्त हो उठा। मैं उसे देखती ही रही। माँ की स्मृति थी, पर बहुत हल्की सी। आज वह सब सजीव हो उठी।

पिता के पास सूची थी, जिससे वे चित्रों को मिलवाते जा रहे थे।

वे चित्र काफी पुराने भी थे और ज्यों-ज्यों नीचे के उठते पुराने समय के दिग्दर्शन होते जाते।

पिता ने कहा, 'एक चित्र मैंने नहीं देखा। नाम है... ...हाँ यूची रानी......साफ नहीं है। मैंने छोड़ दिया है।'

'यह लीजिये,' उस चित्रकार के पुत्र ने एक चार बालिश्त लंबी तस्वीर निकाली और प्रस्तुत की। चित्र कपड़ों पर बने और काठ के चौखटों पर टुके थे और पीछे की ओर तख्ता टुका था।

पिता ने कहा, 'यह तो पुराना चित्र है। कनिष्क के समय का है।'

चित्रकार के मुख पर गर्व था। उसने कहा, 'इसे बड़ी मुश्किल से साफ किया श्रीमंत! सहज नहीं था।'

चित्र देखा! बड़ी सुन्दर स्त्री थी। पर मैं चौंक गई। शकल सुकुमारि से मिलती थी। हू बहू!

मैंने कहा, 'सुकुमारि! अद्भुत! देखो तुम्हारा ही चित्र है! कितनी सुन्दर है, पिता! गले का तिल तक मौजूद है।'

पिता ने हँसकर कहा, 'हाँ मिलती तो है।' और वह ऐसे लगे जैसे टाल गये थे, उन्हें इस बात में कोई विशेषता ही नहीं लगी। और वे चित्रकार के पुत्र से बातें करने लगे। वे तो मोल-तोल कर रहे थे और मैं इस सादृश्य को सोच-सोच कर हैरान हो रही थी।

'पिता!' मैंने कहा, 'इसे मुझे दे दो। मैं अपने प्रकोष्ठ में टाँगूँगी।'

'जरूर', पिता ने कहा, 'तू ही ले ले। क्या सचमुच वह इतना ही सुन्दर है, जितना तू कहती है? तेरी मर्जी है तो ले ले। मुझे तो इतना नहीं जँचा।'

सुकुमारि को जैसे यह बात अच्छी नहीं लगी। वह ऐसे लगी, जैसे उसने सुना ही नहीं। वह पीछे झुकी, हाथों पर जोर देकर बैठी थी और सोचती हुई, मेरी ओर देखकर मुस्करा रही थी।

मैंने कहा, 'पिता! पढ़िये न? चित्र पर साफ तो लिखा है। यूची

रानी रिसुकुमा। सुनहले अक्षर हैं। है तो कनिष्ककालीन ही। पिता! माँ भी तो इसी कुल की थीं?'

'मैं भी हूँ,' सुकुमारि ने हँस कर कहा, 'बड़ा पुराना कुल है, अब इसके कोई और वंशज हैं क्या?'

'नहीं,' मैंने कहा, 'यूची परिवार का किला पास हीं है, खंडहर है। वे लोग आपस में ही लड़कर मर गये। बाद में तो वे बड़े नीच हो गये थे, दुश्चरित्र!'

'बड़ी अजीब बात है!' उसने कहा। सहसा उसने द्वार के बाहर देखकर कहा, 'कितनी सुन्दर चाँदनी छिटक रही है! चलो जरा उद्यान में टहल आयें!'

मैंने कहा, 'ऐसी ही रात में तुम यहाँ आई थीं।'

उसने मुस्कराकर, एक आह भरी!

उसके बाद हम एक दूसरे की कमर में हाथ डाले बाहर निकल पड़ीं। धीरे-धीरे हमें दूर से पुल दिखाई देने लगा।

सुकुमारि ने कहा, इतनी धीरे कहा जैसे फुसफुसा रही थी, 'तो तुम उस रात की सोच रहीं थीं जब मैं यहाँ आई थी, क्या तुम मेरे आने से खुश हो?'

'बहुत, सुकुमारि!' मैंने कहा।

'और तुम मेरी कैसी शक्ल वाली तस्वीर अपने कमरे में टाँगना चाहती हो?' उसने मेरी कमर में हाथ डालते हुए कहा। और उसने अपना गोरा गाल मेरे कंधे पर रख दिया।

मैंने कहा, 'सुकुमारि! तुम कितनी अजीब हो! जिस दिन भी तुम अपनी कहानी सुनाओगी उस दिन कितना अजीब सा होगा।'

उसने मेरा गाल प्रेम से चूम लिया।

'सुकुमारि! निश्चय ही तुम किसी से प्रेम करती हो। और तुम्हारा वह प्रेम अब भी चल रहा है!'

उसने कहा, 'तुम से ही तो प्रेम करती हूँ मैं!'

उस समय चाँदनी में वह कितनी सुन्दर लग रही थी। उसने अपने मुख को मेरे कंधे पर छिपा लिया और जैसे वह काँप उठी। और उसने फुसफुसा कर कहा, 'मेरी सिंधुजा! तुम मेरी हो, मैं तुम में जियूँगी, तुम मेरे लिये ही मरोगी, मैं तुम्हें इतना चाहती हूँ।'

मैं चौंक गई। उसकी आँखों में जैसे आग थी।

और फिर मैंने देखा, उसका मुख विवर्ण था ऐसे जैसे भावहीन। फिर उसने जैसे उनींदे स्वर से कहा, सिंधुजे! मैं काँप रही हूँ। क्या यह सच है? शायद रात ठंडी हो गई है।'

'बरसात जो लगी है। हवा ठंडी है।'

'तो चलो भीतर चलो।'

'हाँ मुझे लगता है तुम्हारी तबियत ठीक नहीं है। तुम चल कर थोड़ी मदिरा पी लो। गर्मी आ जायेगी।'

'चलो यही ठीक है।'

हम भीतर आ गये। द्वार पर रुक कर वह फिर मुड़ कर देखने लगी।

'क्या देख रही हो।'

'मुझे लग रहा है...'

'क्या?'

'शायद, तुम्हारे साथ यह चाँदनी मैं अंतिम बार देख रही हूँ।'

मैं घबराई। मैंने कहा, 'सुकुमारि।'

वह जैसे जागी।

उसने कहा, 'क्या है सिंधुजे!'

'कैसी तबियत है तुम्हारी?'

'अच्छी है?'

'मैं तो डर गई थी।'

'क्यों?'

'मुझे लगा कहीं तुम्हें वही बीमारी तो नहीं लग गई, जो आजकल फैल रही है।'

वह मुस्कराई।

'पिता बहुत बुरा मानेंगे।'

'क्यों?'

'कहीं तुम छिप जाओ।'

वह चुप रही।

मैंने कहा, 'दोनों पितृव्य बड़े कुशल चिकित्सक हैं।'

'मैं जानती हूँ, पर, मैं ठीक हूँ। मैं बिल्कुल ठीक हूँ। थोड़ी सी कमजोरी है और कोई बीमारी नहीं है।'

'तुम बहुत जल्दी थक जाती हो!'

'लेकिन फिर ठीक भी तो हो जाती हूँ।'

'क्या हो जाता है तुम्हें।'

'मैं खुद नहीं जानती।'

'मैं पितृव्य से कहूँगी।'

'नहीं, व्यर्थ है। मेहमान हूँ। इतना सब मुझे यहाँ मिल रहा है, यही क्या कम है? यह तो कोई बीमारी भी नहीं। थोड़ी कमजोरी है।'

उसके बाद कुछ विशेष घटना नहीं हुई। अब सुकुमारि बिल्कुल ठीक हो गई थी।

जब हम विशाल प्रकोष्ठ में आ गये जहाँ बुआ सुहासिनी कुछ व्यंजन लिये बैठी थी।

कहा, 'लो आओ बेटिओ। खाओ।'

'बड़ी भूख लगी है,' मैंने कहा। और खाने लगी। किन्तु सुकुमारि ने कहा, 'नहीं मुझे भूख नहीं है।'

'थोड़ा सा तो खालो।'

'मैं माँग कर खा लेती सिंधुजे!'

इस तरह उसने मेरा अनुरोध टाल दिया। मैंने तो आराम से

खाया। फिर हम लोग शतरंज खेलने लगे, यह खेल नया ही चला था और सब ही लोग इसमें बहुत रुचि रखने लगे थे।

पिता भी आ गये। उन्होंने भी चाल बताई। वे फिर सुकुमारि के पास ही जाकर बैठ गये। फिर कहा, 'कुछ तुम्हारी माँ का भी संवाद आया?'

'नहीं,' उसने कहा।

'तुम्हें यह तो पता होगा कि वे कहाँ से पत्र डालेंगी।'

'मैं कैसे बताऊँ?' उसने कहा।

उसकी बात के दोनों अर्थ थे—कि वह जानती नहीं,—या कि वह बताना नहीं चाहती।

पिता चुप रहे।

सुकुमारि ने कहा, 'मैं अब आप लोगों से बिदा लेने का विचार कर रही हूँ।'

'क्यों?'

'आपने इतनी दया की है। मैंने आपको बहुत कष्ट दिया है। कल मैं रथ पर जाऊँगी। माँ को ढूँढूँगी। मुझे यह मालूम है कि वह कहाँ गई हैं, पर मैं वह बता नहीं सकती।'

'लेकिन यह कैसे हो सकता है,' पिता ने कहा, 'हम तुम्हें कैसे जाने दे सकते हैं। मैं तो तुम्हें तुम्हारी माँ की सुपुर्दगी में ही दे सकता हूँ। उसने हम पर विश्वास करके तुम्हें यहाँ छोड़ा है।'

'फिर भी'...

'फिर भी क्या? वह आयेगी तो हम क्या उत्तर देंगे?'

सुकुमारि चुप रही। पिता कहते गये, 'मैंने तो वैसे ही पूछा था।'

बात खत्म हो गई।

सुहासिनी ने कहा, 'आप तो उसके बारे में बताने वाले थे न?'

'हाँ,' पिता ने कहा, 'वह बीमारी अब तो अपने पड़ोस में ही आ गई है। कल एक वणिक की स्त्री को उसी बीमारी ने मार डाला।

यही मुझे चिन्ता थी। अब सुकुमारि है। मुझे तो इसकी माँ को जवाब देना होगा। खैर! जो भगवान चाहेगा वही तो होगा। पर मैं इसे अकेली नहीं जाने दूँगा। इसकी माँ की खबर आये, जो वह कहे, मैं तो वही करूँगा। अगर यह चुपचाप चली जायेगी तो मुझे तो बड़ा दुख और ग्लानि भी होगी।'

'मैं आभारी हूँ,' उसने लजाकर कहा, 'इतनी दया मुझ पर कौन करेगा। मैं जीवन में इतनी प्रसन्न नहीं रही, जितनी इस सुन्दर स्थान में, दया, ममता की छाया में, आपकी पुत्री के संसर्ग में रही हूँ।'

पिता ने उसकी बात सुन कर प्रसन्नता से उसका सिर थपथपाया।

मैं रोज की तरह आज भी उसे उसके कमरे तक पहुँचाने आई। वहाँ जब वह लेटने की तैयारी करने लगी उससे मैंने कहा, 'सुकुमारि!'

उसने मेरी ओर देखा।

'सच बताओगी!'

'पूछो!'

'तुम कभी अपनी गुप्त बात मुझसे कहोगी?'

वह मुस्कराई और मुस्कराती ही रही। बोली कुछ नहीं। मुझे वह अच्छा नहीं लगा।

मैंने कहा, 'इस बात का तुमने उत्तर नहीं दिया। शायद तुम दे नहीं सकतीं। शायद देना नहीं चाहती। मुझे पूछना ही नहीं चाहिये था।'

'तुम्हारा अधिकार है सिंधुजा। तुमने पूछा। तुम पूछ सकती हो। तुम नहीं जानतीं मैं तुम्हें कितना चाहती हूँ। मैं किसी भी चीज को तुमसे अधिक नहीं चाहती। लेकिन मैंने कसम खा रखी है। इसीलिए अपनी कहानी तुम्हें बता नहीं सकती। तुम मुझे निष्ठुर, नीच या स्वार्थी कहोगी, किंतु प्रेम सदैव स्वार्थी होता है। जितना ही वह तीव्र होता है, उतना ही उसका स्वार्थ भी उत्कट होता है। तुम्हें नहीं मालूम मुझमें कितनी ईर्ष्या है। मृत्यु तक तुम्हें मेरा होना होगा सधुजा! और नहीं तो तुम मुझसे घृणा करोगी। वह अस्थिर प्रीति होगी। जीवन के पार

'क्या बक रही हो ?' मैंने कहा।

'बक रही हूँ ?' उसने कहा, 'मूर्ख ही तो हूँ। मुझमें अवगुण बहुत हैं, मैं बहुत लाड़ से पाली गई हूँ। मैं कभी दब कर नहीं रही सिंधुजा ! तुमने कभी कुषाणों की पुरानी परम्परा का नृत्य किया है ?'

'नहीं। क्यों ! मैंने बचपन में देखा था ! मुझे तो याद भी नहीं। अब कोई वैसा उत्सव ही नहीं हुआ।'

'बहुत दिन पहले मैंने उसे देखा था।'

मैं हँस दी।

'तुम क्या इतनी पुरानी हो ! कुछ ही दिन की तो बात होगी !'

'नहीं सिंधुजा। ध्यान से याद करती हूँ तो सब याद आता है। सब धुँधला सा लगता है। पर उसके पार उजाला है। उस दिन क्या हुआ था जिसने चित्र को धुँधला कर दिया ! उसके रंगों को फीका कर दिया ! मुझे मेरे बिस्तर में मारा गया था। देखो यहाँ छुरा लगा। तब से फिर मैं पहले जैसी नहीं हो सकी।'

उसने वक्ष खोल कर दिखाया।

'दाग तो है,' मैंने कहा।

'मैं क्या झूठ कहती हूँ !'

'तुम क्या मरणासन्न हो गई थीं ?'

'हाँ, करीब करीब। कितना निष्ठुर प्रेम था वह ! अद्भुत ! उसने मेरे प्राण ही ले लिये थे। प्रेम बलिदान लेता है। कोई बलिदान रक्त के बिना नहीं होता। जाने दो सिंधुजा। मुझे नींद आ रही है। उफ ! कैसे उठ कर दरवाजा बंद करूँगी अब ?'

वह अपने रेशमी बालों में हाथ घुमाये लेती थी, जिधर भी मैं चलती उधर ही उसकी मुस्कराती नजर मुझे देखती, जिसे मैं समझ नहीं सकी। के सिवाय मुझे कुछ भी दिखाई नहीं दिया। मैंने अनुभव किया कि वह जानवर हल्के से उछल कर बिस्तर पर चढ़ आया है। उसकी बड़ी आँखें मेरे मुँह के पास आ गईं। फिर मुझे लगा कि दर्द हुआ ! कैसा !

'वह कमजोरी है ?' मैंने पूछा।

'नहीं, नींद आ रही है।'

'अच्छा मैं जाती हूँ।'

जब मैं बाहर आई तब मुझे कुछ बेचैनी-सी थी।

मुझे याद आया। वह कभी प्रार्थना करती हुई मुझे नहीं दिखी। न किसी की पूजा ही करती थी। सुबह दुपहर में मिल जाती थी तब तो वह नीचे आती थी। तब तक पिता पूजा कर चुकते थे। मैं उन्हें फूल देती थी।

एक दिन बातों में ही मुझे अंदाज हुआ था कि वह बौद्ध थी, पुराने कुलों में बहुत से बौद्ध थे, जो सम्राट् कनिष्क के साथ ही बौद्ध हो गये थे। यूची के किले में कई बुद्ध मूर्त्तियाँ थीं, जिनकी अब कोई उपासना नहीं होती थी। वह धर्म पर कभी बात नहीं करती थी।

इधर मुझमें भी सिंधुजा की आदत आ गई थी। मैं भी उसी की भाँति डाकुओं की कल्पना करने लगी थी। और उसी की भाँति दरवाजा भीतर से बंद करके अपने प्रकोष्ठ में अकेली सोती थी।

तब मैं शैय्या पर लेट गई और सो गई।

दीप जल रहा था। दीप जलाकर सोने की मेरी पुरानी आदत थी।

उस रात मुझे एक अजीब स्वप्न हुआ।

पता नहीं वह स्वप्न था या दुःस्वप्न !

मैंने देखा कि मेरा कमरा बड़ा अँधेरा था ! बिस्तर के पैताने कोई चीज चल रही थी। वह क्या थी ! पता नहीं चला। लेकिन फिर मुझे लगा कि वह एक काला-सा बड़ा-सा जानवर था जो कि बहुत बड़ी बिल्ली जैसा था। वह दो-ढ़ाई हाथ लंबा था क्योंकि वह मेरे पलँग की लम्बाई के बराबर था। जैसे कोई जानवर पिंजड़े में घूमता है, वह उसी बेचैनी से कमरे में घूम रहा था। मैं चिल्ला न सकी, पर बहुत डर गई थी। उसके घूमने की तेजी बढ़ती जा रही थी और कमरे में और भी ज्यादा अँधेरा होता जा रहा था। इतना अन्धकार छा गया कि उसकी आँखों मृत्यु में भी यदि तुमसे घृणा करूँगी तो ? मेरी तृष्णा प्रेम चाहती है, अपनापन चाहती है।'

वही बचपन वाला।

लगभग एक-एक अंगुल की दूरी पर दो सुइयाँ मेरे गले के नीचे घुस गईं। मैं चिल्ला कर जाग उठी। कमरे में रोशनी थी। दीप जल रहा था। और मैंने देखा कि एक स्त्री मेरे पैताने खड़ी है। वह काले ढीले कपड़े पहने थी। उसके बाल उसके मुँह और कंधों पर पड़े हुए थे और वह पत्थर की तरह खामोश थी। बिल्कुल सन्नाटा था। वह जैसे साँस भी नहीं ले रही थी। ज्योंही मैंने उसे देखा, वह हटी और अब द्वार के पास पहुँच गई। फिर वह दरवाजा खोलकर बाहर चली गई।

मुझे जरा चैन आया। मैंने साँस ली। मैं हिली। पहले मैंने सोचा शायद सुकुमारि ने कोई मजाक किया हो। मैंने शायद द्वार बंद नहीं किया हो। मैं शीघ्रता से उठी और देखा, द्वार बंद था, वैसा ही जैसा मैंने साँकल चढ़ाकर किया था। डर के मारे मेरी हालत खराब हो गई। मैं बिस्तर पर चढ़ गई और चादर ओढ़ कर सिर को ढँक कर ऐसी पड़ी रही जैसे मैं मुर्दा हो गई थी। और यह हालत मेरी सुबह तक रही, जब पहली किरन आकाश में मचल उठी।

१०

वह भय था, कोई कल्पना नहीं। उसने मुझे भीतर तक झकझोर दिया और उसका आतंक सा छा गया।

मैंने सोचा।

बचपन में ऐसी ही तो सुइयाँ मेरे गले के नीचे घुसीं थी। उस दिन भी तो स्त्री आई थी।

उसका मुँह तो सुकुमारि जैसा था!

और इसका? बालों में दिखा कहाँ।

लेकिन बाल तो इसके रेशमी ही थे! वह काले वस्त्र पहने थी!

वह बिना द्वार खोले कैसे चली गई। मुझे तो द्वार खुलता हुआ दिखाई दिया था! क्या वह सब भ्रम था!

भ्रम! फिर मुझमें इतनी घबराहट और बेचैनी क्यों थी! समझ में क्यों नहीं आता! यह कैसी विचित्र उलझन है!

वह भय मेरे भीतर से निकल कर चला नहीं गया। भीतर उतर गया जैसे वह भय मेरे रोम-रोम में बिंध गया।

अगले दिन में एक पल को भी अकेली नहीं रही। मैं पिता से कह देती, लेकिन दो कारणों से रुक गई। एक तो यह डर था कि कहीं वह मुझ पर हँस कर मेरा मजाक न उड़ा दें। दूसरा यह था कि उनका स्वास्थ्य अच्छा नहीं था। जो कहीं वे यह समझ बैठते कि मैं भी बीमारी की रोगिणी हूँ जो इधर-उधर फैल रहा था तो उनकी चिंता की सीमा नहीं रहती और उनके बुढ़ापे पर बुरा असर पड़ता।

मैं सुहासिनी और पद्मा बूआ के साथ रही। दोनों ने देखा कि मैं घबराई हुई थी।

'क्या बात है सिंधुजा! बताती क्यों नहीं?'

'कुछ तो नहीं,' मैंने कहा।

'फिर तेरा चेहरा क्यों उतरा हुआ है?'

'मेरा चेहरा?'

'हाँ हाँ, छिपाती क्यों है?' पद्मा ने कहा।

अंत में मैंने बताया। सुहासिनी हँस दी, किंतु पद्मा गंभीर दिखाई दी।

सुहासिनी ने हँस कर कहा, 'तुमने सुना है?'

मैंने पूछा, 'क्या?'

'सुकुमारि जिस प्रकोष्ठ में ठहरी है उसके पीछे की ओर नींबू के वृक्षों के बीच में मार्ग है न?'

'हाँ।'

'वहाँ भूत आता है।'

'हिश,' पद्मा ने कहा, 'कौन कहता है ?'

'मुझसे जो माली कहता था।'

'क्या।'

'कि सुबह दो बार उसने वहाँ एक अपरिचित-सी स्त्री को घूमते देखा था। थी वही स्त्री। दोनों बार !'

'अरे उसका क्या है। वह तो बका ही करता है। वह तो बेवकूफ है।'

'बेवकूफ कहता है यह तो और भी ताज्जुब की बात है। वह बहुत डर गया है।'

मैंने कहा, 'सुकुमारि से न कहना ! उसकी खिड़की से तो वह रास्ता दिखाई देता है।'

उस रोज सुकुमारि और दिनों से भी देर में उतरी।

उसने आते ही कहा, 'मैं तो रात डर गई।'

'क्यों ?' मैंने पूछा।

'रात तो मैंने एक छाया देखी। लेकिन ज्यों ही बौने के तावीज पर हाथ रखा वह छाया लुप्त हो गई।'

'अच्छा तुमने उसे तकिये में लगा लिया था ?'

'हाँ सच। अगर वह न होता तो वह छाया शायद मुझे भी औरों की तरह गला घोट देती।'

हम सब भी भयभीत हो उठीं। मैंने कहा, 'रात तो मुझे भी भय हुआ था।'

सुन कर वह काँप गई।

'तुम्हारे पास तावीज था ?' उसने पूछा।

'नहीं। मैंने तो उसे रख दिया था। अब जरूर निकाल कर रखूँगी अपने पास।'

इससे मुझे चिंता में कमी दिखाई दी। तावीज को तकिये के नीचे रख मैं फिर न जाने कैसे साहस करके अकेली सो गई। रात आराम से

बीती। अगली रात भी चैन से कटी। लेकिन न जाने क्यों सुबह मुझे आलस सा लगा।

'मैंने कहा था न ?' सुकुमारि ने कहा, 'तुम चैन से सोती हो। मैं खुद खूब सोती हूँ। मैंने तो उसे चोली में रख लिया है। पर मैं नहीं मानती कि उसमें कोई मंत्र है। पर जड़ी-बूटी जरूर है जो दिमाग की कमजोरी को दूर करती है।'

'और वह शरीर पर असर डालती है ?'

'क्यों नहीं ? तुम समझती हो आत्मा तावीज से डर सकती है ? अरे यह तो खामख्याली हो जाती है न, उसे दिमाग से निकालती है। जड़ी अपना काम दिखाती है। इसमें जादू नहीं है। यह तो प्राकृतिक है।'

'हो सकता है।'

'तुम नहीं मानतीं ?'

'विश्वास नहीं होता।'

'विश्वास तो करने से होता है।'

कुछ रातें और बीत गईं। मैं अच्छी तरह सोती, लेकिन सुबह उठ कर थकान महसूस करती। मुझे लगा मुझमें परिवर्त्तन हो गया था। मन कुछ भारी सा रहता। मुझ पर एक विचित्र व्यथा छाती जा रही थी। मैं उसे दूर नहीं कर पाती थी। वह क्या थी ! मैं स्वयं समझ नहीं पाती थी। मृत्यु की धुँधुली सी आभास-छाया दिखाई पड़ने लगी। मुझे लगा धीरे-धीरे मेरा क्षय होता जा रहा था। पर वह उदासी मुझे मीठी लगती।

मेरी आत्मा को उसमें सांत्वना मिलती।

मैं यह नहीं मानती थी कि मैं बीमार थी। मैंने पिता से भी नहीं कहा, न चिकित्सकों को बुलवाया।

सुकुमारि मुझसे अधिक प्रेम करने लगी और उसका स्नेह मेरे प्रति प्रकट भी अधिक होने लगा। मैंने इसका आभास पाया कि जितना ही

मुझे वह अपने शरीर से चिपटाती, मुझमें सनसनी सी होती और शक्ति खिंचती हुई लगती। मैंने स्त्रियों से सुना था कि विवाह न होने पर तरुणी को तरुणी का स्पर्श वासना की भावना देता है। इस विचार से मुझे लज्जा हो आई, और इससे मुझे धक्का सा भी पहुँचता था।

जो हो, अनजाने ही मैं इस तरह अपनी अद्भुत बीमारी में काफी आगे बढ़ गई थी।

पहले जो एक मीठी अनुभूति थी, अब वह भयानक लगने लगा, ऐसी कि वह मेरे लिये कल्पनातीत-सी हो गई। अब मुझे डर लगता और डर में एक आकर्षण सा लगने लगता।

यह क्या था?

क्यों? मैं किधर जा रही थी?

यह किस रास्ते पर मेरा जीवन जा रहा था?

भय कि वासना? वासना कि विनाश! विनाश कि वीभत्सा!!

जब मैं नींद में होती तो कुछ अजीब सी सनसनी होती और ऐसे धूमिल भाव आते कि वे मेरे सामने कभी साफ नहीं होते। ऐसा लगता जैसे मैं ठंडे पानी में नहाने में फुरफुरा उठी होऊँ। मैं नदी में तैर रही हूँ। कहाँ? फिर ऐसे स्वप्न आने लगे जिनका अन्त ही नहीं होता था। और यह सब इतना अस्पष्ट होता कि मैं उनमें देखे स्थान और व्यक्तियों को फिर कभी याद नहीं कर पाती थी। लेकिन उनकी एक भयानक छाप मुझ पर छूट जाती थी। और उनके जाने के बाद मैं बहुत थक जाती। बहुत थक जाती। उन सपनों के चले जाने के बाद मुझे लगता कि मैं कहीं अंधकार में बहुत एकांत में थी, वहाँ मैं ऐसे लोगों से बोली थी, जिन्हें मैं देख नहीं सकी थी, और वहाँ एक स्त्री स्वर सुनाई देता जो गंभीर स्वर में बहुत दूर से, एक ही स्वर में साफ आवाज में बोलती जिसकी आवाज से मुझमें वही एक सा भय पैदा होता, जो कि वर्णनातीत होता था। कभी-कभी मुझे लगता कोई हाथ मेरी गर्दन और गाल पर बहुत धीरे फिर रहा है। कभी लगता कि गर्म-गर्म होंठ मेरे गाल के

चुम्बन ले रहा है, खूब चूम रहे हैं। और फिर वे होंठ मेरे गले पर उतरते, चूमते-चूमते, मगर गले पर एक ही जगह जाकर रुक जाते। मेरा दिल जोर से धड़कने लगा, मेरी छाती उठती-गिरती, क्योंकि मैं लम्बी साँस लेने लगती, फिर मैं रोती, जैसे सुबकती, क्योंकि मुझे लगता मेरा दम घुट रहा था और फिर भय होता, भयानक भय और तब मैं मूर्च्छित हो जाती।

इस हालत में तीन दिन बीत गये, तीन सप्ताह बीत गये। अब मेरा चेहरा उतर गया था। मैं पीली पड़ गई थी और मेरी आँखों के नीचे गड्ढा-सा दिखने लगा था। और अब मेरी सुस्ती बिल्कुल प्रकट हो गई थी।

बहुधा पिता मेरे स्वास्थ्य के बारे में पूछते। लेकिन मैं दृढ़ता से यही कहती कि मुझे कोई बीमारी नहीं है। एक तरह से मैं ठीक भी थी, क्योंकि मुझे कोई शारीरिक व्याधि नहीं थी। मुझे तो दिमाग़ी परेशानी थी, ज़्यादा से ज्यादा उसके लिये चिकित्सक कह देते कि स्नायविक है। मगर फिर? अतः मैंने इन सब को अपने तक ही रखा।

मैं जानती थी, या कहूँ समझती थी यह वह चीज़ नहीं है जिससे किसान आस-पास में मर रहे थे। उन्हें तो भूत दिखाई देता था! यहाँ भूत कहाँ था?

वे तो तीन दिन में ही चल बसते थे। यहाँ तो तीन दिन होते तो मैं क्या जीवित रहती।

यों छिपी हुई व्याधि बढ़ती रही और किसी की भी समझ में न आया कि मेरा स्वास्थ्य ऐसा गिरता क्यों चला जा रहा है, देखने में वे देखते ही थे कि मैं ठीक खाती-पीती थी, कोई कमी नहीं हुई थी। सब काम मेरे ठीक थे!

केवल ऐसा लगता था मैं बहुत थक गई हूँ। परन्तु काम करते समय मुझे कोई कठिनाई नहीं होती थी। न मैंने स्वयं कभी भी यह अनुभव ही किया कि मेरा चेहरा पहले की तुलना में पीला पड़ गया है।

सुकुमारि भी सपनों की शिकायत किया करती थी। लेकिन उसके सपने मेरी तरह के भयावने नहीं थे। मेरे तो उफ़! कितने डरावने थे। अगर मैं उस समय अपनी असली हालत समझती तो शायद अपने इलाज की चिंता करती। लेकिन मुझ पर जैसे नशा छा गया था। मेरी भावनाएँ अभिभूत हो गई थीं।

एक रात, मैंने सपने में वह आवाज़ उस स्त्री की वह आवाज़ नहीं सुनी, जो कि स्पष्ट सुनाई देती थी और रोज़ सुनाई देती थी। बल्कि यह एक नई कोमल और मधुर आवाज थी, लेकिन थी कड़कती हुई: तेरी माँ तुझे हत्यारी से सावधान करती है। उसी समय एक ज्योति सी जल उठी और ऐसी अचानक जली कि अँधेरा उजाला सा हो गया और मैंने उसे उजाले में देखा कि सुकुमारि ठोडी से पाँव तक रक्त से भींगी हुई मेरे पैताने खड़ी है। उसके सफेद रात को पहनने के कपड़े लाल हो गये हैं।

मैं भयानक चीत्कार करके जाग गई। मुझे लगा सुकुमारि की हत्या हो रही थी। मैं बिस्तर से कूदी और बाहर जाकर चिल्लाने लगी। सुहासिनी और पन्ना बुआ ने सुना और दौड़ी आईं। वहाँ सदैव दीप जलते थे। मुझसे उन्होंने ज्योंही मेरे भय का कारण जाना उन्होंने सुकुमारि के द्वार को खटखटाया। लेकिन भीतर से कोई जवाब नहीं आया। हमने दरवाजा जोर-जोर से पीटा, चिल्लाने लगे, मगर सब व्यर्थ गया।

हम डर गयीं क्योंकि द्वार भीतर से बन्द था। सब मेरे कमरे में आ गये और मैंने घन्टा बजा दिया। बड़ी जोर की आवाज गूँजी। पिता बाहर के भाग में थे। वहाँ तक आवाज नहीं जाती थी। बाहर जाने की हम लोगों की हिम्मत नहीं थी।

शीघ्र ही नौकर ऊपर भाग कर चढ़ आये। उनकी आवाजें सुन कर हम सब निकले और फिर सुकुमारि के द्वार पर खड़खड़ाना शुरू किया। जब कोई उत्तर नहीं आया तो मैंने साँकल काट देने की आज्ञा दी। तुरंत उन्होंने उसे लोहे की छेनी से काट दिया। मुझे ताज्जुब हो रहा था कि

मैंने विनीत स्वर में उसे लौट आने का, छिपी जगह से निकल आने को पुकारा कि ऐसा मजाक अच्छा नहीं होता।

यह सब भी बेकार हो गया।

अब हमें निश्चय हो गया कि वह कमरे में नहीं थी।

'पर वह बाहर कैसे जा सकती थी?'

'बगल के कमरे को देखो,' सुहासिनी ने कहा।

वहाँ देखा। उधर एक द्वार था जिस की साँकल गिरी थी।

शायद!

लेकिन यह रास्ता!

इधर से तो कोई जाता नहीं।

यह तो कहते हैं कि एक गुप्त रास्ता है!!

इस में वर्षों से कोई गया नहीं।

क्योंकि इसका अंत एक गुफा में ले जाकर छोड़ता है।

यह खुला कैसे है?

इसमें सदैव ताला रहता था न?

यह गुप्त रास्ता कहाँ है यह तो सीढ़ी से उतारता है। गुप्त रास्ते पर तो अब भी देखो भारी ताला लगा है।

लगा तो है।

ठीक है इधर से ही जा सकती है।

पर यह तो उधर से बंद है।

रात का तीसरा पहर इसी तरह की बातें करते निकल गया। हमने रात सुहासिनी बूआ के प्रकोष्ठ में बिताई।

अगले दिन तो सारे किले में सनसनी फैल गई। हर जगह ढूँढ़ी गई। मैदान, जंगल, झाड़, पेड़, बाग, इमारत कहाँ नहीं ढूँढ़ा गया?

पिता कहते थे, 'उसकी माँ आयेगी तो मैं उससे क्या कहूँगा?'

दुख से मेरा गला भर आया था।

सारी सुबह इसी तरह बीत गई। दुपहर हो गई। कोई खबर नहीं मिली। मैं सुकुमारि के कमरे में गई तो मैं अपनी आँखों पर विश्वास नहीं कर सकी। सुकुमारि वहाँ बीच में खड़ी थी। उसने मुझे चुपचाप बुलाया। उसके चेहरे पर बड़ा भारी भय दिखाई देता था।

मैं दौड़ कर उससे आनंद से चिपट गई। मैंने घंटा अपने कमरे में जा बजाया। सब आ गये और सबने एक लंबी साँस छोड़ी। पिता की चिंता घटी।

मैंने कहा, 'सुकुमारि! क्या हुआ तुम्हें? हम तो मरे जा रहे थे। तुम कहाँ चली गई थीं! और लौट कर कैसे आई।'

उसने कहा, 'कल की रात अद्‌भुत रात थी।'

'कैसे?' मैं चिल्लाई—'समझा कर कहो।'

उसने कहा, 'रात आधी के लगभग थी जब मैं रोज की तरह सोने को लेट गई और दरवाजा भीतर से बंद था। मैं खूब सोई। गहरी नींद थी। लेकिन अभी जग कर देखती हूँ कि कुन्डी कटी पड़ी है। यह सब मेरे जाने बिना कैसे हो गया? काफी शोर मचा होगा और मैं तो बहुत जल्दी जग जाती हूँ। कोई मुझे जगाये बिना बिस्तर से कैसे ले जा सकता था? मैं तो जरा से इशारे से जाग पड़ती हूँ।'

सबने सुनकर आश्चर्य किया। पिता टहलने लगे। उन्होंने नौकरों को छुट्टी दी और इधर-उधर घूमने लगे, वहीं कमरे में। मुझे क्षण भर लगा कि सुकुमारि ने बहुत ही चतुरता से उनकी ओर एक बार देखा, ऐसा कि मुझे वह ठीक नहीं लगा।

जब मैं, सुहासिनी, पद्मा और पिता ही सुकुमारि के पास रह गये तो पिता पास आये और कहा, 'बेटी! मैं एक सवाल पूछ सकता हूँ?'

'क्यों नहीं', उसने कहा, 'पूछिये। आप ही के आसरे तो मैं यहाँ पर हूँ। मैं सब बता दूँगी। लेकिन मुझे कुछ भी नहीं मालूम। पर उन बातों को न पूछिये जो माँ ने मना किये हैं।'

'वह नहीं पूछूँगा।'

'तो' ।

'कल रात की कहता हूँ । तुम बिस्तर से उठाई नहीं गई, लेकिन वहाँ थी नहीं । यही न ?'

'जी हाँ ।'

'कमरा तुम्हारे जाने के बाद ज्यों का त्यों पाया गया था । थी न यही बात ?'

'सब कहते हैं ।'

'ठीक है, ठीक है,' पिता ने कहा, 'द्वार भीतर से बंद ही था न ?'

'पर मैं आई थी तब खुला था ।'

'मैं पहले की बात पूछता हूँ ।'

'वह तो यही बता सकते हैं ।'

'क्यों यही बात है न ?' पिता ने मुझसे पूछा ।

मैंने कहा, 'बंद ! ऐसा बंद कि कुण्डी काटनी पड़ी । दरवाजा पीट-पीटकर हार गये । लोहे से लोहा काटा गया, पर भीतर से कोई जवाब तक नहीं आया ।'

'अच्छा !' सुकुमारि ने आश्चर्य से कहा, 'और मेरी नींद खुली ?'

'नींद तो तब खुलती जब तुम यहाँ होती ?'

'पर मैं तो यहीं जगी थी ।'

'यही तो अचरज है ।'

लेकिन सुकुमारि की आँखों से लगा वह इस बात को टालना सा चाहती थी ।

पिता ने कहा, 'एक बात बताओ बेटी ।'

'जी ।' उसने कहा ।

'क्या तुम कभी नींद में चलती थीं, किसी ने ऐसा कभी कहा था ?'

'मुझे होश सँभालने आने पर तो याद नहीं पड़ता ।'

'बचपन में तुम नींद में चलती थीं ?'

'हाँ बचपन में तो,' उसने याद करके कहा, 'मेरी दाई जरूर ऐसा कहा करती थी।'

मेरे पिता ने मुस्करा कर सिर हिलाया।

'बस हो गया,' उन्होंने कहा।

'क्या हो गया ?' मैंने पूछा।

'हुआ यह कि यह नींद में उठी और चल पड़ी। नींद में आदमी यह तो जानता नहीं कि कहाँ जा रहा है ! वह उधर न मुड़, भीतर मुड़ गई और उस रास्ते से निकल गई जो बाग में उतार देता है। अगर वहाँ छज्जा होता तो गिर जाती। सीढ़ी थी तो उतर गई। इसने उस दरवाजे को भीतर से नींद में खोला, बाहर से बन्द कर दिया। पर यह उस वक्त नींद में थी ! बाग इतना बड़ा है उसे खोजना असंभव है। समझीं ?'

'यह तो ठीक है, मगर ?' उसने कहा।

'नहीं पिता !' मैंने कहा, 'यह तो यहीं मिली हैं और हमने क्या इस जगह को छान नहीं मारा।'

'ठीक कहती है तू,' पिता ने कहा, 'ज्यों ही तुम ढूँढ़ कर गये यह असली रास्ते से नींद में ही लौट आई और बिस्तर पर पड़ रही। जब जागी तो स्वयं अपने पर आश्चर्य हुआ। ऐसा होता है बेटी। मैंने ऐसे लोग देखे हैं।'

सुकुमारि मुस्करा दी। वह बहुत ही सुन्दर दिख रही थी।

मुझे लगा पिता मेरी और उसकी चुपचाप तुलना कर रहे थे और उन्होंने मुँह फेर कर कहा, 'यदि मेरी सिंधुजा का स्वास्थ्य भी ठीक हो जाता !'

वे चले गये। हमारी उत्सुकता मिट गई।

घर में प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। ऐसा लगा जैसे सिर से बोझ उतर गया। लेकिन सुहासिनी ने कहा, 'पद्मा देवी। माली कहता था उसने फिर वही स्त्री देखी थी।'

'वह पागल है सुहासिनी। तुम क्यों इस लड़की को डराया करती हो ?'

उनकी आँखों में जैसे सुहासिनी के लिये इशारा था कि इस विषय में सिंधुजा के सामने नहीं, अकेले में मुझे सब कुछ बता दिया करो।

सुहासिनी बनावटी हँसी हँस दी और पद्मा भी किन्तु उनकी आँखों में एक छाया थी जो मुझसे छिपी नहीं रही।

पर रात को भी सुकुमारि ने किसी को भी कमरे में सोने नहीं दिया। पिता ने दोनों द्वारों के बाहर दो-दो नौकर सुला दिये कि कहीं वह फिर सोते में न चल पड़े।

वह रात आराम से बीत गई।

प्रातःकाल पितृव्य सुषेण और आर्किमिडीस आये। उनके साथ उन के एक मित्र थे जो काश्मीर से आये थे। उनका नाम था हलायुध। वे भी चिकित्सक थे। बातचीत के दौरान में प्रचलित बीमारी का भी जिक्र छिड़ा और सुनते ही वे चौकन्ने हो उठे। पता नहीं उनमें क्या बातें हुई !

सुहासिनी और पद्मा मुझे वहाँ ले गई जहाँ हलायुध गम्भीर बैठे थे। उनके केश श्वेत थे।

उनके पूछने पर मैंने अपनी सारी कथा कही। ज्यों-ज्यों मैं सुनाती गई वे गम्भीर होते गये। जब मैं कह चुकी मैंने देखा उनकी आँखों में भय की छाया थी, जिसे उन्होंने छिपाने का प्रयत्न किया।

फिर उन्होंने मेरे पिता की ओर रहस्यमय दृष्टि से देखा।

मुझे हटा दिया गया। मैंने द्वार से देखा वे बड़ी ही गम्भीरता से बातें कर रहे थे। पता नहीं लेकिन बात पर इतना जोर दे कर बातें कर रहे थे। कमरा बहुत बड़ा था। मैं सुन नहीं सकी क्योंकि वे बहुत धीरे-धीरे बातें करते थे। मैं चलने लगी। पद्मा बूआ ने मुझे रुकने को कहा।

तभी पिता ने पुकारा, 'देवी पद्मा !'

'आई ?'

'पुत्री है ?'

'जी है।'

'उसे भेज दें।'

पद्मा ने मुझसे कहा, 'जाओ।'

'क्या बात है ?' मैंने पूछा।

'सब पूछती हो। जहाँ तुम हो वहीं मैं हूँ।'

'पर तुमने मुझे रुकने को कहा था न।'

'पिता की आज्ञा थी।'

लाचार मैं गई।

'पद्मा देवी,' पिता ने कहा !

'जी।'

'आप भले ही जायें।'

'अच्छी बात है,' कहकर सुहासिनी ने पद्मा को भेज दिया और आप रुक गईं !

पिता ने कहा, 'पास आओ बेटी।'

मैं पास चली गई।

'बैठो.' आर्य्य हलायुध ने कहा ?

मैं बैठ गई। मुझे बड़ा संकोच सा लग रहा था। परन्तु वे दोनों बड़े गम्भीर थे। अतः मैं भी गम्भीर हो गई। मुझे कुछ भय सा हुआ।

आखिर क्या बात थी जो इस तरह का सन्नाटा छाया हुआ था। मैंने पितृव्य सुषेण और आर्किमिडीस को देखा तो उनकीं आँखों में भी वही रहस्य की छाया थी।

मुझे लगा मैं अशक्ति का अनुभव कर रही थी। पर मुझे बुरा नहीं लगा। वे मेरे गुरुजन थे। पर मैं दृढ़ होकर बैठ गई।

पिता ने मेरी ओर हाथ करके कहा, 'सचमुच आश्चर्यजनक है। मैं स्वयं नहीं समझता। सुनो आर्य हलायुध क्या कहते हैं!'

'तुमने,' हलायुध ने मुझसे कहा, 'कहा था कि तुम्हें ऐसा लगा जैसे दो सुइयाँ घुसी थीं। कहाँ?'

'गले के पास।'

'किस जगह!'

'यहाँ।'

'पहली सपने की बात है न?'

'जी हाँ।'

'फिर नहीं हुई?'

'जी नहीं।'

'अच्छा अब भी वहाँ जलन होती है?'

'बिल्कुल नहीं।'

'अपने पिता को वह जगह दिखाओ।'

मैंने दिखाया।

'संकर्षण!' पिता ने आतंक से कहा, 'वासुदेव।'

'क्यों?' आर्किमिडीस ने पूछा।

'तुम देखो न?'

सुषेण और आर्किमिडीस ने देखा।

दुखमय दृष्टि से देखते हुए मुस्कराकर हलायुध ने कहा, 'देख लिया न?'

मैंने डर कर पूछा, 'यह क्या है?'

'कुछ नहीं बेटी,' हलायुध ने कहा, 'एक नीला सा जरा सा धब्बा है। फिर पिता से कहा, 'अब क्या करना चाहिये?'

मैंने पूछा, 'बहुत खतरा है इससे?' भय मेरे स्वर में था।

'नहीं,' हलायुध ने कहा, 'कोई कारण नहीं है कि तुम फिर से स्वस्थ न हो जाओ।'

'पर मैं स्वस्थ हूँ ।'

'नहीं, हम वैद्य हैं, हम जानते हैं ।' हलायुध ने कहा, 'वैसे तो तुम ठीक हो, और अभी से ठीक होने लग गई हो । पर बताओ ! यहीं से न तुम्हें दम घुटता हुआ लगता है ।'

'जी हाँ यहीं से ।'

'यहीं न तुम्हें वह सनसनाहट होती है जैसे तुम ठंडे पानी की धारा में उल्टी बही जा रही हो ?'

'शायद यही है ।'

'तनिक देवी को बुलाइये,' हलायुध ने मेरे पिता से सुहासिनी देवी की ओर देख कर कहा, जो द्वार के बाहर थी । शायद पहरा सा दे रहीं थीं ।

पिता ने कहा, 'अभी लीजिये ।'

उन्होंने उन्हें बुलाया ।

हलायुध ने सुहासिनी से कहा, 'तबियत तो इनकी ठीक नहीं है ।'

'फिर ?' सुहासिनी बूआ ने पूछा ।

'कोई खास दवा की जरूरत नहीं है । वह सब मैं ठीक कर ही दूँगा, लेकिन एक खास बात है ।'

'कहिये ।'

'वह काम तनिक कठिन है ।'

'आज्ञा दें । पूरा होगा ।'

'तो पुत्री को एक क्षण के लिये अपने से दूर न रखें । इस सयम मैं यही कहना चाहता हूँ । यह नितांत आवश्यक है ।'

'सुहासिनी देवी !' पिता ने याचना भरे स्वर से कहा ।

'आर्य !' उन्होंने कहा, 'आप क्या मुझे नहीं जानते ! और मेरे साथ पद्मा देवी हैं । वे क्या नहीं रहेंगी ।'

मैंने देखा वे तीनों संतुष्ट हो गये जो चिकित्सक थे । पिता की तो बात ही क्या !

पिता ने मुझसे कहा, 'और सिंधुजा ! तुमने सुना ! आचार्य ने क्या कहा ?'

'जी हाँ।'

'स्वीकार करती हो न ?'

'जी हाँ।'

'मैंने ऐसे रोगी काश्मीर में देखे हैं। वहाँ भी तो कुषाण परिवार हैं,' हलायुध ने कहा, 'मैं तो उनसे बहुत परिचित हूँ। आप मुझ पर विश्वास करिये।'

'मेरे यहाँ,' पिता ने कहा, 'इसकी एक सहेली है। वह भी अस्वस्थ है। उसे भी आप देख लेते। पर वह देर में आयेगी। आप संध्या के समय सब यहीं भोजन करके कृतार्थ करें।'

हलायुध ने स्वीकार कर लिया।

वे लोग रथ पर चले गये। उसी समय एक अश्वारोही आया जो पत्र लाया था।

पिता ने पत्र पढ़ा। वे चिंतित लगे।

मैं बढ़ गई। पूछा, 'पिता !'

'बेटी !'

'किसका पत्र है ?'

'महासेनापति मंदहास का।'

'कैसे हैं ?'

'अच्छे हैं। पत्र देर में आया है।'

'क्यों ?'

'वे शायद आ पहुँचे हैं।'

'पर वे तो आपके मित्र हैं !'

'हैं तो।'

'फिर आप उनके आने की सूचना पा कर प्रसन्न क्यों नहीं हुए ?

आपकी मुद्रा से लगता है कि आप उन्हें इस समय नहीं चाहते ? क्या मैं बहुत बीमार हूँ ?'

वे चुप रहे।

'बताइये पिता !' मैंने याचना की।

'नहीं बेटी तुम बीमार नहीं हो।'

'बिल्कुल ?'

'उतनी ही हो जितना आर्य हलायुध ने कहा।'

'पर मैं तो सब सुन नहीं सकी।'

'तुम्हारी बजाय मैंने सुना है। उनका विचार है कि यदि ठीक प्रबंध कर लिया गया तो कोई डर नहीं होगा। यही मैं सोचता था।'

'क्या ?'

'यही कि तुम बिल्कुल चंगी हो जातीं, तब महा सेनापति मंदहास आते।'

'क्यों ?'

'आनंद रहता।'

'लेकिन आचार्य ने मेरे बारे में बताया क्या ?' मैंने फिर पूछा।

'अरे तुमने तो सवालों की झड़ी बाँध दी। मैं क्या कोई वैद्य हूँ जो तेरे हर सवाल का जवाब दे सकता हूँ।'

आज मैंने पिता के मुँह पर रोष देखा। मुझे आश्चर्य हुआ। वे तो मुझे कभी भी नहीं डाँटते थे ?

पिता ने मुझे हृदय से लगाया और मेरा माथा सूँघा और कहा, 'बुरा मान गई ! बेटी। दो-एक दिन में तू सब जान जायेगी। मैं भी सिर्फ इतना ही जानता हूँ। तू परेशान क्यों होती है। तुझे मुझ पर विश्वास नहीं ?'

वे चले गये। मैं आश्चर्य से सोचती रही।

दुपहर को रथ आ गया। पिता ने रथ मँगाया था। तभी एक रथ में तीनों चिकित्सक आ गये। हलायुध यूची का किला देखना चाहते

थे। हमारा रथ बहुत काफी बड़ा था। हम सब एक में ही बैठ गये। तीन चिकित्सक, मैं, सुहासिनी और पिता, पाँच आदमी हो गये। पद्मा को घर छोड़ दिया गया क्योंकि वह सुकुमारि को लेकर आने वाली थी। पिता यूची के किले के पास एक तांत्रिक से मिलना चाहते थे, जो वहाँ आकर नया ही बसा था। सुकुमारि को यह सब कुछ भी नहीं मालूम था। वह अभी नीचे ही नहीं उतरी थी। 'सुकुमारि के लिये भी नयी बात हो जायेगी, चलो अच्छी सैर होगी।' पिता का विचार था। पिता ने पद्मा से कहा कि वह सेवकों को लेकर आये, खाने-पीने का सामान लेकर!

रथ चल पड़ा। दो घुड़सवार सुसज्जित अस्त्र-शस्त्र धारण किये पीछे चलने लगे।

सुहासिनी ने कहा, 'अभी तो इस रथ में दो आदमी और भी आ सकते हैं, आराम से!'

हलायुध ने कहा, 'बहुत पुराना है देवी! अब इतने बड़े रथ कहाँ बनते हैं। नगर में केवल राजमार्ग पर चल सकता है यह!'

'सो तो है,' सुषेण ने कहा। किंतु आर्किमिडीस दूर देख रहा था। बहुत दूर।

विदिशा का प्राकृतिक सौंदर्य वैसे तो विशेष नहीं, दूर पहाड़ियाँ दिखाई दे रही थीं जहाँ आपानक जुड़ते थे, विलासी युवक और युवतियाँ जहाँ जाया करते थे।

धीरे-धीरे इधर-उधर की बातें होती जा रही थीं कि तभी एक घुड़-सवार तेजी से आता दिखाई दिया। वह जब पास आ गया तो हमने देखा। रथ रुक गया। सेनापति मंदहास घोड़े से उतरे।

'आप?' पिता ने कहा।

'हाँ आर्य! मुझे मार्ग में बताया गया कि आप इस ओर गये हैं। मैंने सामान की गाड़ी लेकर सेवकों को आप के किले की ओर भेज दिया और स्वयं इधर आ गया।'

'स्वागत है ! स्वागत,' सबने कहा।

हमारे एक घुड़सवार ने उनका घोड़ा ले लिया और किले को पहुँचाने को लौट गया, ताकि वह शीघ्र लौट कर फिर आ जाये।

'आप भीतर विराजें !' सुषेण ने कहा।

वे आ गये। सबने उन्हें स्वागत किया। आर्य हलायुध का उनसे परिचय कराया गया। रथ फिर बढ़ा।

मैंने देखा तो उन्हें पहले था। अवश्य उनकी पुत्री को नहीं देख सकी थी। पर उनमें अब बहुत परिवर्त्तन आ गया था। वे दुबले हो गये थे। उनके मुख पर दुख की छाया थी और उनकी गंभीरता में जो नम्रता थी, उसकी जगह अब एक प्रतिहिंसा भरी कठोरता दिखाई देने लगी थी। वे ऐसे देखते जैसे उनकी दृष्टि भेद कर पार हो जाना चाहती थी। केवल दुख ही ऐसा परिवर्त्तन कर देता हो, ऐसा तो नहीं लगता था क्योंकि क्रोध उनके होठों को कुछ झुकाये रहता था, जैसे उनके ऊपर के दाँत नीचे के दाँतों के ऊपर जाकर बैठ गये थे, जो तभी होता है जब व्यक्ति अपने को किसी तरह काबू में करता है, उसके भीतर अधिक क्रोध होता है, अधिक बदला लेने की भावना होती है, लेकिन जैसे वह चुपचाप समय की राह देखता है।

रथ चलने पर सेनापति मंदहास बातें करने लगे और उन्होंने अपना दुखड़ा सुनाया। पुत्री की मृत्यु का वर्णन किया और फिर वे भयानक क्रोध से कुषाणों को बर्बर कहने लगे, किसी ने बुरा नहीं माना। क्योंकि वे स्वयं कुषाण थे। उन्होंने कहा कि नरक को पृथ्वी पर ले आने का श्रेय इन कुषाणों का ही है। वही बर्बता दूर करने को सम्राट कनिष्क बौद्ध हो गये थे, किंतु फिर जो सम्राट हुए वे उसे निभा न सके। सम्राट वासुदेव भी उसी बर्बरता को मिटाने के लिये भागवत संप्रदाय को स्वीकार किये हुए है। परंतु सब कुछ होते हुए भी कुषाण व्यर्थ ही अपनी उन जंगली परम्पराओं में उलझे हुए हैं। पता नही स्वयं देवता इस जघन्यता को कैसे सह लेते हैं। यह तो बहुत ही क्रूर बात है।

हममें से कोई समझा नहीं, कि पुत्री की मृत्यु का कुषाणों से क्या संबंध है ?

पिता ने कहा, 'आपकी बात कुछ असाधारण-सी लगती है महा सेनापति, यदि आपको बुरा न लगे तो कृपया हमें विस्तार से सुनाइये न ? क्योंकि आपने जो बात कही है, वही मेरे भीतर भी चक्कर काट रही है। पता नहीं आप किस दृष्टिकोण को लेकर कह रहे हैं।'

महा सेनापति ने कहा, 'मैं बता तो दूँ, किन्तु मुझे भय है कि आप उस पर विश्वास नहीं करेंगे।'

'क्यों ? ऐसा आप क्यों सोचते हैं ?'

'क्योंकि मैं और आप पहले एक से ही थे और दोनों प्रमाण के लिये प्रत्यक्ष को ही अधिक मानते थे। परन्तु मैं तो अब बदल गया हूँ और आप शायद वहीं होंगे।'

'आप देखिये तो !' पिता ने कहा, 'आपको याद नहीं रहा। मैंने प्रमाण में अनुमान का वह अंश सदैव स्वीकार किया है, जिसको प्रयोग के आधारों पर स्वीकार किया जा सकता है। मैं रूढ़िवादी नहीं हूँ।'

'यह सच है कि मैं पहले चमत्कारों में विश्वास नहीं करता था, जैसा कि आप कर लिया करते थे। किन्तु अब मेरा वह हठ टूट गया है। टूट गया है। क्योंकि बलात् ही मुझे विश्वास करना पड़ा है। मेरी सारी धारणाएँ उसके सामने काम नहीं आ सकी हैं।'

पिता ने एक बार महासेनापति की ओर ऐसे संदेह से देखा जैसे वे जाँच रहे थे कि कहीं महासेनापति का दिमाग तो खराब नहीं हो गया है !

सौभाग्य से महासेनापति इसे नहीं देख पाते थे। वे गंभीरता से सोच रहे थे और दूर की पहाड़ियों की ओर देख रहे थे।

हमारे रथ में बैल जुड़े थे, जो धीरे-धीरे ही चल पाते हैं। ऐसे बहुत दूर जाना न था, अतः सैर भी तो करनी थी, यही विचार करके पिता ने घोड़े नहीं जुतवाये थे।

'आप यूची किले के खंडहरों में जा रहे हैं ?' सेनापति ने कहा—'यह कैसा अच्छा संयोग है। मैं आप से यहाँ आकर यही कहता कि मुझे वह किला ले चल कर दिखाइये। मैं एक विशेष कारण से उसे देखना चाहता था। वहाँ एक कब्रिस्तान है, जो कुषाणों के लिये ही था। उसकी स्थिति कैसी है मैं उसकी जाँच करना चाहता हूँ।'

'बड़ी अजीब बात है,' पिता ने कहा, 'मैं तो समझा था आप अपनी कुल परम्परा के बल पर कहीं उस किले का स्वामित्व न माँग बैठें। परन्तु आपने तो कुछ और ही कहा।'

यद्यपि पिता मजाक कर रहे थे, फिर भी महासेनापति नहीं मुस्कराये। बल्कि वे क्रुद्ध और भयानक से दिखाई दिये। मुझे यह बात अजीब लगी हो, सो नहीं, सबने इसे लक्ष्य किया।

'जी नहीं,' सेनापति ने भारी स्वर से कहा, 'मैं वहाँ कुछ कुलीन कुषाणों की कब्रें खोदना चाहता हूँ।'

'जी !' पिता ने पूछा।

'हाँ। मैं एक पवित्र कार्य करना चाहता हूँ। और पृथ्वी को उन पिशाचों से मुक्ति दिलाना चाहता हूँ, जिनके कारण अच्छे-भले लोग रात को चैन की नीद नहीं सो पाते। उन्हें यह छिपे हुए हत्यारे मार जाते हैं। मेरे मन की न पूछिये। मुझे कैसी-कैसी अद्भुत बातें आपको बतानी हैं। ऐसी कि पहले मैं स्वयं उन पर तनिक विश्वास नहीं करता था। ऐसा भी भला क्या हो सकता !!! कितनी अद्भुत चीज है। पता नहीं भगवान इसे कैसे स्वीकार करते हैं ! वासुदेव ! वासुदेव !!

अब पिता चौंके।

न जाने क्यों हलायुध, आर्किमिडीस, सुषेण से उन्होंने आँखों में किस गुप्त जिज्ञासा का आदान-प्रदान किया।

पिता ने कहा, 'यूची का किला खँडहर है। सम्राट कनिष्क के समय में ही लोग यहाँ आकर बस गये थे। मेरी पत्नी उसी परिवार की थी। और यह मेरे मित्र आर्किमिडीस, इनका भी उस परिवार की एक महिला

द्वारा सम्बन्ध है। अब वहाँ कुछ नहीं है। वर्षों से उस किले के पास के गाँव में आग तक नहीं जलती, चूल्हे का धुँआ तक नहीं उठता। वहाँ कोई नहीं रहता।'

'सच है,' महासेनापति मंदहास ने कहा, 'मैंने उसके विषय में जो कुछ हो सका है, वह सब सुन लिया है। इतना जानता हूँ कि यदि मैं सब सुनाने बैठूँ तो आपको आश्चर्य होगा। लेकिन मैं आपको एक सिलसिले से सुनाऊँगा, ताकि आपको यह पता चले कि यह सब हुआ कैसे!'

वे रुके। फिर कहा, 'आपने तो मेरी बच्ची को देखा था!'

'बहुत सुन्दर और सरल थी वह,' पिता ने कहा।

'थी न?' सेनापति ने कहा।

'मुझे उसकी मृत्यु का गहरा आघात लगा था,' पिता ने कहा।

'और मुझ पर क्या बीती होगी मित्र!'

'पिता का हृदय मेरे है। मैं जान सकता हूँ।'

महासेनापति की आँखें भर आईं पर उन्होंने छिपाया नहीं। पिता का हाथ पकड़ कर कहा, 'हम बहुत पुराने मित्र हैं। मैं जानता था तुम मेरी वेदना का अनुभव करोगे। और तुमने ऐसा किया मित्र। मेरा जीवन सार्थक हुआ। मैं अकेला नहीं हूँ।'

हलायुध ने कहा, 'सेनापति! दुख न करें। मैं भी अपनी पुत्री को खो चुका हूँ।'

'दुख न करूँ?' सेनापति ने कहा। 'आपकी पुत्री कैसे चली गई?'

'बीमार पड़ गई।'

'वह और बात है आर्य! परंतु मेरी वेदना और ही है। वह साधारण बात होती तो मैं क्यों इतना विचलित होता! परन्तु यह तो बात ही और है! मैं तो अब अधिक नहीं जियूँगा, न जीना चाहता ही हूँ। किन्तु मरने के पहले, वासुदेव की कृपा से, जो मेरी इन सैनिक भुजाओं में शक्ति है, उसे मैं संसार के भले के लिये, उन दैत्यों पर प्रयोग करना चाहता हूँ, जिन्होंने मेरी सरल-हृदया पुत्री की हत्या की है।'

पिता ने कहा, 'मित्र ! तुम तो हमें अपनी कथा सुनाने वाले थे न ! वह सुनाइये महासेनापति । यह केवल जिज्ञासा ही नहीं है ।'

'अब खँडहर कितनी दूर है ?' महासेनापति ने पूछा ।

'अभी डेढ़ कोस है,' पिता ने कहा ।

हलायुध ने कहा, 'अभी समय है ।'

'आप आराम से कह सकते हैं,' आर्किमिडीस ने कहा ।

सुषेण ने कहा, 'सुनाइये महासेनापति ।'

मैंने अपने ध्यान को एकत्र कर लिया ।

११

महा सेनापति मंदहास ने कहा :

'इधर तो मेरी पुत्री आपके यहाँ आने की बाट बड़ी प्रसन्नता से जोह रही थी । उधर कुछ और ही हो गया । मुझे साँची में कुषाण कुलों में प्रसिद्ध धारेयकों के यहाँ निमन्त्रण मिला । उस दिन सम्राट हुविष्क के अनुज के पुत्र परमवीर सुविष्क आने वाले थे । उनके स्वागत में सब कुछ प्राचीन कुषाण परम्परा में सजाया गया था । आप तो जानते ही हैं मैं अभी तक कुषाण भाषा बोल लेता हूँ क्योंकि मेरे पितामह के समय यह भाषा काफी बोली जाती थी ।'

मैं प्रसन्न हुआ ।

मैंने कहा, 'पुत्री ! तूने देखा भी नहीं, चलना मेरे साथ ।'

'यहाँ क्या होगा पिता ?' उसने पूछा ।

मैंने कहा, 'प्राचीन का परम्परा का मुँह पर नकाब डाल कर नृत्य होगा, भोज होगा, मदिरा बहेगी, संगीत होगा, और मुझे एक झलक मिलेगी कि पहले कुषाण क्या थे !'

'तब तो मैं अवश्य चलूँगी।'

फिर वह सज्जा में लग गई। वह जब तैयार हो गई और समय भी हो गया, तब हम रथ में निकल पड़े और यथा समय पहुँच गये।

वहाँ आनन्द मनाया जा रहा था।

संगीत मेरी पुरानी निर्बलता है। मैं सुन कर झूम उठता हूँ। अब उस दिन तो न जाने कहाँ-कहाँ के निपुण गायक आये थे। और जब मैंने प्राचीन कुषाण गीतों को सुना तो अपनी किशोरावस्था की मुझे याद आई और मैं उसी में डूब गया।

सुन्दर दीपमालिका जल रही थी। भवन के भीतर तो इतना प्रकाश था कि मैं कह नहीं सकता।

मेरी पुत्री उस दिन बहुत सुन्दर लग रही थी। उसके चेहरे पर हल्का सा भी नकाब न था। वह उसको देख कर कुछ आनन्दित, कुछ उत्तेजित हो उठी थी।

मैंने पूछा, 'तुझे कैसा लगता है।'

उसने कहा, 'बहुत सुन्दर!'

समस्त उपस्थिति वहाँ उच्च कुलीन पुरुष और स्त्रियों की थी। बहुत से लोग तो नगर के बाहर से निमन्त्रित हो कर आये थे। आप तो नहीं। वह मैं समझ गया था, क्योंकि धारेमकों से आपके सम्बन्ध अच्छे नहीं रहे हैं। वह कुल परम्परा की बात है।

विशाल प्रकोष्ठ में अचानक मेरी दृष्टि एक ऐसी स्त्री पर गई जो कि मेरी पुत्री को बार-बार देखती थी। मैंने उस स्त्री को कुछ देर पहले संध्या बेला में भी देखा था। वह एक बार हमारे पास से भी निकल कर गई थी। तब हम भीतर थे और वह खिड़की में से मेरी पुत्री को देखती हुई निकल गई थी।

मैं समझा कि मेरी पुत्री आज क्यों सुन्दर लग रही है। अवश्य इस युवती में कौतूहल हो गया होगा।

एक और स्त्री जो पतली-दुबली, छरहरी सी, बड़े दबदबे की मालूम

होती थी, उसके साथ थी। तरुणी और उसने दोनों ने चेहरे पर नकाब डाल रखी था। नकाब की वजह से मैं उनकी दृष्टि को साफ-साफ नहीं देख सका था, पर मुझे निश्चय था कि वे दोनों मेरी पुत्री को ही देख रही थीं।

मेरी पुत्री नृत्य देखती एक आसन पर बैठी थी। मैं निकट ही था। उन दोनों स्त्रियों में से जो तरुणी थी वह मेरी बेटी की बगल में आकर बैठ गई। उसकी साथिन मेरे पास आ गई, पर उसने धीरे से झुक कर अपनी साथिन तरुणी से कुछ कहा। वह उसकी सरपरस्त सी लगती थी।

वह नकाब तो पहने ही थी। उसने मुड़ कर कहा, 'महासेनापति मंदहास हैं!'

मैं चौंका। कौन थी वह!

परन्तु उसने बात शुरू कर दी। उसने बताया कि वह मुझे कई जगह देख चुकी है, राजसभा में, उच्चकुलीन के प्रासादों में। ऐसी छोटी-छोटी घटनाएँ उसने मेरे जीवन की गिनाईं, जिन्हें मैं भूल चुका था, परन्तु याद दिलाने पर मेरे कौतूहल को जानने को वह तुरन्त लौट आई।

मुझे हर क्षण अधिक कौतूहल हो रहा था। परन्तु, वह इस अच्छे ढंग से बातें कर रही थी कि मुझे उसके विषय में कुछ भी पता नहीं चल रहा था। वह अपने विषय की बात साफ टाल जाती परन्तु मेरी तो उसे बहुत सी बातें मालूम थीं। उन्हें वही बता सकता था, जो कि मुझ से बहुत ही मिलता-जुलता रहा हो।

इस दौरान में वह तरुणी जो कि मेरी पुत्री के पास बैठी थी, जिसका नाम कि उसकी माँ मेरे पास खड़ी हो कर एक बार पुकार उठी थी, जिससे मुझे मालूम हुआ कि 'कुसुमारि' था, मेरी पुत्री से लगातार बैठी बातें कर रही थी। उसने पुत्री को बताया कि उसकी माँ से मेरा बड़ा पुराना परिचय था। उसने बताया कि प्राचीन परम्परा में नृत्यों में कुशल स्त्रियाँ नकाब डाल कर नाचती थीं। वह बिल्कुल उससे दोस्त

की तरह मिल-जुल गई थी। उसने उसके वस्त्रों की प्रशंसा की, और उसके रूप की भी। उसने मेरी पुत्री का खूब मन बहलाया। तरह-तरह के चुटकुले सुनाती और मुझे लगा वे दोनों आपस में काफी खुल गई थीं।

उसकी माँ ने यह देखा तो कहा, 'आपने देखा!'

मैंने कहा, 'क्या?'

'लड़कियाँ तो घुल-मिल गईं।'

मैंने कहा, 'क्यों नहीं। बच्चों का क्या? दो बातें हुईं। फिर मित्रता हो गई।'

वह हँस दी।

मेरी पुत्री के कहने पर सुकुमारि ने अपना नकाब हटा कर अपना मुँह भी उसे दिखाया, जो कि बहुत ही सुन्दर था। मैंने भी उसे देखा। फिर उसने चेहरे पर नकाब डाल लिया।

मैंने प्रसन्नता की झलक अपनी पुत्री के मुख पर देखी।

वैसे ध्यान दौड़ाने पर भी मुझे याद नहीं आया कि मैंने उस लड़की को कहीं देखा हो। बाद में मेरी पुत्री ने कहा कि उसने भी नहीं देखा था। परन्तु गंधमादिनी उससे प्रभावित हो गई थी। मुझे लगा वह उस पर रीझ गई थी। मुझे कुछ आश्चर्य भी हुआ। परन्तु वह सब व्यर्थ ही सा लगा। उसने इसके रूप की इतनी प्रशंसा की थी। क्या ताज्जुब है जो वह इतनी प्रभावित हो गई थी।

मैंने हँस कर उस तरुणी की माँ से कहा, 'आपने कुषाण परम्परा का बड़ा निवाह किया है।'

'कैसे महासेनापति।'

'पुत्री के नाम से ही पता चलता है न?'

'क्यों?'

'देखिये कुसुमारि का अर्थ है कुसुम का अरि अर्थात् फूल का शत्रु! अर्थात् झंझावात यानी आँधी। यह नाम तो कोई आर्य अपने पुत्र के लिये रखता!'

'मेरे पुत्र का यही नाम था। वह चला गया, तो मेरे पति ने पुत्री का ही यह नाम रख दिया।'

'ओह, मुझे क्षमा करें,' मैंने कहा, 'लेकिन आप मुझे इतना जानती हैं। वह कैसे?'

'मैंने आपको देखा है।'

'ठीक है, तो भी आपने मुझे अपने को पहँचानने का अवसर भी नहीं दिया है।'

'क्यों?'

'आप नकाब पहने हैं। वह हटे तो मैं पहँचान लूँ।'

'किसी स्त्री से नकाब हटाने की बात कह कर आप कुषाण परम्परा का उल्लंघन कर रहे हैं न?' वह हँसी। 'और वर्षों ने जो परिवर्त्तन कर दिया है, उससे क्या मुझे पहचान ही लेंगे?'

'शायद!' मैंने कहा।

'दार्शनिक कहते हैं,' उसने कहा, 'रूप देखकर क्या कोई पहँचान सका है?'

'जो भी हो आप वृद्धा तो नहीं लगतीं।'

'फिर भी अनेक वर्ष बीत गये हैं! कुसुमारि मेरी पुत्री है। फिर क्या मैं तरुणी हो सकती हूँ? आपने मेरा जो रूप देखा है, उसकी तुलना में अब जो है, वह मैं आपको कैसे दिखाऊँ? आपके तो कोई नकाब है नहीं। मैं इसे हटाऊँ तो आप क्या प्रतिदान में कुछ दे सकेंगे?'

'आप यदि मेरी याचना पर स्वीकृति देंगी तो मैं समझूँगा मेरी बात ने आपकी करुणा को सचमुच जाग्रत कर दिया है। वैसे तो मुझमें सामर्थ्य ही कितनी!'

'छोड़िये भी,' इस आयु पर क्या बात कर रहे हैं आप! बच्चे सुनेंगे।'

'पर कम से कम मुझे यह तो बता दीजिये कि आप किस कुल की हैं।'

'नहीं बताऊँगी। आप तुरन्त पकड़ जायँगे। मुझे लगता है आप कोई मजाक सोच रहे हैं!'

'फिर भी अपना नाम तो बता ही देंगे, ताकि मैं अपने को आप के संभाषण से कृतकृत्य हुआ, अपने को धन्य समझ सकूँ?'

वह हँसी और तभी एक घटना ऐसी घटी कि वह बता नहीं सकी। उस समय तो मुझे यही लगा। परन्तु बाद में जब अब सोचता हूँ तो लगता है कि उस समय मुझसे बड़ी चालाकी खेली गई।

एक व्यक्ति तुरन्त आ गया। वह काले वस्त्र पहने था। वह भी कुलीन और राजस वैभव धारण करने वाला था। लेकिन उसका चेहरा इतना पीला था कि वह मुर्दा लगता था। उसने बिना मुस्कराये उससे कहा, 'देवी!'

'कहिये,' उसने कहा।

'मुझे तनिक दो शब्द कहने का अवसर देंगी?'

'अवश्य।'

उसने मुझसे मुड़ कर कहा, 'महासेनापति! देखिये मेरा स्थान कोई और न ग्रहण कर ले। मैं अभी आती हूँ।'

यह कह वह उस व्यक्ति के साथ बातें करती हुई निकल गई। मुझे अब लगता है कि वह मुझे बना गई थी। पर उस समय मैं इसे नहीं जान सका था। भीड़ में वे दोनों मिल गये और मुझे दिखाई नहीं दिये।

मैं खड़ा-खड़ा दिमाग लगाने लगा।

कौन है? किस परिवार की है? यह मेरे बारे में इतना सब कैसे जानती है? किसकी पत्नी है? किसकी पुत्री है। इसकी पुत्री को मैंने तो कभी नहीं देखा। परन्तु इतने कुलीनों के बीच में यह आई है, अवश्य ही यह भी कुलीन ही होगी। वर्ना आती ही क्यों?

मैं चाहता था कि किसी तरह उसका कुछ अता-पता मिल जाये तो तुरन्त उसके आते ही बता कर उसे चकित कर दूँ।

लेकिन उसी समय वह उसी काले वस्त्रों वाले पीले मुख के आदमी

के साथ लौट आई, जिसने उससे अत्यन्त सम्मान से कहा, 'देवी! आज्ञा है।'

'हाँ।'

'मैं लौट कर देवी को सूचना दूँगा। जब रथ द्वार पर आ जायेगा।'

'अच्छा।'

वह प्रणाम करके चला गया।

मैंने कहा, 'तो क्या देवी शीघ्र ही चली जाने का विचार कर रही हैं?'

'हाँ! संभवतः कुछ सप्ताह बाद लौट सकूँ।' उसने लम्बी साँस खींची।

'क्यों क्या कोई विशेष घटना हो गई?'

'दुर्भाग्य से जो उसने कहा, वह कुछ ऐसा ही था! और वह भी यहाँ मुझे पता चला! पर अब तो आप मुझे जान गये होंगे।'

'जी नहीं।'

'आप मजाक करते हैं।'

'मैं मजाक इससे अच्छा करता हूँ।'

'देखिये!' उसने कहा। फिर गम्भीर हो गई और बोली, 'आप मुझे जान जायेंगे। पर इस समय नहीं। आप शायद सोचते भी नहीं कि हम लोग कितने पुराने और कितने अच्छे सम्बन्ध रखने वाले मित्र हैं। परन्तु अभी मैं अपना परिचय नहीं दे सकती। मैं आपके प्रासाद के सामने से तीन सप्ताह में निकलूँगी। तब घड़ी एक को आपका आतिथ्य स्वीकार करूँगी और तब हमारी पुरानी जान-पहचान फिर नयी हो जायेगी। मैं याद करती हूँ। कितने मीठे दिन थे वे जब हमारे आपके परिवार इतने निकट थे। जब एक ही सा घर माना जाता था। आप तो ऐसे लगते हैं कि कुछ नहीं जानते, आपको सब याद आ जायेगा! अभी मुझे एक संवाद मिला है जिसने मेरे उर पर वज्रपात किया है। मुझे अभी जाना पड़ेगा। और एक टेढ़े बल्कि खतरनाक रास्ते से जाना होगा। और जानी होगी करीब पचास कोस की दूरी। इसी समय।'

'अब रात को ही ?'

'जी हाँ। जितनी जल्दी पहूँच सकूँ वही भला है। मैंने आपको नाम भी नहीं बताया है, क्या करूँ इस समय मैं विवश हूँ। मेरी परेशानियाँ बहुत हैं। यह लड़की तो मेरी मुसीबत है।'

'क्यों ! क्यों ?'

'कमजोर है। मना करने पर भी शिकार खेलने गई। बाप ने जो लड़के की तरह पाला था। गई और घोड़े से गिर गई। अभी तक यह ठीक थोड़े ही हुई है। हमारे चिकित्सकों ने कहा है कि इसे किसी शारीरिक कष्ट को नहीं उठाना चाहिये। यहाँ तो हम रोज दो-दो कोस चल कर रथ में आये हैं, बैल के रथ में। अब मुझे जाना होगा घोड़ों के तेज रथ में। यह कैसे झेल सकेगी वह झटके ! दिनरात जाना पड़ेगा मुझे। ताबड़तोड़ !'

'तो फिर लड़की कैसे जायेगी ?'

'यही तो मैं सोच-सोच कर मरी जा रही हूँ। समझ में नहीं आता। क्या करूँ ! न जाऊँ तो जीवन-मरण का प्रश्न है। जाती हूँ तो मेरा हृदय यहाँ रखा है। आप से हमारे पुराने संबंध हैं, पर इस समय मुझे अपने को गुप्त रखना है। मैं तो यहाँ भी न आती, किंतु धारेयकों ने वचन दिया कि वे मेरा आना बिल्कुल ही गुप्त रखेंगे। तब तो आई हूँ।'

'तो आप इसे मेरे पास छोड़ जाइये न ?'

'आप की मुसीबत कर देगी यह लड़की।'

'अजी नहीं।'

'वह कमजोर है महासेनापति।'

'आप क्या बात करती हैं। मेरी बेटी उसके साथ ही रहेगी और सब देखभाल कर लेगी। उसका भी समय बदल जायेगा।'

तभी मेरी पुत्री आ गई। उसने मुझसे धीरे से कहा क मैं कुसुमारि को अपना अतिथि बनाने के लिये निमंत्रण दूँ। वह उसे बहुत ही अच्छी लगी थी। उसने कुसुमारि से कहा भी था किंतु उसने कहा

कि माँ कह देगी तब ही वह चल सकेगी। वह स्वयं तो चल कर बहुत ही प्रसन्न होगी।

और कोई समय होता तो मैं सोचता, पहले जानकारी हासिल कर लेता। पर वहाँ सोचने का समय ही नहीं था। मेरी बेटी और कुसुमारि की माँ ने मुझे घेर ही लिया और मैंने सोचा कि है यह कोई ऊँचा ही कुल। चलो याद तो रखेंगे।

मैंने स्वीकार कर लिया।

स्त्री ने अपनी पुत्री को बुलाया और अलग ले जाकर उसको कुछ समझाया, जिसमें यह सुनाई पड़ा कि वह बहुत ही जरूरी काम से बुलायी गई थी और कि उसे मेरी देखभाल में रहना पड़ेगा और कि वह कायदे से रहे।

कुसुमारि एक ओर माँ को छोड़ते हुए कुछ उदास सी लगी, पर ज्योंही उसने गंधमादिनी को देखा वह जैसे फिर से प्रसन्न हो उठी।

'यह हमारे कुल के पुराने मित्र हैं,' माँ ने कहा।

'मेरा सौभाग्य है,' कुसुमारि ने कहा।

मैंने न चाहते हुए भी कहा, 'मुझे बड़ा हर्ष है।'

तभी वही काले कपड़ों वाला आदमी लौटा।

उसने कहा 'देवी!'

'कहो,' माँ ने पूछा।

'रथ आ गया।'

'इतनी शीघ्र।'

'देवी! समय अनमोल है।'

कुसुमारि ने कहा, 'कुल स्वामी को सूचना तो दें।'

'नहीं,' उस आदमी ने कहा, 'गुप्त रखें।'

'फिर वे चिंतित न होंगे?'

'नहीं, वे जानते हैं,' उसने कहा।

'तुमने उनसे कहा!'

'आभास दे दिया।'

'वे गुप्त रखेंगे?'

'नितांत!'

'यह हमारे कुलमित्र हैं,' माँ ने मेरा परिचय कराया, 'यही इस समय काम आ रहे हैं।'

'हम याद रखेंगे,' उसने सिर झुकाकर कहा।

माँ ने कहा, 'महासेनापति!'

'क्या?'

'वचन दें कि आप कुसुमारि से कुछ न पूछेंगे।'

मुझे बुरा लगा।

मैंने कहा, 'आप संदेह क्यों करती हैं?'

'आप बुरा मान रहे हैं। परंतु मैं स्त्री ही तो हूँ। घबरा जाऊँ तो क्या हानि है? पहले मैं समझती थी कि आप मुझे पहचान गये हैं। मैं प्रसन्न भी हुई थी, परंतु आप पहचान ही नहीं सके। आप पर ही मैं यह कर्त्तव्य छोड़ती हूँ कि यदि वह लड़की इस बात को गुप्त न रख सके तो आप इसे आदेश दें कि यह इसे गुप्त रख सके।'

उस आदमी ने कहा देवी विलंब हो रहा है।

'हाँ, हाँ मैं चलती हूँ,' कह कर उसने अपनी पुत्री के कान के पास जाकर कुछ फुसफुसाया जिसका अंतिम शब्द मैंने भी सुना—मंगल हो और उसका माथा सूंघ कर उस काले वस्त्रों वाले आदमी के साथ चली गई, और शीघ्र ही भीड़ में मिलकर अदृश्य हो गई।

'माँ गई,' कुसुमारि ने उदासी से कहा।

'आ जायेंगी,' गन्धमादिनी ने सांत्वना के स्वर में कहा, 'तुम क्या डरती हो?'

'नहीं,' उसने कहा।

'अगले कमरे में एक खिड़की है,' कुसुमारि ने कहा, 'वहाँ से बाहर का रास्ता दिखता है। मैं वहाँ से उन्हें देखूँगी।'

हम उसके साथ वहाँ तक गये। देखा, एक पुराने किस्म का रथ था वह, जो अब प्रचलित नहीं। हमने देखा वह काले वस्त्रों वाला व्यक्ति पीछे खड़ा है। मां रथ में चढ़ गई और फिर दो घुड़सवार आगे और पीछे चलने लगे। वह आदमी भी एक घोड़े पर चढ़कर चला गया। पर उसने मुड़ कर भी नहीं देखा।

'गई,' कुसुमारि ने कहा।

मैंने भी मन ही मन दुहराया। मुझे लगा कि रथ पर चढ़कर उस स्त्री ने नकाब उतार लिया था। इसी से उसने मुँह नहीं दिखाया था। और फिर उसे मालूम भी क्या था कि हम खिड़की में खड़े थे।

कुसुमारि सुन्दर थी। उसे देख कर मुझे शोक नहीं हुआ। वह बड़ी सरल भी थी।

कुसुमारि ने नकाब मुँह पर डाल लिया जो उसने यहाँ आकर खोल लिया था और हम सब फिर बीच के प्रकोष्ठ में लौट गये।

कुसुमारि हमसे बहुत घुलमिल गई। खूब चटकीली बातें करती थी वह कि मैं भी हँसा और मुझे वह लड़की पसंद आई।

उषा उदय हुई। युवराज सुविष्क की गोष्ठी चलती रही। वे तब तक सभा में बैठना पसंद करते थे। मैं उस समय वहीं था कि गंधमादिनी आई और मुझे बुलाया। पूछा, 'वह कहाँ गई?'

'मैं तो यहाँ था। तुम कहाँ थीं?'

'मैं स्त्रियों में चली गई थी।'

'और वह?'

'पता नहीं।'

'ढूँढ तो जाकर।'

कुछ देर में जब हम दोनों ढूँढ-ढाँढ़ कर मिले तब भी वह नहीं मिली।

'शायद बाग में गई होगी।'

'पर बाग तो विशाल है। उसमें क्या कोई ढूँढ सकता है?'

'यह तो बड़ी बुरी बात हुई।'

'क्यों ?'

'मुझ पर उसकी जिम्मेदारी है।'

'पर वह किसकी पुत्री है ?'

'मुझे नहीं मालूम।'

'लेकिन...'

'हाँ। मैं क्या करूँ, उसने बताया नहीं।'

'फिर उसकी तलाश भी कैसे होगी ?'

'यही तो मैं सोच रहा हूँ।'

सुबह हो गई। मैंने ढूँढना बंद कर दिया। करीब दुपहर हो चली थी जब वह आ गई।

नौकर ने भीतर आकर कहा, 'देवी गंधमादिनी और महासेनापति मंदहास की तलाश करती हुई एक युवती आई हैं। वे बहुत परेशान हैं। वे आपको पूछ रही हैं। वे कहती हैं कि उनकी माता आपकी ही देखरेख में उनको छोड़ गई हैं।'

मैंने कहा, 'कहाँ हैं वे ?'

'बाहर !'

'ले आओ।'

'जो आज्ञा,' कह कर नौकर चला गया और वह आ गई।

'तुम कहाँ गई थीं ?' मैंने पूछा।

'मैं ढूँढ रही थी आपको।'

'पर तुम बिछुड़ कैसे गई ?'

'भीड़ में मुझे यह दिखी नहीं, स्त्रियाँ ही स्त्रियाँ थीं। मैं ढूँढने लग पड़ी। फिर मैंने बाग तक जाकर छान मारा।'

'किसी से पूछा नहीं !'

'पूछा तो।'

'फिर ?'

'सब कहते थे—यहीं कहीं होंगे।'

'किससे पूछा था ?'

'मैं नाम कैसे बताऊँ ! मैं जानती ही किसे हूँ ?'

'तभी ।'

'मैं तो हार कर एक कमरे में शैया पर जा बैठी । वहीं मुझे नींद आ गई । अब आँख खुली है । तभी फिर पूछने में लग गई ।'

'तुम क्या थक गई हो ?' गंधमादिनी ने पूछा ।

'हाँ, रात भर जागना जो पड़ा है ।'

'पिता,' पुत्री ने कहा, 'अब हम कब चलेंगे ?'

'आज ही,' मैंने कहा, 'जाकर अपने मित्र से मिल आऊँ फिर चलेंगे ।'

'हम यहीं हैं,' पुत्री ने कहा ।

'अच्छा,' कह कर मैं चला गया । मित्र से मिला और जब लौट कर आया वे वहीं मिलीं ।

मैं प्रसन्न था ।

मैंने कहा, 'गंधमादिनी !'

'हाँ पिता ।' वह मेरे पास आई ।

'घर चलो ।'

नौकर भेजकर सारथि बुला लिया गया और रथ आ गया । मैंने कहा, 'आओ कुसुमारि ! स्वागत है ।'

वह लजा सी गई और दोनों लड़कियाँ रथ में बैठ गईं । मैं भी जब रथ पर चढ़ गया तब मैंने देखा कि कुसुमारि की आँखों में क्षण भर एक अजीब सी चमक दिखाई दी ।

रथ चल पड़ा और हम घर की ओर रवाना हो गये । दोनों लड़कियाँ बड़ी प्रसन्न थीं ।

किन्तु जब हम घर पहुँच गये शीघ्र ही उस आनन्द में व्याघात सा पड़ने लगा ।

कुसुमारि उदास रहती ।

गंधमादिनी ने पूछा, 'क्यों स्वास्थ्य तो अच्छा है ?'

'हाँ,' कुसुमारि ने कहा।

'फिर तुम इतनी सुस्त क्यों रहती हो ?'

'पता नहीं।'

'ऐसा लगता है जैसे अभी बीमारी से उठी हो।'

'ऐसा घोड़े से गिरने के बाद से हो गया है।'

ऐसे ही वह रात को अकेली सोती।

गंधमादिनी ने कहा, 'तुम रात को अकेली न सोया करो।'

'क्यों ?' कुसुमारि ने पूछा।

'डर नहीं लगता ?'

'नहीं।'

'नौकर सुला लिया करो।'

'किसी को पास सुला लेने पर मुझे नींद नहीं आती।'

'तभी तुम दरवाजा भी बन्द कर लेती हो ?'

'हाँ मुझे हमेशा डाकुओं का डर लगा रहता है। देखो एक बार हमारे यहाँ डाके में मेरे सीने में छुरा लगा था।'

'उफ। तुम बच गई !'

'बाल-बाल ही समझो !

और जो बातें देखी गईं उनमें यह भी पता चला कि द्वार भीतर से बन्द रहता किन्तु वह सुबह कमरे के बाहर भी बाग में दिखाई देती। एक दिन अचानक दासी ने द्वार खटखटाया तो ऐसा पता चला कि वह भीतर नहीं थी। वह दुपहर तक अपने कमरे से निकल कर नीचे उतर कर आती। अलस्सुबह वह बाग में टहलती नजर आती। पता नहीं किस तरह वह बन्द द्वार से निकल जाती। पर वह सोती हुई लगती। मैंने यह भी सोचा कि शायद यह नींद में चलती है।

यह सब समस्या थी, जो मैं समझ नहीं सका। कैसे हो सकता यह ! पर माली कहता था कि उसने उसे टहलते देखा था।

'उसने मुझे देखा था,' मैंने पूछा।

'नहीं, शायद नहीं।'

'क्यों ?'

'वह तो जैसे सोयी हुई थी।'

मैंने द्वार के बाहर ही उसके कमरे के पास दो-दो नौकर सुलाये, पर किसी ने भी उसे निकल कर जाते हुए नहीं देखा।

माली ने कहा कि वह सुबह ही बाग में घूम रही थी !

यह तो असंभव था।

तीन दिन तक मैंने किसी से न कहा। केवल वे दो नौकर और माली ही मेरी बात की जाँच करते थे। पर वह फिर नहीं मिली।

किन्तु मुझे एक बात ने परेशान कर दिया।

वह यह थी कि मेरी पुत्री का स्वास्थ्य बिगड़ने लगा।

'तेरा मुख ! रंग खो रही है तेरी सूरत ! विवर्ण हो रहा है।' मैंने कहा।

'मुझे नहीं लगता,' गंधमादिनी ने बताया।

'तू कमजोर क्यों हो रही है ?'

'पता नहीं।'

'नींद तो आती है न ?'

'सुपना आता है।'

'कैसा ?'

'भयानक सुपने होते हैं। मुझे सुपने में एक स्त्री दिखती है।'

'स्त्री ?'

'हाँ, वह कुसुमारि ही लगती है।'

'बिल्कुल ?'

'हाँ पिता !'

'और !'

'कभी-कभी एक जानवर सा लगता है। मेरे पैताने घूमता हुआ।'

'कैसा होता है वह ?'

'काला लम्बा, बिल्ली सा।'

'कितना बड़ा !'

'डेढ़ दो हाथ लम्बा।'

'और वह बिल्ली ही है।'

'उसकी आँखें चमकती हैं। वह पलँग पर कूद आता है।'

मैं कुछ समझा नहीं, फिर कुछ दिन बाद पूछा।

'अब तो सुपना नहीं आता मेरी बेटी।'

'आता है पर अजीब सा। मैं बता नहीं सकती।'

'क्यों ?'

'मुझे शरीर में सनसनी सी लगती है।'

'कैसी ?'

'अजीब। पर बुरी नहीं लगती। ऐसा लगता है जैसे ठंडे पानी की धारा में मैं उल्टी तरफ बही जा रही हूँ।'

उसके कुछ दिन बाद उसने कहा, 'लगता है गले के नीचे दो सुइयाँ गहरी घुसी जा रही हैं। दर्द होता है।'

फिर उसका दम घुटने लगा और फिर वह बेहोश रहने लगी।

मैं तो समझ ही नहीं सका। उधर जब मैं कुसुमारि से मिलता तो वह कहती, 'यहाँ शायद कोई डरावनी छाया है।'

'क्यों ?' मैं पूछता।

'मुझे रात को डर लगता है।'

'पर तुम अकेली सोती हो।'

'मुझे आदत जो है।'

'किसी को सुला लिया करो।'

'डाके के बाद मुझसे किसी के साथ सोया ही नहीं जाता। डर सा लगता है।'

मैं उसकी समस्या सुलझा नहीं सका।'

१२

महासेनापति मंदहास की कथा का एक-एक अक्षर मैं सुन रही थी। मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा था। यह तो मेरी कहानी थी जो वे सुना रहे थे। आचार्य हलायुध स्तब्ध थे। आर्किमिडीस फिर रहस्यमय दिखाई देते थे। किंतु सुषेण, सुहासिनी और पिता के मुख पर केवल आश्चर्य था, जैसे वे कुछ भी समझ नहीं पाये थे। और कुसुमारि की सारी आदतें तो हमारी सुकुमारि से मिलती-जुलती थीं। यह क्या विचित्र बात नहीं थी।

गाँव सामने आ गया था। हम किले पहुँच गये थे। उजाड़ ही दिखाई पड़ता था। घरों की छतें गिर चुकी थीं। वहाँ रहता ही कौन था? बरसों से चारों तरफ बियाबान था।

'उस भवन में' आर्किमिडीस ने हाथ उठाकर इंगित किया, 'सागरक की मृत्यु हुई थी।'

हमने देखा। सैनिक, सेवक और हम सब इकट्ठे हो गये। दिन का समय था। हम किले में घुसे और प्रकोष्ठों के धुँधलके, विशाल पौरियों को पार करके एक बड़ी खिड़की के सामने जाकर रुक गये जहाँ से एक ओर विशाल वृक्ष दिखाई दे रहे थे, दूसरी ओर कुछ कब्रें थीं।

महासेनापति ने देख कर कहा, 'यही है वह यूची परिवार का दुर्ग! जहाँ एक दिन कितना वैभव था। आज यहाँ निर्जन है। उल्लू बोल रहे हैं। यह एक कुटिल और पतित परिवार था। इसके पाप की गाथा निरीहों के रक्त से लिखी हुई है। व्यभिचार की दुर्गंध अभी तक इसके पाषाणों में से आ रही है। किंतु मृत्यु के बाद भी यह जीवित हैं। जीवित हैं, और इनके नृशंस कार्य व्यापार अभी तक चल रहे हैं। उनमें बाधा नहीं पड़ी है। वह है उनका कब्रिस्तान! वही तो है न?'

हलायुध ने देख कर कहा, 'है तो वही। क्यों ?'

'कितना शांत है सब,' सेनापति ने कहा, 'लेकिन यह शांति नहीं है, यह छलना है, धोखा है।'

कोई भी नहीं समझा, केवल हलायुध की आँखों में चमक दिखाई दी, जैसे वह सेनापति की बात के तात्पर्य का आभास पा रहा था।

दीर्घ वृक्ष सुनसान खड़े थे। उनकी छाया भी बड़ी गहरी थी। वह बहुत ही डरावना लगता था।

तभी 'खटखट' की आवाज सुनाई देने लगी। मैं चौंक गई। पूछा, 'यह क्या है ?'

'वह !' सेनापति ने कहा, 'शायद कोई लकड़हारा है जो वृक्ष काट रहा है।'

'यहाँ ?'

'क्यों ? क्या डर है ?'

मैं डरी हुई थी। कुछ उत्तर नहीं दे सकी, किंतु मुझे उसके साहस की प्रशंसा मन ही मन करनी पड़ी।

'शायद' 'महासेनापति ने सोचकर कहा, 'वह हमें इन बातों का पता दे सके, जो मैं ढूँढ रहा हूँ।'

'वह क्या है ?' पिता ने पूछा।

'मैं यूची रानी रिसुकुमा की कब्र ढूँढना चाहता हूँ।'

'उसका मेरे पास चित्र है घर पर, क्या आप उसे देखना पसंद करेंगे ?'

'अब नहीं मित्र !' सेनापति ने कहा, 'अब नहीं।'

'क्यों ?'

'मैं चित्र देख कर क्या करूँगा। मैंने उसे जीवित देखा है।'

'जीवित ?'

'हाँ मित्र !'

'वह तो सम्राट् कनिष्क के समय में ही मर गई थी न ?'

'मर गई थी, पर वैसे नहीं मरी, जैसे तुम सोचते हो ?'

'क्या कह रहे हो ?'

'तुम समझोगे नहीं मित्र। पर मैं पागल नहीं हूँ। मुझ पर विश्वास करो। जो मैं कहता हूँ उसे मानो। क्या करूँ यहाँ कोई समझता नहीं।'

आचार्य हलायुध ने कहा, 'कुछ-कुछ तो मैं समझता हूँ। पर पूरी बात नहीं जानता।'

'तो चलो उस लकड़हारे से मिलें।'

पिता ने कहा, 'क्यों ?'

'यह देहाती लोग परंपरा को जीवित रखते हैं जो किंवदंतियों के रूप में इनकी बातों में मिल जाती हैं। उच्च कुल मिट जाते हैं, उनके सर्वस्व नष्ट हो जाने पर भी इनमें कथाएँ रह जाती हैं।'

'चलो।'

'मेरे सामने केवल एक ध्येय ही है।'

'वह क्या !'

'कि मैं रिसुकुमा से प्रतिशोध ले सकूँ।'

'वह है कहाँ ?'

'तुम मेरे साथ आओ। मैं उस पिशाचिनी के शव को कटवा देना चाहता हूँ।' सेनापति का क्रुद्ध स्वर खंडहर में गूँज उठा।

'क्या ?' पिता चौंक उठे।

'हाँ, मैं उसके टुकड़े-टुकड़े करवाना चाहता हूँ।'

'क्या कहते हो ?'

'वह हत्यारी है। वह हत्यारी है,' महासेनापति ने चिल्ला कर कहा। क्रोध से वे काँप रहे थे।

हम बाहर आ गये थे। एक पेड़ पड़ा था, सूखा। महासेनापति ने मुझ से कहा, 'थक गई बेटी ? तुम यहाँ इस पर बैठ जाओ।'

उनके कहने से मैं और सुहासिनी उस पेड़ के तने पर बैठ गईं।

महासेनापति ने कहा, 'अब मैं अपनी बाकी कहानी भी सुना देना चाहता हूँ।'

पिता ने एक सेवक को भेजा कि वह लकड़हारे को बुला लावे। कुछ ही देर में वह सुदृढ़ शरीर का व्यक्ति हाथ में कुल्हाड़ी लिये हमारे सामने आ गया। वह एक भी स्मारक के विषय में नहीं बता सका। वह जानता ही नहीं था।

'लेकिन,' उसने कहा,' यहाँ एक बूढ़ा है, जो पास ही आजकल एक तांत्रिक के साथ ठहरा हुआ है, वन भाग में, वह बता सकता है। अगर आप मुझे एक घोड़ा देकर अपना आदमी मेरे साथ भेज दें, तो मैं उसे ले आऊँ। वह आ जायेगा। उसे तो हर एक कब्र का पता है।'

'वह कौन है?' सेनापति ने पूछा।

'वह कुछ मंत्र करता है।'

'और तांत्रिक कौन है?'

'बड़ा पहुँचा हुआ है। कुषाण है?'

'तांत्रिक हो गया है?'

'जी हाँ।'

'तुम यहाँ कब से हो।'

'मैं? मेरा बाप यहीं था। मेरा बाबा यहीं था। इस गाँव में मेरे पुरखों का मकान टूटा पड़ा है। मैं उसे अभी तक दिखा सकता हूँ।'

'गाँव उजाड़ कैसे हो गया?'

'इसमें श्रीमन्त! मुर्दे आते थे।'

'मुर्दे', पिता ने कहा।

'हाँ स्वामी! वे पूरे मरे नहीं थे।'

'हिश!' पिता ने कहा।

सेनापति ने कहा, 'हाँ हाँ,' लकड़हारे को ढाँढ़स दिया।

वह बोला, कई का तो पीछा किया गया और कब्रें खोदकर उन्हें काट डाला गया।'

'फिर भी वे आते रहे?'

'स्वामी ! कहाँ तक कब्रें खोदी जातीं। आप तो देख ही चुके हैं वह कितना बड़ा कब्रिस्तान है।'

'ठीक है, फिर ?'

'फिर भी वे आते रहे। अंत में लोग गाँव छोड़कर भाग गये।'

'फिर ?' सेनापति जल्दी सुनना चाहते थे।

उसने कहा, 'फिर एक वृद्ध आया। वही जिसकी मैं कह रहा हूँ। वह तांत्रिक के पास ठहरा हुआ है। शायद तांत्रिक को वही ढूँढ-ढाँढ़ कर लाया है। उसको जब मालूम हुआ तो उसने बड़ी दिलचस्पी ली और बताया कि वह काश्मीरी था। काश्मीर में कुषाणों की कब्रें देख चुका था। उसने कहा कि वह गाँव को इस प्रकार के पिशाचों से मुक्त कर देगा। हमारे पिता तब थे, मैं नहीं था। और उसने फिर एक काम किया। वह यह कि वह चाँदनी रात में निकला और इसी मीनार पर जो कि सामने खड़ी है उधर।'

लकड़हारे कहा, 'उसके बाद रात गहरी हो चली और धीरे-धीरे जब चाँदनी खूब छिटक गई तब कब्र में से एक मुर्दा निकला। उसने अपने कफन को उतार कर धर दिया और गाँव की तरफ हत्या करने को निकल गया। वह तांत्रिक मीनार से उतर आया। उसने उस मुर्दे के कपड़े उठा लिये और फिर मन्त्र पढ़ता हुआ नंगी तलवार हाथ में लिये मीनार पर जा चढ़ा। जब वह मुर्दा लौट कर आया तो उसे कपड़े नहीं मिले। उसने तांत्रिक को देखा कि वह उन्हें लिये मीनार पर खड़ा था। मुर्दा भयानकता से चिल्लाया कि वह उसे कफन लौटा दे। तांत्रिक ने कहा, ऊपर आ और ले जा। मुर्दा मान गया और चढ़ने लगा। जब वह पास आया तो तांत्रिक ने अपनी तलवार का भरपूर हाथ उस पर मारा और मुर्दे का सिर दो टुकड़े हो गया, और मुर्दा नीचे लुढ़क चला। तांत्रिक ने पीछा किया और उसका सिर काट लिया। दूसरे दिन उसने गाँव वालों को सिर और बदन दोनों दे दिये, जो जला दिये गये। इस तांत्रिक को सम्राट की आज्ञा थी कि वह ऐसा कर सके।'

किंतु तभी एक व्यक्ति आया। उसने बताया कि रानी रिसुकुमार के शव को बहुत पहले ही किसी ने हटवा दिया था। पता नहीं, वह सब क्या था? पर शीघ्र ही वह जगह भी भुला दी गई।

'तुम बता सकते हो वह जगह कौन सी थी?' सेनापति ने उत्सुकता से पूछा।

'नहीं,' उसने मुस्कराते हुए अपनी असमर्थता प्रकट की। और उसने रुक कर कहा, 'अब तो शायद आपको कोई भी बता नहीं सकेगा।

'क्यों?'

'कुछ कहते हैं उसकी लाश हट गई।'

'हट गई,'

'जी हाँ हटा दी गई।'

'कहाँ?'

'कौन जाने?'

'अच्छा तुम उस मांत्रिक और तांत्रिक को बुला लाओ।'

'जो आज्ञा।'

वह घुड़सवार के साथ चला गया।

महासेनापति मंदहास ने मेरे पिता की ओर देखकर कहा, 'आपने सुना! मैं क्या कहता था।'

'मेरी तो समझ में नहीं आता।'

मैं आतंकित बैठी थी। सुहासिनी ने मेरा सिर अपने कंधे पर टिका लिया था, जैसे मुझे हिम्मत दे रही थी।

आचार्य हलायुध ने कहा, 'मुझे भी यही लगा था पहले जब मैंने सुना कि श्रीमंत चक्रधर के पड़ोस में यही बीमारी फैल रही थी।'

सुषेण ने कहा, 'विचित्र है, विचित्र है!'

आर्किमिडीस ने कहा, 'मुझे संदेह तो था, किंतु मैं इस विषय में जानता ही कितना था कि कुछ कहूँ। अतः डरता तो था किंतु कह न हीं

उसने कहा, 'क्या आप एकांत में मुझे कुछ समय दे सकते हैं ?'

'अवश्य,' मैंने कहा ।

वैद्य चला गया ।

हम अपने कमरे में आ गये । यूनानी वृद्ध था । उसने एक कपड़े पर कुछ लिखा । मैं अत्यंत निराश था । वहाँ से हटने लगा और ज्यों ही मैं जाने को हुआ उसने कहा, 'महासेनापति !'

मैं रुक गया ।

'कहिये ?' मैंने पूछा । मैं समझा कि उसके दिमाग में कुछ खराबी जरूर थी । पर उसने क्षण भर आकाश की ओर देखा और कहा, 'महासेनापति ! जो मैं कहता हूँ वही सत्य है ।'

'लेकिन वह है क्या ?'

'प्रेत है ।'

'प्रेत ?' मैं पागल सा हो गया था ।

'जी हाँ ।' और उसने कहा, 'मैंने लिख कर हिसाब लगाया है । और इससे मुक्ति भी नहीं है ।'

मैंने कहा, 'किसी सिद्ध को बुलाऊँ ?'

'व्यर्थ है ।'

'क्यों ?'

'क्योंकि रक्त बहुत कम हो गया है ।'

वह मुझे घूरता रहा । पर जैसे वह कुछ बहुत दूर देख रहा था । उसने फिर कहा, 'पिशाच ने रोगिणी का रक्त पी लिया है । अंत समय आ गया है । पिशाच का एक और आक्रमण ही उसके जीवन-दीप को सदा के लिये बुझा देगा ।'

'लेकिन वह कैसा पिशाच है ?'

'यहाँ से शीघ्र किसी कुषाण ब्राह्मण को बुलाइये ।'

'कुषाण ब्राह्मण ?'

'हाँ, मेरा तात्पर्य उन ब्राह्मणों से है, जो काश्मीर के कुषाण कुलों से संबंधित हैं।'

'फिर !'

'वह शायद कुछ कर सके। अब मुझे आज्ञा दें।'

मैं कुछ नहीं समझा।

तब उसने वही लिखा हुआ कपड़ा मेरे हाथ पर रखा। वह लिपटा हुआ था। उसने कहा, 'ब्राह्मण यदि आपकी सहायता नहीं कर सके तो आप ही इसे पढ़े तब ही। पहले नहीं। तुरंत ब्राह्मण को बुलाइये। संभवतः वह कुछ मंत्र करके दिखाये।'

'आप ऐसे किसी ब्राह्मण को जानते हैं ?'

'संघाराम के पास के एक शिव मंदिर में सुश्रुत ब्राह्मण रहता है। वह पवित्र है। उसे तुरंत बुलवायें।'

'अच्छी बात है।'

'अन्यथा आप ही इसे पढ़ लें। पर पहले नहीं।'

वह चला गया। मैंने रथ भेजा। पता चला कि सुश्रुत कहीं चला गया है। मैं क्या करता ! निराश था।

मैं पुत्री के पास गया। कहा, 'पुत्री !'

पर वह मूर्च्छित पड़ी थी। मेरी बेटी बेहोश पड़ी थी। मुझे सारा संसार सूना लगने लगा। वह मेरे सामने ही मर रही थी।

महासेनापति का गला रुँध गया। हम सबकी आँखें भी उनके समान ही भर आई थीं। आचार्य हलायुध को शायद अपनी पुत्री की याद आ गई थी। मेरे पिता मुझे अत्यंत स्निग्ध परंतु आतंकित दृष्टि से देख रहे थे।

सुषेण ने कहा, 'छोड़िये सेनापते ! आप विचलित न हों। यह संसार विचित्र है। इसे भी वासुदेव की ही इच्छा समझें।'

आर्किमिडीस ने कहा, 'नारायण ! नारायण !! कैसा भयावह है यह संसार !'

सुहासिनी ने आँखें पोंछीं क्योंकि आँसू बह आये थे।

महासेनापति मंदहास ने गला साफ करके कहा, 'तब मैंने उसका लिखा हुआ कपड़ा खोला। ओफ!'

मुझे लगा वह आदमी पागल था।

उसने लिखा था कि रोगिनी पर मुर्दा आता है। मुर्दा। भूत नहीं। उसके मतानुसार गले के नीचे के दाग, सुइयों के घुसेड़ने से नहीं, उस मुर्दे के दाँत घुसेड़ने से हुए थे। इन मुर्दों के दाँत नुकीले होते हैं। और हर बात रोगिनी में ऐसी थी जो प्रमाणित करती थी कि वे निशानात मुर्दे आने के ही थे।

मैं स्वयं तो इस बात को मानता ही नहीं था। मैं समझा यह व्यर्थ की बात थी। परन्तु मरता क्या न करता! मैं अंत में इसी पर तैयार हो गया कि वही करूँ जो पत्र में लिखा था।

मैं चुपचाप उस पर्दे के पीछे छिप गया जो मेरी पुत्री के कमरे के द्वार पर लटकता था और उससे उसके शृंगार कक्ष में ले जाता था। मैं शृंगार कक्ष में एक गुप्त द्वार में से घुस गया।

गंधमादिनी के प्रकोष्ठ में दीप जल रहा था। उसका उजाला फैल रहा था। मैंने देखा वह गहरी नींद में सो रही थी। मैं वहीं से छिपकर देखता रहा। अपनी नंगी तलवार मैंने बगल में रख छोड़ी थी जैसा कि वह यूनानी वैद्य लिख गया था।

तब मैंने एक काली चीज देखी। वह काफी बड़ी थी। वह रेंगकर बढ़ी फिर हल्के से पलँग पर चढ़ गई और फिर वह गले तक पहुँच गई—गंधमादिनी की ओर मैंने देखा। वह काफी बड़ी हो गई थी।

कुछ क्षणों के लिये मैं भय से ग्रस्त हो गया। फिर मैं हाथ में तलवार लिये झपटा। काला पशु तुरन्त सिकुड़ कर पैताने की तरफ पलँग से उतर कर हाथ भर पर खड़ा हो गया। वह क्रुद्ध था, भयानक थी उसकी दृष्टि किन्तु अब भय उसमें समा गया था। और मैंने देखा, वह कुसुमारि थी! मैंने कुछ नहीं सोचा। तुरन्त तलवार चलाई। परन्तु

वह बच गई। फिर वह द्वार के पास दिखाई दी। भयभीत का मैंने पीछा किया और फिर हाथ मारा। पर वह चली गई थी। तलवार दरवाजे से टकरा कर रह गई।

मैं नहीं बता सकता मैंने वह भयानक रात किस तरह बिताई। पूरा घर जाग चुका था, कोलाहल बढ़ रहा था। लेकिन घर में कुसुमारि नहीं थी।

लेकिन···लेकिन···गंधमादिनी की दशा बिगड़ती जा रही थी। उषा का उदय होने के पहले ही वह सदा के लिये चली गई।

महासेनापति उत्तेजित हो उठे थे। हम कोई नहीं बोले।

मेरे पिता कुछ दूर चले और फिर कब्रों पर लिखे हुए लेखों को पढ़ने का प्रयत्न करने लगे, जो कि कुषाण भाषा में लिखे हुए थे। वह इसी तरह कुछ आगे निकल गये। महासेनापति ने अपनी आँखें पोंछी और तभी मैंने भी अपने आँसू पोंछे।

तभी मैंने सुहासिनी से कहा, 'प्यास लग रही है।'

सुषेण ने सुहासिनी से कहा, 'मेरे साथ आओ। मैं तलाश करता हूँ।'

वे जाने लगे तो आर्किमिडीस ने कहा, 'तुमने कहाँ देखा है यहाँ? मैं भी चलता हूँ।'

अब मैं और महासेनापति रह गये। सैनिक और सेवक कुछ दूर पेड़ों की आड़ में बैठे थे।

तभी मैंने सुना सुकुमारि और पद्मा बातें करती आ रहीं थीं। फिर वे दूर निकल गईं।

चारों ओर सन्नाटा छा रहा था। वह भयानक किस्सा जो कि मेरी कथा से मिलता हुआ था, मुझे और भी थर्रा गया। किले की ऊँची दीवारें काली-काली थीं। सब कुछ डरावना था।

महासेनापति मंदहास गौर से पृथ्वी की ओर देखते हुए कुछ सोच रहे थे।

तभी मुझे एक ओर सुकुमारि का सुन्दर मुख दिखाई दिया। वह

एक खिड़की में से झाँक कर निकल गई। वह ज्योंही बाहर आई और मैं उसकी सुन्दर मुस्कान का उत्तर देने ही वाली थी कि वृद्ध सेनापति की एक चीख निकल गई और उन्होंने पल में ही लकड़हारे की कुल्हाड़ी उठा ली और आगे भागे। उन्हें देख कर सुकुमारि में भयानक परिवर्त्तन हो गया। पलक मारते ही वह विकराल हो गई और पीछे सँध कर हटी। इससे पहले कि मैं चिल्ला सकूँ, सेनापति ने पूरी शक्ति से उस पर कुल्हाड़ी चला दी। लेकिन वह बच गई।

तब उसने अपने उस कोमल छोटे से हाथ से सेनापति की कलाई पकड़ ली। सेनापति ने अपना हाथ छुड़ाने का यत्न किया किंतु तभी मुट्ठी खुल गई। कुल्हाड़ी धरती पर गिर गई और वह गायब हो गई।

सेनापति किले की दीवार पर टिक गये। उनको रोमांच हो आया था। चेहरे पर पसीना हो आया था। ऐसा लगा जैसे वे मर रहे थे।

भयानक दृश्य खतम भी हो गया।

मेरे सामने पद्मा बूआ खड़ी बार-बार पूछ रही थीं, 'सुकुमारि कहाँ है ?'

मैंने अंत में पूछा, 'ऐं ?'

'सुकुमारि कहाँ है ?

'मैं नहीं जानती···पता नहीं···उधर गई थी;' और मैंने उसी ओर इंगित किया जिधर से वह आई थी।

'कब ?'

'अभी-अभी।'

'पर अभी तो मैं वहीं खड़ी थी। वह उधर से तो नहीं गई।'

पद्मा ने बार-बार पुकारा, इधर-उधर, सब जगह आवाज दी। किंतु कहीं से भी उत्तर नहीं आया।

महासेनापति ने पूछा, 'किसे पुकार रही हो ?'

'सुकुमारि को,' मैंने कहा।

'यहीं थी ?'

'हाँ।'

'नहीं, वह कुसुमारि है। यही बहुत दिन पहले कुषाण रानी रिसुकुमा थी। बेटी! तू यहाँ से चल। यह स्थान भयानक है। चलो हम उस तांत्रिक के यहाँ चलें। जब तक हम लौटें तू यहीं ठहरना। अब तुम कभी भी उस सुकुमारि से न मिलना। बहू यहाँ नहीं है।'

उसी समय लकड़हारा आ गया। उसके साथ तांत्रिक और मांत्रिक दोनों आ गये थे। तांत्रिक अधेड़ था। मांत्रिक बूढ़ा था। धीरे-धीरे सब लोग वहीं आकर एकत्र हो गये।

सुहासिनी पानी ले आई थी। मैं पीकर चैतन्य हो गई। मांत्रिक और तांत्रिक को मुझे दिखाया गया। तांत्रिक ने मेरे गले पर हाथ फेरा और मेरे माथे पर विभूति लगा दी। वह लम्बा आदमी था, गठीला। गले में रूद्राक्ष की माला पहने था और उसकी आँखें लाल थीं।

'अरे तुम!' सेनापति ने कहा, 'तुम यहाँ कहाँ?'

उसने हँसकर कहा, 'तांत्रिक के लिये इससे उचित् स्थान और कौन सा है महासेनापति।'

आपस में सबका यथा योग्य परिचय हुआ। बातें होने लगीं। तांत्रिक ने एक कपड़े का पुलिंदा खोला और एक चौड़े पत्थर पर फैला दिया और फिर उँगली से अन्दाजन लकीरें सी काढ़ता वह कुछ हिसाब लगाने लगा। फिर वह बीच-बीच में सामने की इमारत की तरफ भी देखता जाता। फिर उसने एक खजूर के पत्तों की किताब निकाली और कुछ उसे उलट-पुलट कर उसने पढ़ा भी।

फिर सेवक, सैनिक और सब और पास आ गये और सेना पतिकदम गिन कर चलते हुए फासला नापने लगे। फिर एक जगह एक पत्थर दिखाई दिया। उसको खुर्चा गया। तब देखा वही यूची-रानी रिसुकुमा की कब्र थी।

कुछ क्षण तक यहाँ महासेनापति हाथ जोड़ कर प्रार्थना करते रहे जैसे कह रहे हों कि हे भगवान! तेरी दया से यह पुनीत कार्य सम्पूर्ण हुआ।

फिर तांत्रिक और मांत्रिक की ओर देख कर उन्होंने कहा, 'यह सब आप लोगों के कारण ही संभव हो सका।'

पिता ने मेरे पास आकर मुझे मेरे माथे पर चूम लिया और कहा, "बेटी ! बेटा !!'

वे अधिक नहीं कह सके। गद्गद हो गये, जैसे मेरे प्राण बड़ी कठिनाई से बचे थे।

मैंने देखा सुकुमारि नहीं थी।

मैंने कहा, 'पिता !'

'क्या है बेटी !'

'सुकुमारि नहीं आई ?'

तांत्रिक हँसा। उसने कहा, 'पुत्री ! वह इस कब्र में है।' रात सबने तांत्रिक के यहाँ काटी। दूसरे दिन कब्र खोदी गई।

महासेनापति ने कहा, 'देखो यह सुकुमारि है।'

पिता ने कहा, 'यह तो सुकुमारि है।'

तांत्रिक ने हँसकर कहा, 'असल में रिसुकुमा है।'

देखा। कनिष्क के समय की तो वह लाश नहीं जान पड़ती थी। उसमें गर्माई थी। उसकी आँखें खुली थीं। कफन के ताबूत में से कोई बदबू नहीं आ रही थी। हलायुध, सुषेण, आर्किमिडीस ने स्वीकार किया कि वह थोड़ी-थोड़ी साँस भी लेती थी। उसका दिल भी हल्का-हल्का चल रहा था। सारा शरीर अच्छा था, उसमें जिंदों की सी लचक थी। लेकिन उसके ताबूत में खून भरा हुआ था, कोई सात अंगुल तक रक्त था। उस खून में वह पड़ी थी।

तांत्रिक ने कहा, 'जीवित मुर्दे के सारे चिन्ह इसमें मिलते हैं।'

लाश निकाल ली गई और एक तलवार पूरे वेग से उसके हृदय के स्थान पर घुसेड़ दी गई। मरते समय वह बुरी तरह चिल्लाई, ऐसी जैसे किसी जिंदे के मुँह से आवाज सुनाई पड़ती है। फिर उसका सिर तोड़ा तो खून का फव्वारा बह निकला। तब उसका सिर काट लिया

गया। फिर उसे सेनापति ने जूतों से कुचला और तब उसे आग लगा कर भस्म कर दिया गया। तब उसे नदी में फेंक कर ही चैन लिया, जिससे उसके शव की एक-एक निशानी बिखर जाये।

एक मास बाद सम्राट वासुदेव ने घटना को सुना। उन्हें मौका मिल गया। उन्होंने आज्ञा दी। साम्राज्य भर में जो भी कुषाणों की कब्रें थीं वे खोद दी गईं और जलाने की प्रथा सर्वरूपेण स्वीकृत हो गई। इस प्रकार ही मुँह पर नकाब डाल कर कुषाण परम्परा के नृत्य भी वर्जित कर दिये गये और कुषाणों में बाकी आर्य्यों और भारतवासियों से कोई भी भेद नहीं बचा।

महासेनापति मंदहास, मेरे पिता, तथा तांत्रिक और मांत्रिक को अधिकार मिला कि राज्य के खर्चे से यूची के किले का चाहे जो करें। तांत्रिक ने पहले यूचीराजा का चित्र उतार कर उसके प्रेत को पकड़ा और फिर उसकी शक्ति को नष्ट कर दिया। वह बहुत चिल्लाया। पर कौन सुनता था। सारा किला खोद दिया गया और दो मास के अन्दर वहाँ एक विशाल तालाब बनाया गया, जो केवल खड्ड बन कर रह गया, क्योंकि वहाँ पानी नहीं निकला।

मेरा स्वास्थ्य ठीक हो गया। अब मैं बिल्कुल चंगी हो गई। मेरे पिता की प्रसन्नता का कोई अंत नहीं था। वे बहुत प्रसन्न थे। वे भगवत समुदाय को मानते थे। अब वे और भी प्रसन्न थे कि कुषाणों में वह सब परिवर्त्तन आ गये थे, जोकि वे लाभ चाहते थे। सम्राट वासुदेव का नाम इतिहास में प्रसिद्ध हो गया और उनकी प्रशस्तियाँ भी गायी जाने लगीं।

अंत में एक दिन पुराने परिचित बिछुड़ने के पहले फिर एक दूसरे से मिले।

आचार्य हलायुध, पितृक सुषेण, पितृक आर्किमिडीस, तांत्रिक और मांत्रिक, महासेनापति मंदहास, बूआ सुहासिनी, बूआ पद्मा, पिता और मैं, खाना खाने के बाद एकत्र हुए।

तब तांत्रिक ने बताया कि वह पहले इस विषय को नहीं जानता था। परंतु अपनी पुरानी किताबों में उसे हवाला मिला कि उसके एक पूर्वज का रानी रिसुकुमा से प्रेम था, जो पता चल गया। तब उसकी हत्या करके रात को उसे गाड़ दिया गया। वह मरी नहीं। यों जीवित मुर्दा बन गई। बाद में जब वह निकलने लगी तो मेरे पूर्वज को पता चला, क्योंकि वे तंत्रमंत्र करते थे। उस समय और भी ज्ञाता थे इस विषय के। कुछ लोगों ने लाशों को खोदना शुरू किया। मेरे पूर्वज को उससे प्रेम था। वे उसकी दुर्गत होगी सोच कर एक दिन किसी तरकीब को खेल कर यह अफवाह उड़ा गये कि रिसुकुमा की तो कब्र गलती से खुद भी गई और वह जला दी गई। यों रिसुकुमा की बात खतम हो गई। परंतु वह इस तरह बची रह गई। जब मेरे पूर्वज वृद्ध हुए तब उन्हें लगा वे पाप कर गये हैं। पर तब यहाँ की हालत बहुत बिगड़ चुकी थी। वे उसे लिख कर अचानक मर गये। उनके पुत्र काश्मीर चले गये। मुझे मालूम हुआ। तंत्र से मुझे प्रेम था। पढ़ा तो यहाँ आ गया। मांत्रिक मेरे मित्र हैं। कामरूप वासी हैं। पहले भी घूमते हुए इधर आ गये थे। मेरे मित्र बन गये। मैंने फिर बुला लिया।

मांत्रिक ने कहा, 'यह जीवित मुर्दे एक नहीं रहते, बढ़ते रहते हैं। साथी बनाते रहते हैं। पर इनके बढ़ने का भी एक कायदा होता है। मान लो कहीं यह नहीं पाये जाते। वहाँ कोई बुरा व्यक्ति, नीच प्रकृति का, आत्मघात करता है, या उसकी हत्या होती है। फिर वह भूत बन कर सपनों में दिखाई देने लगता है। जो जीवित लोग उसे देखते हैं, वे मर जाते हैं। और वे लोग ही फिर उसके साथी मुर्दे बन जाते हैं।'

तांत्रिक ने कहा, 'जीवित मुर्दे की सबसे बड़ी पहचान यह है कि उसका हाथ बड़ा मजबूत होता है। देखिये न! पतली ही लड़की थी वह। पर सेनापति का हाथ पकड़ लिया तो इन्हें छुड़ाना मुश्किल हो गया। और उसकी ताकत उसके हाथ में ही नहीं होती। उसके बाद जो एक थकान सी वह पैदा कर जाती है, वह बड़ी ही मुश्किल से जाती है।'

तब पिता ने कहा, 'उस दिन जो गाड़ी मेरे घर के सामने गिरी थी, उसमें जितने लोग थे, वे सब करीब-करीब खोदते समय हमें कब्रों में मिल गये। अब यह पाप यहाँ तो रहा नहीं। कुषाणों की उत्तर की बस्तियों में भले ही हो।'

तांत्रिक ने कहा, -जीवित मुर्दे कई किस्म के होते हैं। एक ऐसे होते हैं जो अपने असली नाम के अक्षरों में ही बँधे हुए रहते हैं। वे उसके बाहर नहीं रह सकते। जैसे रिसुकुमा थी। उसने इन्हीं अक्षरों को घुमा-फिरा कर एक बार कुसुमारि कर लिया, और फिर सुकुमारि कर लिया।

सुषेण ने पूछा, 'अगली बार शायद वह बचती तो मानुकुरि रख लेती?'

'अवश्य,' मांत्रिक ने कहा।

६३

धीरे-धीरे सारी भीड़ छँट गई। सब चले गये। पिता, बूआ पद्मा, बूआ सुहासिनी और मैं पहले की तरह रह गये। तभी एक अश्वारोही पत्र लाया। पिता ने पढ़ा। प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। सम्राट वासुदेव का निमंत्रण था।

दूसरे ही दिन बड़े धूमधाम से सारी विदिशा से बिदा लेते हुए हम लोग सम्राट की सेवा में चले।

हमारे लिये रथ तैयार था। घोड़े बड़े खूबसूरत जुड़े थे। ऊपर से उतरते समय मैंने कहा, 'पिता!'

'क्या है बेटी।'

'यह चारों घोड़े आपने कब लिये?'

'बेटी यह तो बड़े सुंदर हैं।'

सारथि को बुलाया गया।

उससे पूछा, 'यह घोड़े तुम्हें कहाँ मिले ?'

उसने कहा, 'देव यह फाटक के पास चर रहे थे।'

'हैं किसके !'

'यह तो पता नहीं।'

'परंतु यह हमारे तो नहीं हैं।'

'देव हमारे तो बँधे हैं। लंबी यात्रा है। यही सोच कर मैंने इन्हें पकड़ लिया। वे पालतू हैं। न जाने कहाँ से छूट कर आ गये हैं।'

'और अगर कोई माँगने वाला आया तो क्या करेगा ? अवश्य यह किसी उच्च कुल के ही हैं। कितने भव्य तुरंग हैं।'

'देव ! संवाद छोड़ जायें कि जो आये वह एक-एक के बदले दो-दो ले ले।'

'यह तो कोई कायदा नहीं,' पद्मा ने कहा, 'कोई जाने बेचना चाहे, न चाहे।'

सारथि ने कहा, 'स्वामी जो आज्ञा दें।'

अपने-अपने रथ से उतर कर उसी समय आचार्य हलायुध और सुषेण तथा पितृव्य आर्किमिडीस आ गये।

हलायुध ने कहा, 'श्रीमंत ! मैं आपका सहयात्री हूँ। काश्मीर तक !'

'स्वागत है,' पिता ने कहा, फिर सारथि से कहा, 'देख तो किसी से पूछ।'

'क्या हुआ ?' आर्किमिडीस ने पूछा।

पिता ने कहा, 'यह घोड़े तुम देखते हो न ?

सब ने देखे।

'क्यों ?' सुषेण ने कहा, 'बड़े सुन्दर हैं। कब खरीदे।'

'खरीदे नहीं, आ गये हैं,' पिता ने कहा।

हलायुध गंभीर हो गया। वह कुछ सोचने लगा।

'क्यों क्या हुआ ?' पिता ने पूछा।

इसी समय दो रथ आये। एक से तांत्रिक, मांत्रिक और महासेनापति मंदहास उतरे। दूसरे से चार भाले वाले उतरे। और हम समझ भी न पाये कि चारों ने बिजली की गति से भाले फेंके जो कि चारों घोड़ों के वक्ष को फाड़ कर एक साथ घुस गये। घोड़े जोर से हिनहिना कर गिर गये और मर गये।

कोई भी समझ नहीं पाया।

तब मांत्रिक और तांत्रिक मुस्कराते हुए सेनापति के साथ आये।

'क्या बात है?' मैंने कहा, 'घोड़े क्यों मरवा दिये?'

सेनापति ने कहा, 'इन से पूछो।'

तांत्रिक की ओर देखा। वह मुस्कराया। उसने कहा, 'आप लोगों ने नहीं पहिचाना?'

'क्यों?'

'यह घोड़े नहीं थे। जीवित मुर्दे थे, घोड़ों के।'

'घोड़ों के?' हम ने आश्चर्य से पूछा।

'जी हाँ,' उसने कहा, 'रिसुकुमा के सब साथी तो समाप्त हो गये किंतु यह घोड़े बच गये थे।'

'तो क्या यह भी जीवित मुर्दे थे?'

'हाँ! इनके प्राण लेकर मारा गया था इन्हें।'

'तो?'

'यह उन्हीं के साथी हो गये?'

'निश्चय। ऐसा मेरी पुस्तकों में उल्लेख है।'

'तो क्या यह भी रक्त पीते हैं?'

'नहीं।'

'फिर?' मैंने पूछा।

'यह केवल हत्या करते हैं और घूमते हैं। अपनी इच्छा से घूमते हैं। खाते ये घास ही हैं, परंतु यह केवल उन्हीं के कब्जे में रहते हैं जो

कि जीवित मुर्दे होते हैं। इन्हें और कोई सँभाल नहीं सकता। रिमुकुमा गाड़ी पर चलती थी न ?'

सेनापति ने और पिता ने कहा, 'हाँ।'

पिता ने कहा, 'यह घोड़े इतनी जोरों से गिरे थे कि कोई और घोड़ा होता तो उठता भी नहीं। परंतु यह तो उठ कर फिर हवा से बातें करने लग गये।'

तांत्रिक ने कहा, 'यह घोड़े उन जीवित मुर्दे के हर एक इशारे पर चलते हैं।' वास्तव में यह उनके लिये कैसा भी काम कर लेते हैं।'

'आपको कैसे पता चला यह वही थे ?' आर्किमिडीस ने कहा।

तांत्रिक ने कहा, 'पहले यह कहिये सम्राट् का निमंत्रण किस किसको मिला है ?'

पिता ने कहा, 'हमको।' सुषेण और आर्किमिडीस मेरे साथ चल रहे हैं। वे मेरे मित्र हैं। उन्हें सम्राट् की सेवा में उपस्थित होने का अवसर मिलेगा।

तांत्रिक ने कहा, 'मैं, मेरे मित्र मांत्रिक और सेनापति भी निमंत्रित हैं।'

'तब तो बड़ा आनंद रहा। संग ही चलेंगे।'

'अच्छा चलिये,' सेनापति ने कहा, 'सब तैयार नीचे खड़े हैं। स्वागत होगा पहले। फिर बिदा दी जायेगी। विशालकक्ष नागरिकों से भरा हुआ है।'

मैंने कहा, 'मैं नहीं चलूँगी।'

'क्यों' सबने पूछा।

'पहले घोड़ों की बात बता दीजिये,' मैंने कहा, 'नीचे पहुँच कर कौन याद रखेगा भला।'

'अच्छी बात है,' तांत्रिक ने हँस कर कहा, 'बेटी! कल यह घोड़े चर रहे थे जंगल में। मैंने सेनापति से कहा कि घोड़े अच्छे हैं। उन्होंने

पकड़वाने का यत्न किया। किंतु यह घोड़े पकड़ने वालों को देख कर भागे। मैंने देखा यह घोड़े अचानक ही मैदान में गायब हो गये। मैं तुरन्त पहचान गया कि यह अवश्य जीवित मुर्दे हैं। सेनापति से पूछा तो ज्ञात हुआ कि उस कुसुमारि के साथ घोड़े थे।'

'फिर आपको यह कैसे पता चला कि ये कहाँ थे।'

'प्रातःकाल मेरा एक सेवक इन घोड़ों को यहाँ पकड़ा जाते देख गया था'—सेनापति ने कहा—'मैंने मांत्रिक से कहा, इन्होंने बताया कि यह बदला लेना चाहते हैं। अतः यहाँ आ गये क्योंकि इन्होंने सुन लिया कि तुम लोग जाने वाले हो।'

'उफ !' मैंने कहा।

'घबरा नहीं,' महासेनापति मंदहास ने हँस कर कहा, 'अब जब तू चल ही रही है तो फिर उत्तर के कुषाणों की भी कब्र बनाने की प्रथा को राजा इन से बंद करवा दीजो।'

'भला मेरी कौन सुनेगा वहाँ ?' मैंने कहा।

'तेरी न सुनेगा ? तो क्या मेरी सुनेगा ? बेटी ! वहाँ चलकर भी हमें याद रख सकें तब की बात है। जानती है ! सम्राट वासुदेव तेरा विवाह राजकुमार से करना चाहते हैं।'

मेरा मुख लज्जा से लाल हो गया। मैंने सुहासिनी के कंधे के पीछे मुँह छिपा लिया। सब हँस पड़े। पिता की आँखों में आनंद के अश्रु आ गये। पर शीघ्र ही उन्होंने पोंछ कर बनावटी डाँट के स्वर में कहा, 'चलती है महारानी ! या नीचे लोगों को बिठाये ही रखेगी ?'

बात में जो अचानक ही दो मतलब निकले सुनकर सब फिर हँस पड़े। मैंने सिर झुका लिया।

———